गायत्री महाविज्ञान

द्वितीय भाग

भूमिका

गायत्री के विषय में हमारे प्राचीन ग्रन्थों सुविस्तृत वर्णन है। अनेक ग्रन्थों में गायत्री के विवेचन, इतिहास, विवरण, साधन एवं माहात्म्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा हुआ है। विगत बीस वर्षों में गायत्री सम्बन्धी शोध के लिए हमने प्राय: दो हजार आर्ष ग्रन्थ पढ़े हैं। उनमें कितने ही प्रकरण तो ऐसे गूढ़ हैं, जिनका समझना केवल इस मार्ग के विशेषज्ञों के लिए ही सम्भव है; परन्तु सर्वसाधारण के लिए उपयोगी साहित्य भी इतना अधिक है कि उसे पढ़ने और समझने की उपयोगिता भी कम नहीं है।

गायत्री विद्या का सर्वसुलभ प्राचीन साहित्य इस पुस्तक में संकलित किया गया है। यद्यपि हमारे तत् सम्बन्धी संकलित साहित्य का यह एक अंश मात्र ही है, फिर भी इससे यह तो जाना जा सकता है कि गायत्री विद्या का कितना अधिक महत्त्व है। यदि सुयोग हुआ तो अन्य साहित्य भी प्रकाशित करेंगे।

गायत्री मन्त्र अकेला ही इतना सारगर्भित है, कि उसे समझने में कई जन्म लग सकते हैं। साथ ही उसके गर्भ में वह सभी तत्त्वज्ञान भरा हुआ है, जिसकी व्याख्या के लिए वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन, उपनिषद् , ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, नीति, संहिता एवं सूत्र ग्रन्थों की रचना की गई है। इस पुस्तक में वर्णित गायत्री सम्बन्धी लघु संग्रहों से पाठक इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि गायत्री विद्या कितनी अगाध है।

इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में गायत्री सम्बन्धी आवश्यक जानकारी एवं सर्वसाधारण के लिए उपयोगी साधन-विधान का विस्तारपूर्वक उल्लेख कर चुके हैं, जो बात समझ में न आये, जवाबी पत्र द्वारा उसको पूछा जा सकता है। वाममार्गी तांत्रिक साधनाओं के सम्बन्ध में पूछताछ करना निरर्थक है; क्योंकि यह विज्ञान केवल सुपरीक्षित, अधिकारी एवं उपयुक्त मनोभूमि के लोगों के लिए ही सीमित एवं सुरक्षित है।

हमारा सुनिश्चित विश्वास है कि मनुष्य के लिए गायत्री से बढ़कर और कोई तत्त्वज्ञान एवं जीवनक्रम नहीं हो सकता। इस महाविद्या के प्रचार में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी- ऐसा हमारा विश्वास है।

– श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री महाविज्ञान

द्वितीय-भाग

गायत्री माहात्म्य

गायत्री के इतने महान् लाभों के मूल में क्या-क्या कारण हैं , जिनके कारण इतना सब आश्चर्य होता है, इसके बारे में पूर्ण जानकारी होना तो मनुष्यों के लिए कठिन है, पर उन महान् कारणों में एक कारण यह भी है कि गायत्री के पीछे अनेक मनस्वी साधकों का जगमगाता हुआ साधना-बल है । सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से लेकर आधुनिक काल तक समस्त ऋषि-मुनियों ने, साधु-महात्माओं ने, श्रेयमार्गियों ने गायत्री मंत्र का आश्रय लिया है । इन सबके द्वारा जितना साधन, जप, अनुष्ठान गायत्री मन्त्र का हुआ है उतना और किसी का नहीं हुआ । अत्यन्त उच्चकोटि की आत्माओं ने अपनी सर्वश्रेष्ठ भावनाओं को सर्वाधिक एकाग्रता और तन्मयता के साथ गायत्री में लगाया है । कल्प-कल्पान्तरों से यह क्रम चलता आया है । इस प्रकार इस एक मंत्र के पीछे इतनी उच्चकोटि की आत्म-विद्युत् सम्मिलित हो गयी है कि सूक्ष्म लोकों में उसका एक भारी पुञ्ज जमा हो गया है ।

विज्ञान बताता है कि कोई शब्द या विचार कभी नष्ट नहीं होता । आज जो बातें कही जा रही हैं या सोची जा रही हैं, वे अपनी तरंगों के साथ आकाश में फैल जायेंगी और अनन्तकाल तक सृष्टि के अन्तराल में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहेंगी । जो तरंगें विशेष बलवान् होती हैं, वे तो विशेष रूप से प्रदीप्त रहती हैं । महाभारत युद्ध के संस्मरण और तानसेन के गायन की तरंगों को सूक्ष्म आकाश में से पकड़ कर रिकार्ड बना लेने के लिए वैज्ञानिक प्रयत्न चल रहे हैं । यदि वे सफल हुए तो प्राचीनकाल की महत्त्वपूर्ण वार्ताओं को ज्यों का त्यों हम कानों से सुन सकेंगे, तब भगवान् कृष्ण के मुख से निकली गीता को ज्यों का त्यों अपने कानों से सुनना सम्भव हो जायेगा । शब्द और विचारों को सूक्ष्म से स्थूल करना भले ही अभी बहुत काल तक कठिन रहे, पर इतना निश्चित है कि उनका अस्तित्व नष्ट नहीं होता । अब तक असंख्यों महान् व्यक्तियों के द्वारा गायत्री के प्रति जिस श्रद्धा और साधना का उपयोग हुआ है, वह नष्ट नहीं हो गयी है, वरन् सूक्ष्म-जगत् में उसका प्रबल अस्तित्व बना हुआ है । "एक प्रकार के पदार्थों का एक स्थान पर सम्मिलन" के सिद्धान्तानुसार उन सभी साधकों की श्रद्धाएँ, साधनाएँ, भावनाएँ, तपश्चर्याएँ एक स्थान पर एकत्रित होकर एक प्रबल चैतन्यता-युक्त आध्यात्मिक विद्युत्-भण्डार जमा हो गया है ।

जिन्हें विचार-विज्ञान का थोड़ा-सा भी परिचय है, वे जानते हैं कि मनुष्य जिस प्रकार सोचता है उसी प्रकार का एक आकर्षण-चुम्बकत्व उसके मस्तिष्क में उत्पन्न हो जाता है । यह चुम्बकत्व निखिल आकाश में उड़ते हुए उसी जाति के अन्य विचारों को आकर्षित करके अपने पास बुला लेता है और थोड़े ही समय में उसके पास उस जाति के विचारों का भारी जमाव जुड़ जाता है । साधुता की बात सोचने वाले दिन-दिन साधुता के विचारों, गुणों, कर्मों और स्वभावों से परिपूर्ण होते जाते हैं । इसी प्रकार दुष्टता एवं पाप के विचार का मस्तिष्क थोड़े ही समय में उस दिशा में बड़ा कुशल हो जाता है । यह सब विचार-आकर्षण विज्ञान के अनुसार होता है । इसी विज्ञान के अनुसार गायत्री के साधकों की, ये विचार - शृंखलाएँ सम्बद्ध हो जाती हैं, जो सृष्टि के आदि को लेकर अब तक की महान् आत्माओं द्वारा तैयार की गयी है । ऊँची दीवारों पर कोई व्यक्ति अपने बाहुबल द्वारा बड़ी मुश्किल से चढ़ सकता है, परन्तु कोई अच्छी सीढ़ी दीवार के सहारे लगा दी जाए, तो उस पर पैर रखते ही आसानी से मनुष्य दीवार पर चढ़ जाता है । भूतकाल के साधकों की बनायी हुई सीढ़ी पर चढ़कर हम गायत्री तत्त्व तक आसानी से चढ़ सकते हैं और उस स्थान पर प्राप्त होने वाली समृद्धियों को सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकते हैं ।

गायत्री-साधना में जितना श्रम हमें करना पड़ता है, उससे अनेक गुनी सहायता पूर्वकाल के महान् साधकों द्वारा छोड़ी हुई सम्पत्ति से मिल जाती है और हम अनायास ही उन महान् लाभों से लाभान्वित हो जाते हैं, जिसके

लिए किसी समय किन्हीं साधकों को बहुत अधिक श्रम करना पड़ता होगा, परन्तु सूक्ष्म जगत् में ऐसे सूक्ष्म विधान निर्मित हो चुके हैं, जिन पर आरूढ़ होते ही हम द्रुतगति से दौड़ने लगते हैं। पानी की बूँद समुद्र में गिर कर समुद्र बन जाती है, एक सिपाही जब सेना में भर्ती हो जाता है, तो वह सेना का अंग बन जाता है, एक नागरिक की पीठ पर उसकी सरकार की समस्त ताकत होती है, इसी प्रकार एक साधक जो गायत्री शक्ति-पुञ्ज के साथ आबद्ध हो जाता है, उसे उस शक्ति-पुञ्ज द्वारा लाभ उठाने का पूरा-पूरा अवसर मिल जाता है। जितना प्रकाशवान् शक्ति-पुञ्ज गायत्री मन्त्र के पीछे है, उतना और किसी वेद-मन्त्र के पीछे नहीं है। यही कारण है कि गायत्री की साधना से स्वल्प श्रम में अत्यधिक लाभ प्राप्त होता है।

इतने पर भी हम देखते हैं कि कितने ही मनुष्य गायत्री की महिमा को जानते हुए भी उससे लाभ नहीं उठाते। किसी के बिल्कुल पास, यहाँ तक कि जेब में ही प्रचुर धन रखा हो, पर यदि वह उसका उपयोग करके आनंद प्राप्त न करे, तो वह उसका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये। गायत्री एक दैवी विद्या है, जो परमात्मा ने हमारे लिए सुलभ बनाई है। ऋषि-मुनियों ने धर्म-शास्त्रों में पग-पग पर हमारे लिए गायत्री-साधना द्वारा लाभान्वित होने का आदेश किया है, इतने पर भी यदि हम उससे लाभ न उठाएँ, साधना न करें, तो उसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।

अथ गायत्री माहात्म्य

गायत्री की महिमा का वेद, शास्त्र, पुराण सभी वर्णन करते हैं। अथर्ववेद में गायत्री की स्तुति की गयी है, जिसमें उसे आयु, प्राण, शक्ति, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली कहा गया है-

ॐ स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ -अथर्व० १९/७१/१

अथर्ववेद में स्वयं वेद भगवान् ने कहा है—

मेरे द्वारा स्तुति की गई, द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता गायत्री, आयु, प्राण, शक्ति, पशु, कीर्ति, धन एवं ब्रह्मतेज उन्हें प्रदान करें।

यथा मधु च पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सारमुच्यते॥ - बृहद् योगियाज्ञवल्क्यस्मृति ४.१६

"जिस प्रकार पुष्पों का सारभूत मधु, दूध का घृत, रसों का सारभूत पय है, उसी प्रकार गायत्री मन्त्र समस्त वेदों का सार है।"

तदित्यृचः समो नास्ति मन्त्रो वेदचतुष्टये।
सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च दानानि च तपांसि च।
समानि कलया प्राहुर्मुनयो न तदित्यृचः॥ - विश्वामित्र

"गायत्री मन्त्र के समान मन्त्र चारों वेदों में नहीं है। सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप, गायत्री मन्त्र की एक कला के समान भी नहीं हैं, ऐसा मुनि लोग कहते हैं।"

गायत्री छन्दसां मातेति॥ - महानारायणोपनिषद् १५/१

"गायत्री वेदों की माता अर्थात् आदि कारण है।"

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादम्पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥ - मनु० अ० २/७७

"परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजी ने तीन ऋचा वाली गायत्री के तीनों चरणों को तीन वेदों से सारभूत निकाला है।"

गायत्र्यास्तु परन्नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्।
महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेन च संजपेत्॥ - सम्वर्त स्मृ० श्लो० २१४

"पाप को नाश करने में समर्थ गायत्री के समान अन्य कोई मन्त्र नहीं है, अत: प्रणव तथा महाव्याहृतियों के सहित गायत्री मन्त्र का जाप करें ।"

नान्नतोय-समं दानं न चाहिंसापरं तपः ।
न गायत्री समं जाप्यं न व्याहृति-समं हुतम् ।। - सूत संहिता यज्ञ वैभव खण्ड अ० ६/३०

" अन्न और जल के समान कोई भी दान, अहिंसा के समान तप, गायत्री के समान जप, व्याहृति के समान अग्निहोत्र कोई भी नहीं है ।"

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः ।।

"गायत्री, नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़कर बचाने वाली है, अत: द्विज नित्य ही पवित्र हृदय से गायत्री का अभ्यास करें अर्थात् जपें ।"

गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलया समतोलयत् ।
वेदा एकत्र सांगास्तु गायत्री चैकतः स्थिता ।। - योगी याज्ञवल्क्य० ४८०

"गायत्री और समस्त वेदों को तराजू में तोला गया । षट् अंगों सहित वेद एक ओर रखे गये और गायत्री को एक ओर रखा गया ।"

सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो मताः ।
ताभ्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा ।। - योगी याज्ञ० ४.७७

"वेदों के सार उपनिषद् हैं और उपनिषदों का सार गायत्री और तीनों महा व्याहृतियाँ हैं ।"

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ।
गायत्र्यास्तु परन्नास्ति दिवि चेह च पावनम् ।। - शंख स्मृति १२/२४

गायत्री वेदों की जननी है । गायत्री पापों को नाश करने वाली है । गायत्री से अन्य कोई पवित्र करने वाला मन्त्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है ।

यद्यथाग्निर्देवानां, ब्राह्मणो मनुष्याणाम् ।
वसन्त ऋतूनामियं गायत्री चास्ति छन्दसाम् ।।

"जिस प्रकार देवताओं में अग्नि, मनुष्यों में ब्राह्मण, ऋतुओं में वसन्त ऋतु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार छन्दों में गायत्री श्रेष्ठ है ।"

अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाति गरीयसी ।
ततोऽपि तर्कशास्त्राणि पुराणं तेभ्य एव च ।।
ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिर्द्विज ! ।
ततोऽप्युपनिषच्छ्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका ।।
दुर्लभा सर्वमन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता । - स्कन्द पु० ४/९/४९-५१

"अठारह विद्याओं में मीमांसा अत्यंत श्रेष्ठ है । मीमांसा से तर्कशास्त्र श्रेष्ठ है और तर्कशास्त्र से पुराण श्रेष्ठ हैं । पुराणों से भी धर्मशास्त्र श्रेष्ठ हैं । हे द्विज ! धर्मशास्त्रों से वेद श्रेष्ठ हैं और वेदों से उपनिषद् श्रेष्ठ हैं और उपनिषदों से गायत्री मन्त्र अत्यधिक श्रेष्ठ है ।"

प्रणव युक्त यह गायत्री समस्त वेदों में दुर्लभ है ।

नास्ति गंगा समं तीर्थं न देवः केशवात्परः ।
गायत्र्यास्तु परं जाप्यं न भूतं न भविष्यति ।। - बृ.यो०याज्ञ०अ० १०.१०-११

"गंगाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है, केशव से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। गायत्री मन्त्र के जप से श्रेष्ठ कोई जप न आज तक हुआ है और न होगा।"

सर्वेषां जप्यसूक्तानामृचां च यजुषां तथा।
साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥ - बृ० पाराशर स्मृति अ० ३/४

"समस्त जप सूक्तों में, ऋक्-यजु एवं सामवेद में तथा एकाक्षरादि मन्त्रों में गायत्री मन्त्र जप परम श्रेष्ठ है।"

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः।
सावित्र्यास्तु परन्नास्ति पावनं परमं स्मृतम् ॥ - अग्नि पुराण १६६/१८

"एकाक्षर अर्थात् 'ओ३म्' परब्रह्म है। प्राणायाम परम तप है और गायत्री मन्त्र से बढ़कर पवित्र करने वाला कोई मन्त्र नहीं है।"

गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥ - शंख स्मृति अ० १२/२५

"नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़ कर बचाने वाली गायत्री के समान पवित्र करने वाली वस्तु या मन्त्र पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में भी नहीं है।"

गायत्री चैव वेदाश्च ब्रह्मणा तोलिताः पुरा।
वेदेभ्यश्च चतुर्भ्योऽपि गायत्र्यतिगरीयसी ॥ - बृ० पाराशर स्मृति अ० ४/१६

"प्राचीनकाल में ब्रह्माजी ने गायत्री को वेदों से तोला। चारों वेदों से भी गायत्री का पलड़ा भारी रहा।"

सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा।
पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्रीं परमां गतिम् ॥ - महाभारत अनु० पर्व अ० १५०/७७

"हे युधिष्ठिर ! सम्पूर्ण चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी, रघुवंशी तथा कुरुवंशी नित्य ही पवित्र होकर परम गतिदायक गायत्री मन्त्र का जप करते हैं।"

बहुना किमिहोक्तेन यथावत् साधु साधिता।
द्विजन्मानामियं विद्या सिद्धा कामदुघा स्मृता ॥

"यहाँ पर अधिक कहने से क्या लाभ ? अच्छी प्रकार सिद्ध की गयी गायत्री विद्या, द्विज जाति के लिए कामधेनु कही गई है।"

सर्ववेदोद्धृतः सारो मन्त्रोऽयं समुदाहृतः।
ब्रह्मादिदेवा गायत्री परमात्मा समीरितः ॥

"यह गायत्री मन्त्र समस्त वेदों का सार कहा गया है। गायत्री ही ब्रह्मा आदि देवता है। गायत्री ही परमात्मा कही गयी है।"

या नित्या ब्रह्मगायत्री सैव गंगा न संशयः।
सर्वतीर्थमयी गंगा तेन गंगा प्रकीर्तिता ॥ - गायत्री तन्त्र ३/१४३

"गंगा सर्व तीर्थमय होने से 'गंगा' कहलाती है। वह गंगा ब्रह्म गायत्री का ही रूप है।"

सर्वशास्त्रमयी गीता गायत्री सैव निश्चिता।
यागतीर्थं च गोलोकं गायत्रीरूपमद्भुतम् ॥ - गायत्री तन्त्र ३/१४४

"गीता में सब शास्त्र भरे हुए हैं। वह गीता निश्चय ही गायत्री रूप है। याग, तीर्थ और गोलोक यह भी गायत्री के ही रूप हैं।"

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छन्तिष्ठन् यथा तथा।
गायत्रीं प्रजपेद्धीमान् जपात् पापान्निवर्तते ॥ - गायत्री तन्त्र

"अपवित्र हो अथवा पवित्र हो, चलता हो अथवा बैठा हो, जिस भी स्थिति में हो, बुद्धिमान् मनुष्य गायत्री का जप करता रहे। इस जप के द्वारा पापों से छुटकारा होता है।"

मननात् पापतस्त्राति मननात् स्वर्गमश्नुते।
मननात् मोक्षमाप्नोति चतुर्वर्गमयो भवेत्॥ -गायत्री तन्त्र

"गायत्री का मनन करने से पाप से छूटते हैं, स्वर्ग प्राप्त होता है और मुक्ति मिलती है तथा चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) सिद्ध होते हैं।

गायत्रीं तु परित्यज्य अन्यमन्त्रानुपासते।
त्यक्त्वा सिद्धान्नमन्यत्र भिक्षामटति दुर्मतिः॥

"जो गायत्री को छोड़कर दूसरे मन्त्रों की उपासना करता है, वह दुर्बुद्धि मनुष्य पकाये हुए अन्न को छोड़कर भिक्षा के लिए घूमने वाले पुरुष के समान है।"

नित्ये नैमित्तिके काम्ये तृतीये तपो वर्धने।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च॥

"नित्य, नैमित्तिक, काम्य की सफलता तथा तप की वृद्धि के लिये इस लोक तथा परलोक में गायत्री से बढ़कर कोई नहीं है।"

सावित्री - जाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः।
गायत्रीं तु जपेत् भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम्॥ - शंख० १२/३०-३१

"गायत्री मन्त्र जानने वाला मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है। इसी कारण स्नान कर समस्त प्रयत्नों से स्थिर चित्त हो सारे पापों के नाश करने वाली गायत्री का जाप करे।"

गायत्री जप के लाभ

गायत्री का जप करने से कितना महत्त्वपूर्ण लाभ होता है, इसका कुछ आभास निम्नलिखित थोड़े से प्रमाणों से जाना जा सकता है। ब्राह्मण के लिए तो इसे विशेष रूप से आवश्यक कहा है, क्योंकि ब्राह्मणत्व का सम्पूर्ण आधार सद्‌बुद्धि पर निर्भर है और वह सद्‌बुद्धि गायत्री के बताये हुए मार्ग पर चलने से मिलती है।

सर्वेषां वेदानां गुह्योपनिषत्सारभूतां ततो गायत्रीं जपेत्। - छान्दोग्य परिशिष्ट

'गायत्री समस्त वेदों का और गुह्य उपनिषदों का सार है। इसलिए गायत्री मन्त्र का नित्य जाप करें।

सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना।
ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च॥ -दे० भा० स्क० ११ अ० १६/१५-१६

'गायत्री मन्त्र की आराधना समस्त वेदों का सारभूत है। ब्रह्मादि देवता भी संध्या काल में गायत्री का ध्यान करते हैं और जप करते हैं।'

गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥ - दे० भा० स्क० १२ अ० ८/९०

'गायत्री मात्र की उपासना करने वाला ब्राह्मण भी मोक्ष को प्राप्त होता है।'

ऐहिकामुष्मिकं सर्वं गायत्रीजपतो भवेत्। - अग्नि पुराण

'गायत्री जपने वाले को सांसारिक और पारलौकिक समस्त सुख प्राप्त हो जाते हैं।'

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥ - मनुस्मृति २/८२

'जो मनुष्य तीन वर्ष तक प्रतिदिन तत्परतापूर्वक गायत्री मन्त्र जपता है, वह अवश्य ब्रह्म को प्राप्त करता है और वायु के समान स्वेच्छागमन वाला होता है।'

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात् इति प्राह मनुः स्वयम्।
अक्षयमोक्षमाप्नोति गायत्री - मात्र - जापनात्॥ - शौनक

'इस प्रकार मनु जी ने स्वयं कहा है कि अन्य देवताओं की उपासना करे या न करे, केवल गायत्री के जप से द्विज अक्षय मोक्ष को प्राप्त होता है।'

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥ - मनु० २/७७

'परमेष्ठी पितामह ब्रह्माजी ने एक-एक वेद से सावित्री के एक-एक पद की रचना की, इस प्रकार तीन पदों का सृजन किया।'

एतया ज्ञातया सर्वं वाङ्मयं विदितं भवेत्।
उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवनसप्तकम्॥ - योगी याज्ञ० ४७०

'गायत्री के जान लेने से समस्त विद्याओं का ज्ञाता हो जाता है, इस प्रकार उसने केवल गायत्री की ही उपासना नहीं की; अपितु सात लोकों की उपासना कर ली।'

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो गायत्रीं यश्च विन्दति।
चरितब्रह्मचर्यश्च स वै श्रोत्रिय उच्यते॥ - योगी याज्ञ०

'जो ब्रह्मचर्य पूर्वक, ओंकार, महाव्याहृतियों सहित गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह श्रोत्रिय है।'

ओंकारसहितां जपन् तां च व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेद - पुण्येन युज्यते॥ - मनुस्मृति अ० २/७८

'जो ब्राह्मण दोनों संध्याओं में प्रणव-व्याहृति सहित गायत्री मंत्र का जप करता है, वह वेदों के पढ़ने के फल को प्राप्त करता है।'

गायत्रीं जपते यस्तु द्विकालं ब्राह्मणः सदा।
असत्प्रतिगृहीतोऽपि स याति परमां गतिम्॥ अग्निपुराण

'जो ब्राह्मण सदा सायंकाल और प्रातःकाल गायत्री का जप करता है, वह ब्राह्मण अयोग्य प्रतिग्रह (दान) लेने पर भी परमगति को प्राप्त होता है।'

सकृदपि जपेद्विद्वान् गायत्रीं परमाक्षरीम्।
तत्क्षणात् संभवेत्सिद्धिर्ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥ - गायत्री पुरश्चरण २८

'श्रेष्ठ अक्षरों वाली गायत्री को विद्वान् यदि एक बार भी जपे, तो तत्क्षण सिद्धि होती है और वह ब्रह्म की सायुज्यता को प्राप्त करता है।'

जप्येनैव तु संसिद्ध्येत् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते॥ - मनु० २/८७

'ब्राह्मण अन्य कुछ करे या न करे, परन्तु वह केवल गायत्री से ही सिद्धि पा सकता है।'

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद् द्विजः॥ - गायत्री तन्त्र ८

'अन्य अनुष्ठानादिक करे या न करे, गायत्री की उपासना करने वाला द्विज कृतकृत्य हो जाता है।'

सन्ध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च।
सहस्रत्रितयं कुर्वन् सुरैः पूज्यो भवेन्मुने॥ - गायत्री तन्त्र श्लोक ९

'हे मुने! संध्याकाल में ही सूर्य को अर्घ्यदान और तीन हजार नित्य गायत्री जपने मात्र से पुरुष देवताओं का भी पूजनीय हो जाता है।'

यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः ।
हरिशंकरकंजोत्थ - सूर्यचन्द्रहुताशनैः ॥ - गायत्री पुर० ११

'गायत्री के एक अक्षर की सिद्धि मात्र से हरि, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवताओं से भी साधक स्पर्धा करने लगता है ।'

दशसाहस्त्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनी परा । - लघु अत्रिसंहिता ४.४

दस हजार बार जपी गयी गायत्री परम शोधन करने वाली है ।

सर्वेषाञ्चैव पापानां संकटे समुपस्थिते ।
दशसहस्त्रकाभ्यासो गायत्र्याः शोधनं परम् ॥

'दस हजार गायत्री का जप, समस्त पापों को तथा संकटों को नाश करके परम शुद्ध करने वाला है ।'

गायत्रीमेव यो ज्ञात्वा सम्यगुच्चरते पुनः ।
इहामुत्र च पूज्योऽसौ ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ - व्यास

'जो गायत्री को भली प्रकार जानकर उसका उच्चारण करता है, वह इस लोक और परलोक में ब्रह्म की सायुज्यता को प्राप्त करता है ।'

मोक्षाय च मुमुक्षूणां श्रीकामानां श्रिये तथा ।
विजयाय युयुत्सूनां व्याधितानामरोगकृत् ॥ - गायत्री पंचांग १

'गायत्री-साधना से मुमुक्षुओं को मोक्ष मिलेगा, श्री कामियों को सम्पत्ति प्राप्त होगी, युद्धेच्छुओं को विजय तथा व्याधिग्रस्त को नीरोगिता प्राप्त होगी ।'

वश्याय वश्यकामानां विद्यायै वेदकामिनाम् ।
द्रविणाय दरिद्राणां पापिनां पापशान्तये ॥

'वशीकरण करने वालों के वशीकरण सिद्ध होंगे, वेदार्थियों को विद्या प्राप्ति, दरिद्रों को धन प्राप्ति, पापियों के पाप की शान्ति हो जाती है ।'

वादिनां वाद -विजये कवीनां कविताप्रदम् ।
अन्नाय क्षुधितानां च स्वर्गाय नाकमिच्छताम् ॥

'शास्त्रार्थियों को शास्त्र विजय, कवियों को काव्य लाभ, भूखों को अन्न तथा स्वर्गेच्छुकों को स्वर्ग प्राप्त होता है ।'

पशुभ्यः पशुकामानां पुत्रेभ्यः पुत्रकामिनाम् ।
क्लेशिनां शोक-शान्त्यर्थं नृणां शत्रुभयाय च ॥

'पशु इच्छुकों को पशु, पुत्रार्थियों को पुत्र, क्लेश-पीड़ितों को शोक-शान्ति, शस्त्रु-भय वालों को अभय मिलता है ।'

अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाऽतिगरीयसी ।
ततोऽपि तर्कशास्त्राणि पुराणं तेभ्य एव च ॥

'अठारह विद्याओं में मीमांसा श्रेष्ठ है, उससे श्रेष्ठ तर्कशास्त्र तथा पुराण उससे भी श्रेष्ठ कहे गये हैं ।'

ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिर्नृप ।
ततो ह्युपनिषत् श्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका ॥

'धर्मशास्त्र उनसे भी श्रेष्ठ हैं तथा हे राजंन् ! उनसे भी श्रेष्ठ श्रुतियाँ कही गयी हैं । उन श्रुतियों से भी श्रेष्ठ उपनिषद् हैं और उपनिषदों से भी गरीयसी गायत्री कही गयी है ।'

तां देवीमुपतिष्ठन्ते ब्राह्मणा ये जितेन्द्रियाः ।
ते प्रयान्ति सूर्य्यलोकं क्रमान्मुक्तिञ्च पार्थिव ।। - पद्म पुराण

'जो इन्द्रियजित् ब्राह्मण इस गायत्री की उपासना करते हैं, हे पार्थिव ! वे अवश्य ही सूर्य लोक को प्राप्त होते हैं तथा क्रमशः मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं ।'

गायत्री-सार-मात्रोऽपि वरं विप्रः सुसंयतः । - पद्म पु० सृ० खं० १७/२८१

'चार वेदों की सारभूत गायत्री को विधि सहित जानने वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है ।'

गायत्रीं यस्तु जपति त्रिकालं ब्राह्मणः सदा ।
अर्थी प्रतिग्रही वापि स गच्छेत्परमां गतिम् ।।

'जो ब्राह्मण गायत्री को त्रिकाल में जपता है, वह माँगने वाला या दान लेने वाला (अग्राह्य दान को ग्रहण करने वाला) ही क्यों न हो, वह भी परम गति को प्राप्त हो जाता है ।'

गायत्रीं यस्तु जपति कल्यमुत्थाय यो द्विजः ।
स लिम्पति न पापेन पद्म - पत्रमिवांभसा ।।

'जो ब्राह्मण प्रातः उठकर गायत्री का जप करता है, वह जल में कमलपत्र की भाँति पापग्रस्त नहीं होता ।'

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थो विनिर्णयः ।
गायत्री- भाष्य- रूपोऽसौ वेदार्थः परिबृंहितः ।। - मत्स्य पुराण

'गायत्री का अर्थ ब्रह्मसूत्र है । गायत्री का निर्णय महाभारत है, गायत्री का अर्थ वेदों में हुआ है ।'

जपन् हि पावनीं देवीं गायत्रीं वेदमातरम् ।
तपसा भावितो देव्या ब्राह्मणः पूतकिल्विषः ।।

'ब्राह्मण वेद-जननी गायत्री को जपता हुआ अनेक पापों से मुक्त हो जाता है ।'

गायत्री-ध्यानपूतस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।
एवं किल्विषयुक्तस्य विनिर्दहति पातकम् ।।

'गायत्री के ध्यान से पवित्र हुई सोलह कलाओं का कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता । इस प्रकार वह पाप-युक्त के पापों को शीघ्र ही दहन कर देती है ।'

उभे सन्ध्ये ह्युपासीत तस्मान्नित्यं द्विजोत्तम ।
छन्दस्तस्यास्तु गायत्रं गायत्रीत्युच्यते ततः ।। - मत्स्य पुराण

'हे द्विज श्रेष्ठ ! गायत्री का छन्दानुसार दोनों संध्याकाल में ध्यान करना चाहिये ।' 'गान करने वाले का यह त्राण करती है, इसीलिये इसे गायत्री कहा है ।'

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री तु ततः स्मृता ।
मारीच ! कारणात्तस्मात् गायत्री कीर्तिता मया ।। - लंकेश तन्त्र

' हे मारीच ! गान करने वाले का त्राण करती है, इसी हेतु मैंने इसे गायत्री कहा है ।'

ततः बुद्धिमतां श्रेष्ठ नित्यं सर्वेषु कर्मसु ।
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।।
जपन्ति ये सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ।
दशकृत्वः प्रजप्या सा रात्र्यह्नापि कृतं लघु ।।

'बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, अपने नित्य नियमित सभी कार्यों को करते हुए, व्याहृतियों के सहित तथा प्रणव के उच्चारण सहित गायत्री को जो पुरुष सदा जपते हैं, उनको कहीं भी भय नहीं है । दस बार जपने से रात्रि तथा दिन के लघु दोषों का निवारण होता है ।'

कामकामो लभेत्कामं गतिकामस्तु सद्गतिम्।
अकामस्तु तदाप्नोति यद्विष्णोः परमं पदम्।। -वि० धर्मोत्तर पु० - ३

'कामाभिलाषी को काम की प्राप्ति होती है और जो मोक्ष की आकांक्षा करते हैं, उन्हें सद्गति प्राप्त होती है। जो पुरुष निष्काम भाव से गायत्री की उपासना करते हैं, वे विष्णु के परम पद को प्राप्त हो जाते हैं।'

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेद-पुण्येन युज्यते।। - मनु० २/७८

'व्याहृतिपूर्वक इस गायत्री को दोनों संध्या काल में जपता हुआ ब्राह्मण, वेद पढ़ने के पुण्य को प्राप्त होता है।'

इयन्तु सव्याहृतिका द्वारं ब्रह्मपदाप्तये।
तस्मात्प्रतिदिनं विप्रैरध्येतव्या तथैव सा।।

'यह गायत्री ब्रह्मपद की प्राप्ति का द्वार है, अतः ब्राह्मणों को व्याहृतिपूर्वक प्रतिदिन इसका अध्ययन (मनन) करना चाहिये।'

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म पदमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्।। - मनु० २/८२

'जो इस गायत्री को तन्द्रा रहित (आलस्य को छोड़कर) तीन वर्ष तक नियमित रूप से जपता है, वह ब्रह्मपद को निस्संदेह उपलब्ध हो जाता है।'

तत् पापं प्रणुदत्याशु नात्र कार्या विचारणा।
शतं जप्त्वा तु सा देवी पापौघशमनी स्मृता।।

'इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये कि सब पापों का शीघ्र ही निवारण हो जाता है। सौ बार जप करने पर यह गायत्री पापों के समूह का विनाश कर देती है।

विधिना नियतं ध्यायेत् प्राप्नोति परमं पदम्।
यथा कथञ्चिज्जपिता गायत्री पापहारिणी।।
सर्व-कामप्रदा प्रोक्ता पृथक्कर्म्मसु निष्ठिता।

'विधिपूर्वक नियत ध्यान करने पर परम पद की प्राप्ति होती है। जिस-किसी भी प्रकार जपी हुई गायत्री पापों का विनाश करती है, भिन्न-भिन्न कार्यों के उद्देश्य से किया हुआ जप भी अभीष्ट की सिद्धि कर देता है।

गायत्री से पाप और दुःखों से निवृत्ति

गायत्री साधना से सब पापों की और सब दुःखों की निवृत्ति के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं-

ब्रह्महत्यादिपापानि गुरूणि च लघूनि च।
नाशयत्यचिरेणैव गायत्रीजापको द्विजः।। -गा०पु०पृ० ६२

'गायत्री जपने वाले के ब्रह्महत्यादि सभी पाप, छोटे हों चाहे बड़े हों, शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।'

गायत्रीजपकृद् भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते। - पाराशर

'भक्तिपूर्वक गायत्री जपने वाला समस्त पापों से छूट जाता है।'

सर्वपापानि नश्यन्ति गायत्रीजपतो नृणाम्। - भविष्य पुराण

गायत्री जपने वाला समस्त पापों से छूट जाता है।'

गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा स्थिते रवौ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यदि न ब्रह्मद्विड् भवेत्।। - अत्रि स्मृति ३/१५

'सूर्य के समक्ष यदि गायत्री का आठ हजार जप करे, तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। यदि ब्राह्मण अर्थात् ज्ञानी पुरुषों की निन्दा करने वाला न हो, तो।'

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः।
महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥ - मनु० अ० २/७९

'एकान्त स्थान में प्रणव, महाव्याहृतिपूर्वक गायत्री का एक हजार जप करने वाला द्विज, बड़े से बड़े पापों से ऐसे छूट जाता है जैसे केंचुली से सर्प छूट जाता है।'

जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि।

'जिनसे पुरुषों के पाप दूर हो जाते हैं और वे इस संसार से तर जाते हैं, उनको तीर्थ कहते हैं। गायत्री के इन तीन अक्षरों में वह तीर्थ विद्यमान हैं- ग = गंगा, य = यमुना, त्र = त्रिवेणी समझनी चाहिये।'

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।
महान्ति पातकादीनि, स्मरणान्नाशमाप्नुयुः॥ - गायत्री पु० २/२

'गायत्री के स्मरण मात्र से ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरु-स्त्री गमन आदि महापातक भी नष्ट हो जाते हैं।'

य एतां वेद गायत्रीं पुमान् सर्वगुणान्विताम्।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ ! स लोके न प्रणश्यति॥ - महा० भा० भीष्म प० अ० १४/१६

' हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य तत्त्वपूर्वक सर्वगुण सम्पन्न पुण्यमयी गायत्री को जान लेता है, वह संसार में दुःखित नहीं होता।'

गायत्री-निरतं हव्य-कव्येषु विनियोजयेत्।
तस्मिन्न तिष्ठते पापं जलबिन्दुरिव पुष्करे॥

'गायत्री जपने वालों को ही पितृकार्य तथा देवकार्य में बुलाना चाहिये, क्योंकि गायत्री उपासक में पाप उसी प्रकार नहीं रहता, जैसे कमल के पत्ते पर पानी की बूँद नहीं ठहरती।'

गायत्रीं यः पठेद्विप्रो न स पापेन लिप्यते। - लघु अत्रि संहिता २/१२

'जो द्विज गायत्री को जपता है, वह पाप में लिप्त नहीं होता।'

चरक संहिता में गायत्री-साधना के साथ आँवला सेवन करने से दीर्घ जीवन का वर्णन आया है।

सावित्रीं मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
सम्वत्सरान्ते पौषीं वा माघीं वा फाल्गुनीं तिथिम्॥- चरक चिकित्सा आँव० रसा०श्लो० ९

'मन से गायत्री का ब्रह्मचर्य पूर्वक एक वर्ष तक ध्यान करता हुआ, वर्ष के उपरान्त में पौष मास अथवा माघ मास की अथवा फाल्गुन मास की किसी शुभ तिथि में तीन दिन क्रमशः उपासना के उपरान्त आँवले के वृक्ष पर चढ़कर जितने आँवले मनुष्य खायेगा, उतने ही वर्ष वह जीवित रहेगा।'

यदिह वा अप्येवं विद् बहु इव प्रतिगृह्णाति न हैव तद् गायत्र्या एकं च न पदं प्रति। स य इमान् त्रींल्लोकान् पूर्णान् प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयादथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्या एतद् द्वितीयं पदमाप्नुयादथ यावदिदं प्राणि यस्तावत् प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाप्नुयात् अथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैव केनचनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृह्णीयात्। बृह० उ० ५/१४/५-६

'गायत्री को सर्वात्मक भाव से जपने वाला मनुष्य, यदि बहुत ही प्रतिग्रह लेता है, तो भी उस प्रतिग्रह का दोष गायत्री के प्रथम पाद उच्चारण के समान भी नहीं होता। यदि समस्त तीन लोकों को प्रतिग्रह में लें, तो उसका दोष प्रथम पाद उच्चारण से नष्ट हो जाता है। यदि तीन वेदों का प्रतिग्रह लें, तो उसका दोष द्वितीय पाद से नष्ट हो जाता है। यदि संसार के समस्त प्राणियों का भी प्रतिग्रह लें, तो उसका दोष तृतीय पाद से नष्ट हो जाता है। अतः

गायत्री जपने वाले को कोई हानि नहीं पहुँचती और गायत्री का चौथा पद परब्रह्म है, इसके सदृश दुनिया में भी कुछ नहीं है।'

यदह्ना कुरुते पापं तदह्नाप्रतिमुच्यते।
यद्रात्र्या कुरुते पापं तद्रात्र्या प्रतिमुच्यते॥ -तै०आ०प्र०१० अ०३४

'हे गायत्री ! तुम्हारे प्रभाव से दिन में किये पाप दिन में ही नष्ट हो जाते हैं और रात्रि में किये पाप रात्रि में ही नष्ट हो जाते हैं।'

गायत्रीं तु परित्यज्य येऽन्यमन्त्रमुपासते।
मुण्डकरा वै ते ज्ञेया इति वेदविदो विदुः॥

'जो गायत्री मन्त्र को त्याग कर अन्य मन्त्र की उपासना करते हैं, वे नास्तिक हैं, ऐसा देवताओं ने कहा है।'

गायत्रीं चिन्तयेद्यस्तु हृत्पद्मे समुपस्थिताम्।
धर्माधर्मविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥

'जो मनुष्य हृदय कमल में बैठी हुई गायत्री का चिन्तन करता है, वह धर्म, अधर्म के द्वन्द्व से छूटकर परम गति को प्राप्त होता है।'

सहस्रं जप्ता सा देवी ह्युपपातकनाशिनी।
लक्षजाप्ये तथा सा च महापातकनाशिनी॥
कोटिजाप्येन राजेन्द्र ! यदिच्छति तदाप्नुयात्।

'एक सहस्र जप करने में गायत्री उपपातकों का विनाश करती है। एक लाख जप करने से महापातकों का विनाश होता है। एक करोड़ जप करने से अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त होती है।'

गायत्री उपेक्षा की भर्त्सना

गायत्री को न जानने वाले अथवा जानने पर भी, उसकी उपासना न करने वाले द्विजों की शास्त्रकारों ने कड़ी भर्त्सना की है और उन्हें अधोगामी बताया है। इस निन्दा में इस बात की चेतावनी दी है कि जो आलस्य या अश्रद्धा के कारण गायत्री साधना में ढील करते हों, उन्हें सावधान होकर इस श्रेष्ठ उपासना में प्रवृत्त होना चाहिये।

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधः पातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥ - देवी भागवत स्कं० १२/अ० ८/८९

'गायत्री की उपासना नित्य ही समस्त वेदों में वर्णित है। गायत्री के बिना ब्राह्मण की सब प्रकार से अधोगति होती है।'

सांगांश्च चतुरो वेदानधीत्यापि सवाङ्मयान्।
गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः॥ - यो० याज्ञवल्क्य

'सस्वर और सांग चारों वेदों को जानकर भी जो गायत्री मन्त्र को नहीं जानता, उसका परिश्रम व्यर्थ है।'

गायत्रीं यः परित्यज्य चान्यमन्त्रमुपासते।
न साफल्यमवाप्नोति कल्पकोटिशतैरपि॥ - बृ० सन्ध्या भाष्य

'जो गायत्री मन्त्र को छोड़कर अन्य मन्त्र की उपासना करते हैं, वह करोड़ों जन्मों में भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं।'

विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपासनतत्परः।
शिवोपासनतो विप्रो नरकं याति सर्वथा॥ - देवी भागवत १२/८/९२

'गायत्री को त्याग कर विष्णु और शिव की पूजा करने पर भी ब्राह्मण नरक में जाता है।'

गायत्र्या रहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत्।
गायत्री-ब्रह्म-तत्त्वज्ञः सम्पूज्यस्तु द्विजोत्तमः ॥ - पारा० स्मृति ८/३१

'गायत्री से रहित ब्राह्मण शूद्र से भी अपवित्र है। गायत्री रूपी ब्रह्म तत्त्व को जानने वाला सर्वत्र पूज्य है।'

एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥ - मनुस्मृति अ० २/८०

'प्रणव व्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्र का जप सन्ध्याकाल में न करने वाला द्विज, सज्जनों में निन्दा का पात्र होता है।'

एवं यस्तु विजानाति गायत्रीं ब्राह्मणस्तु सः।
अन्यथा शूद्रधर्मा स्याद् वेदानामपि पारगः ॥ - यो० याज्ञ० ४/४१-४२

'जो गायत्री को जानता है और जपता है, वह ब्राह्मण है; अन्यथा वेदों में पारंगत होने पर भी शूद्र के समान है।'

अज्ञात्वैतां तु गायत्रीं ब्राह्मण्यादेव हीयते।
अपवादेन संयुक्तो भवेच्छ्रुतिनिदर्शनात् ॥ - यो० याज्ञ० ४/७१

'गायत्री को न जानने से ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से हीन होकर पापयुक्त हो जाता है, ऐसा श्रुति में कहा गया है।'

किं वेदैः पठितैः सर्वैः सेतिहासपुराणकैः।
सांगैः सावित्रिहीनेन न विप्रत्वमवाप्यते ॥ - बृ० पा० अ० ५/१४

'इतिहास, पुराणों के तथा समस्त वेदों के पढ़ लेने पर भी यदि ब्राह्मण गायत्री मन्त्र से हीन हो, तो वह ब्राह्मणत्व को नहीं प्राप्त होता है।'

न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्र पठनादपि।
देव्यास्त्रिकालमभ्यासाद् ब्राह्मणः स्याद् द्विजोऽन्यथा। - बृ० संध्या भाष्य

'वेद और शास्त्रों के पढ़ने से ब्राह्मणत्व नहीं हो सकता। तीनों कालों में गायत्री की उपासना से ब्राह्मणत्व होता है, अन्यथा वह द्विज नहीं रहता है।'

ओंकारं पितृरूपेण गायत्रीं मातरं तथा।
पितरौ यो न जानाति स विप्रस्त्वन्यरेतसः ॥

'ओंकार को पिता और गायत्री को माता रूप से जो नहीं जानता, वह पुरुष अन्य की सन्तान है, अर्थात् व्यभिचार से उत्पन्न है।'

उपलभ्य च सावित्रीं नोपतिष्ठति यो द्विजः।
काले त्रिकालं सप्ताहात् स पतेन् नात्र संशयः ॥

'गायत्री मन्त्र को जानकर, जो द्विज इसका आचरण नहीं करता अर्थात् इसे त्रिकाल में नहीं जपता, उसका निश्चय पतन हो जाता है।'

गायत्री आध्यात्मिक त्रिवेणी है

पिछले पृष्ठों पर कुछ थोड़े से प्रमाण गायत्री की महिमा-सूचक दिये गये हैं। इस प्रकार के प्रमाण धर्म-शास्त्रों में इतनी बड़ी मात्रा में भरे पड़े हैं कि उनका संग्रह और प्रकाशन करना कठिन है। गंगा, गीता, गौ, गायत्री यह चार आर्य धर्म की शिक्षायें हैं। भारतीय धर्म को मानने वाला प्रत्येक व्यक्ति इन चारों का माता के समान आदर करता है और एक माता की सन्तान के समान आपस में एकता का अनुभव करता है।

गायत्री को आध्यात्मिक त्रिवेणी कहा गया है। गंगा, यमुना के मिलने से एक अदृश्य, सूक्ष्म एवं अलौकिक दिव्य सरिता का आविर्भाव होता है, जिसे सरस्वती कहते हैं। गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों का सम्मिलन

त्रिवेणी कहलाता है। त्रिवेणी होने के कारण ही प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है, सब तीर्थों का राजा माना गया है। इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् की त्रिवेणी गायत्री है। इसके तीनों अक्षर संकेत रूप से इसी प्रकार के त्रिगुणात्मक सम्मेलन का रहस्योद्‌घाटन करते हैं। गा-पहला अक्षर, गंगा बोधक है। य-दूसरा अक्षर यमुना का संकेत करता है। त्री-तीसरा अक्षर त्रिवेणी का अस्तित्व बताता है। त्रयी शक्ति में कितने ही त्रिक् घुसे हुए हैं। (१) सत्, चित्, आनन्द (२) सत्य, शिव, सुन्दर (३) सत्, रज, तम, (४) ईश्वर, जीव, प्रकृति (५) ऋक्, यजु, साम, (६) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य (७) गुण, कर्म, स्वभाव (८) शैशव, यौवन, बुढ़ापा (९) ब्रह्मा, विष्णु, महेश (१०) उत्पत्ति, वृद्धि, नाश (११) सर्दी, गर्मी, वर्षा (१२) धर्म, अर्थ, काम (१३) आकाश, पाताल, पृथ्वी, (१४) देव, मनुष्य, असुर आदि अगणित त्रिक् गायत्री छन्द के गर्भ में सम्पुटित हैं। जिसमें गहराई तक प्रवेश करके मनन, चिन्तन, परिशीलन रूपी स्नान करने से, वैसा ही आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है जैसा कि भौतिक जगत् में त्रिवेणी के स्नान का पुण्य फल माना गया है। इन तीन अक्षरों के अनेक प्रकार की तीन-तीन समस्यायें मनुष्य के सामने उपस्थित की गयी हैं, जिनका भली प्रकार अवगाहन करने से जीवन-मुक्ति के परम फल को प्राप्त किया जा सकता है।

त्रिवेणी की तीन धारायें देखने में बड़ी दुस्तर, भयंकर, विशाल और अगाध दिखाई पड़ती हैं। इसी प्रकार से गायत्री में जो समस्यायें सिमटी हुई हैं, वे काफी प्रतीत होती हैं, पर जैसे त्रिवेणी की जलधारा में प्रवेश करके स्नान करने से भय दूर हो जाता है और शान्तिदायक, शीतल प्रफुल्लता प्राप्त होती है, वैसे ही गायत्री में सन्निहित समस्याओं का चिन्तन, मनन और अवगाहन करने से ऐसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है, जो सत्पथ की ओर प्रेरित करता है और शाश्वत शान्ति एवं परमानन्द के द्वार तक पहुँचा देता है।

गायत्री निस्संदेह आध्यात्मिक त्रिवेणी है, उसे तीर्थराज ही समझना चाहिये, क्योंकि उसमें सन्निहित तत्त्वज्ञान अति सरल, सुबोध, सुगम, सीधा और स्थायी सुख-शान्ति प्रदान करने वाला है।

गायत्री की महिमा अनन्त है। वेद- पुराण, शास्त्र-इतिहास, ऋषि-मुनि, गृही-विरागी सभी समान रूप से उनका महत्त्व स्वीकार करते हैं। उसमें हमारे दृष्टिकोण को बदल देने की अद्‌भुत शक्ति है। अपनी उलटी विचारधारा, भ्रान्त मनोभूमि यदि सीधी हो जाए, हमारी इच्छायें, आकांक्षायें, विचारधारा, भावनायें यदि उचित स्थान पर आ जायें, तो यह मनुष्य शरीर देवयोनि से बढ़कर और यह भूलोक सुरलोक से बढ़कर हर किसी के लिए आनन्ददायक हो सकता है। हमारी उलटी बुद्धि ही स्वर्ग को नरक बनाये हुए है। इस विषम स्थिति से उबारकर हमारे मस्तिष्क को सीधा करने की शक्ति गायत्री में है। जो उस शक्ति का उपयोग करता है, वह विषय विकारों, भ्रान्त विचारों और दुर्भावों के भव-बन्धन से छूटकर जीवन के सत्य, शिव और सुन्दर रूप का दर्शन करता हुआ परमात्मा की शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है। इसलिये वेदमाता गायत्री को महामहिमामयी कहा गया है। उसका माहात्म्य अनन्त है।

गायत्री गीता

वेदमाता गायत्री का मन्त्र छोटा-सा है। उसमें २४ अक्षर हैं, पर इतने थोड़े में ही अनन्त ज्ञान का समुद्र भरा पड़ा है। जो ज्ञान गायत्री के गर्भ में है, वह इतना सर्वांगपूर्ण एवं परिमार्जित है कि मनुष्य यदि उसे भली प्रकार समझ ले और अपने जीवन में व्यवहार करे, तो उससे लोक-परलोक सब प्रकार से सुख-शान्तिमय बन सकते हैं।

आध्यात्मिक और सांसारिक दोनों ही दृष्टिकोण से गायत्री का सन्देश बहुत ही अर्थ पूर्ण है। उसे गम्भीरतापूर्वक समझा और मनन किया जाए, तो सद्ज्ञान का अविरल स्रोत प्रस्फुटित होता है। नीचे संक्षिप्त-सा गायत्री-मन्त्रार्थ दिया जाता है। यही गायत्री गीता है-

ओमित्येव सुनामधेयमनघं विश्वात्मनो ब्रह्मणः।
सर्वेष्वेव हि तस्य नामसु वसोरेतत्प्रधानं मतम्॥

यं वेदा निगदन्ति न्यायनिरतं श्रीसच्चिदानन्दकम् ।
लोकेशं समदर्शिनं नियमनं चाकारहीनं प्रभुम् ।।१ ।।

अर्थ- जिसको वेद न्यायकारी, सच्चिदानन्द, सर्वेश्वर, समदर्शी, नियामक, प्रभु और निराकार कहते हैं, जो विश्व में आत्मा रूप से उस ब्रह्म के समस्त नामों में श्रेष्ठ नाम, पाप-रहित, पवित्र और ध्यान करने योग्य है, वह "ॐ" ही मुख्य नाम माना गया है ।

भावार्थ- "परमात्मा को प्राप्त करने और प्रसन्न करने का मार्ग उसके नियमों पर चलना है । वह निन्दा-स्तुति से प्रभावित नहीं होता, वरन् कर्मों के अनुसार फल देता है । परमात्मा को सर्वत्र व्यापक समझकर गुप्त रूप से भी पाप न करना चाहिये । प्राणियों की सेवा करना परमात्मा की ही पूजा करना है । परमात्मा को अपने अन्तस् में अनुभव करने से आत्मा पवित्र होती है और सत्, चैतन्यता तथा आनन्द की अनुभूति होती है ।

भूर्वै प्राण इति ब्रुवन्ति मुनयो वेदान्तपारं गताः,
प्राणः सर्वविचेतनेषु प्रसृतः सामान्यरूपेण च ।
एतेनैव विसिद्ध्यते हि सकलं नूनं समानं जगत्,
द्रष्टव्यः सकलेषु जन्तुषु जनैर्नित्यं ह्यसुश्चात्मवत् ।।२ ।।

अर्थ- मुनि लोग प्राण को 'भूः' कहते हैं । यह प्राण समस्त प्राणियों में सामान्य रूप से फैला हुआ है । इससे सिद्ध है कि यहाँ सब समान हैं । अतएव सब मनुष्यों और प्राणियों को अपने समान ही देखना चाहिए ।

भावार्थ- अपने समान सबको कष्ट होता है, इसलिये किसी को सताना नहीं चाहिये । दूसरों के प्रति वही व्यवहार करना चाहिये, जो हम दूसरों से अपने लिये चाहते हैं, सबमें समत्व की दृष्टि रखनी चाहिये । कुल, वंश, देश, जाति, समुदाय, स्त्री, पुरुष आदि भेदों के कारण किसी को नीचा-ऊँचा, छोटा-बड़ा नहीं समझना चाहिये । उच्चता और नीचता का कारण तो भले-बुरे कर्म ही हो सकते हैं ।

भुवर्नाशो लोके सकलविपदां वै निगदितः,
कृतं कार्यं कर्त्तव्यमिति मनसा चास्य करणम् ।
फलाशां मर्त्या ये विदधति न वै कर्मनिरताः,
लभन्ते नित्यं ते जगति हि प्रसादं सुमनसाम् ।।३ ।।

अर्थ- संसार में समस्त दुःखों का नाश ही 'भुवः' कहलाता है । कर्त्तव्य-भावना से किया गया कार्य ही कर्म कहलाता है । परिणाम में सुख की अभिलाषा को छोड़कर जो कार्य करते हैं, वे मनुष्य सदा प्रसन्न रहते हैं ।

भावार्थ- मनुष्य का अधिकार कार्य करना है, फल देने वाला ईश्वर है । अमुक वस्तु प्राप्त होने पर ही सुख माना जाए, ऐसा सोचने के बजाय ऐसा सोचना चाहिये, कि कर्त्तव्य-पालन ही हमारे लिये आनन्द का सर्वोत्तम केन्द्र है । जो अपने कर्त्तव्य कर्म को ही लक्ष्य मान लेता है, वह कर्मयोगी हर घड़ी सुखी रहता है । जो इच्छित फल की आशा के लिये लटका रहता है, उस तृष्णावान् को सदा सत्कर्म करते रहना चाहिये, गीता के कर्मयोग का यही तत्त्व है ।

स्वरेषो वै शब्दो निगदति मनःस्थैर्य-करणम्,
तथा सौख्यं स्वास्थ्यं ह्युपदिशति चित्तस्य चलतः ।
निमग्नत्वं सत्यव्रतसरसि चाचक्षति उत,
त्रिधां शांतिं ह्येतां भुवि च लभते संयमरतः ।।४ ।

अर्थ- 'स्वः' यह शब्द मन की स्थिरता का निर्देश करता है । चञ्चल मन को सुस्थिर और स्वस्थ रखो, यह उपदेश देता है । सत्य में निमग्न रहो, यह कहता है । इस उपाय से संयमी पुरुष तीनों प्रकार की शान्ति को प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ- अनिच्छित परिस्थिति प्राप्त होने पर प्राय: मनुष्य शोक, दु:ख, क्रोध, द्वेष, दीनता, निराशा, चिन्ता, भय, बेचैनी आदि से उद्विग्न होकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर अहंकार, मद, उद्दण्डता, खुशी में फूलकर अस्वाभाविक आचरण करना, इतराना, अपव्यय, शेखी आदि से ग्रस्त हो जाते हैं । ये दोनों ही स्थितियाँ एक प्रकार का नशा या ज्वर हैं । ये विवेक को अन्धा कर देते हैं , जिससे विचार और कार्यों की उचित शृंखला नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और आदमी अन्धा तथा बावला बन जाता है । इन सत्यानाशी तूफानों से आत्मा की रक्षा करने के लिये मन को स्थिर, सन्तुलित, स्वच्छ एवं सत्यप्रेमी बनाना चाहिये, तभी मनुष्य को आत्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक शांति मिल सकती है ।

ततो वै निष्पत्तिः स भुवि मतिमान् पण्डितवरः,
विजानन् गुह्यं यो मरणजीवनयोस्तदखिलम् ।
अनन्ते संसारे विचरति भयासक्तिरहित,
स्तथा निर्माणं वै निजगतिविधीनां प्रकुरुते ।।५ ।।

अर्थ- 'तत्' शब्द यह बतलाता है कि इस संसार में वही बुद्धिमान् है, जो जीवन और मरण के रहस्य को जानता है । भय और आसक्ति रहित जीता और अपनी गतिविधियों का निर्माण करता है ।

भावार्थ- मृत्यु सदा सिर पर खड़ी नाचती रहती है । इस समय साँस चल रही है, अगले ही क्षण बन्द हो जाए, इसका क्या ठिकाना है ? यह सोचकर इस सुर-दुर्लभ मानव-जीवन का श्रेष्ठतम उपयोग करना चाहिये और थोड़े जीवन में क्षणिक सुख के लिये पाप क्यों किये जाएँ, जिससे चिरकाल तक दु:ख भोगने पड़ें, ऐसा विचार करना चाहिये ।

यदि विद्याध्ययन, समाज-सुधार, धर्म-प्रचार आदि श्रेष्ठ कार्य करने हों, तो ऐसा सोचना चाहिये कि जीवन अखण्ड है । यदि इस शरीर से वह कार्य पूरा न हो सका, तो अगले में पूरा करेंगे । यह निर्विवाद है, कि जो इस जीवन का सदुपयोग कर रहा है, उसे मृत्यु के पश्चात् आनन्द ही मिलेगा । परलोक, पुनर्जन्म आदि में सुख ही प्राप्त होगा, पर जो इन जीवन-क्षणों का दुरुपयोग कर रहा है, उसका भविष्य अन्धकारमय है । इसलिये जो बीत चुका है, उसके लिये दु:ख न करते हुए शेष जीवन का सदुपयोग करना चाहिये ।

सवितुस्तु पदं वितनोति ध्रुवं,
मनुजो बलवान् सवितेव भवेत् ।
विषया अनुभूतिपरिस्थितय -
स्तु सदात्मन एव गणेदिति सः ।।६ ।।

अर्थ- 'सवितु:' यह पद बतलाता है कि मनुष्य को सूर्य के समान बलवान् होना चाहिये और सभी विषय तथा अनुभूतियाँ अपनी आत्मा से ही सम्बन्धित हैं, ऐसा विचारना चाहिये ।

भावार्थ- सूर्य को वीर्य और पृथ्वी को रज कहा जाता है । सूर्य की शक्ति से संसार की सब क्रियायें होती हैं । इसी प्रकार आत्मा अपनी क्रियाशीलता द्वारा विविध प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है । प्रारब्ध, भाग्य, दैव आदि भी अपने प्राचीन कर्मों का ही परिपाक मात्र है । इसलिये अपने लिये जैसी परिस्थिति अच्छी लगती है, उसी के योग्य अपने को बनाना चाहिये । अपना भाग्य-निर्माण करना हर मनुष्य के अपने हाथ में है । इसलिये आत्म-निर्माण की ओर ही सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये । बाहर की सहायता भी अपनी अन्तरंग स्थिति के अनुकूल ही मिलती है ।

मनुष्य को तेजस्वी, बलवान्, पुरुषार्थी बनना चाहिये । स्वास्थ्य, विद्या, धन, चतुरता, संगठन, यश, साहस और सत्य इन आठ बलों से अपने को सदैव बलवान् बनाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

वरेण्यञ्चैतद्वै प्रकटयति श्रेष्ठत्वमनिशम् ,
सदा पश्येच्छ्रेष्ठं मननमपि श्रेष्ठस्य विदधेत् ।

तथा लोके श्रेष्ठं सरलमनसा कर्म च भजेत्,
तदित्थं श्रेष्ठत्वं व्रजति मनुजः शोभितगुणैः ।।७ ।।

अर्थ- 'वरेण्यं' यह शब्द प्रकट करता है कि प्रत्येक मनुष्य को नित्य श्रेष्ठता की ओर बढ़ना चाहिये । श्रेष्ठ देखना, श्रेष्ठ चिन्तन करना, श्रेष्ठ विचारना, श्रेष्ठ कार्य करना इस प्रकार से मनुष्य को श्रेष्ठता प्राप्त होती है ।

भावार्थ- मनुष्य वैसा ही बनता है, जैसे उसके विचार होते हैं । विचार साँचा है और जीवन गीली मिट्टी । जैसे विचारों में हम डूबे रहते हैं, हमारा जीवन उसी ढाँचे में ढलता जाता है, वैसे ही आचरण होने लगते हैं, वैसे ही साथी मिलते हैं, उसी दिशा में जानकारी, रुचि तथा प्रेरणा मिलती है । इसलिये यदि अपने को श्रेष्ठ बनाना है, तो सदा श्रेष्ठ मनुष्यों के संपर्क में रहना, श्रेष्ठ पुस्तकें पढ़ना, श्रेष्ठ बातें सोचना, श्रेष्ठ घटनायें देखना, श्रेष्ठ कार्य करना आवश्यक है । दूसरों में जो श्रेष्ठतायें हों उनकी कदर करना और उन्हें अपनाना, श्रेष्ठता में श्रद्धा रखना ये सब बातें उन लोगों के लिये बहुत आवश्यक हैं, जो अपने को श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं ।

भर्गो व्याहरते पदं हि नितरां लोकः सुलोको भवेत्,
पापे पाप-विनाशने त्वविरतं, दत्तावधानो वसेत् ।
दृष्ट्वा दुष्कृतिदुर्विपाक-निचयं तेभ्यो जुगुप्सेद्धि च,
तन्नाशाय विधीयतां च सततं, संघर्षमेभिः सह ।।८ ।।

अर्थ- 'भर्गो' यह पद बताता है कि मनुष्य को निष्पाप बनना चाहिये । पापों से सावधान रहना चाहिये । पापों के दुष्परिणामों को देखकर उनसे घृणा करे और निरन्तर उनको नष्ट करने के लिये संघर्ष करता रहे ।

भावार्थ-संसार में जितने दुःख हैं, पापों के कारण हैं । अस्पतालों में, जेलखानों में तथा अन्यत्र नाना प्रकार के कष्टों से पीड़ित मनुष्य अब के या पुराने पापों से ही दुःख भोगते हैं । नरक में भी पापी ही त्रास पाते हैं । सन्त और परोपकारी पुरुष दूसरों के पापों का बोझ अपने सिर पर लेकर दुःख उठाते हैं और उन्हें शुद्ध करते हैं । चाहे, दूसरों का दुःख कोई सन्त सहे, चाहे पापी स्वयं सहे, हर हालत में दुःखों का कारण पाप ही है । इसलिये जिन्हें दुःख का भय है और सुख की इच्छा है, उन्हें चाहिये कि पापों से बचें और भूतकाल के पापों के लिये प्रायश्चित्त करें । पापों से सावधानी रखना और उन्हें भीतर-बाहर से नष्ट करने के लिये संघर्ष करना- यह बहुत बड़ा पुण्य-कार्य है, क्योंकि इससे अगणित प्राणी दुःखों से छुटकारा पाकर सुखी बनते हैं । निष्पापता में ही सच्चे आनन्द का निवास है ।

देवस्येति तु व्याकरोत्यमरतां मर्त्योऽपि संप्राप्यते,
देवानामिव शुद्धदृष्टिकरणात् सेवोपचाराद् भुवि ।
निःस्वार्थं परमार्थ-कर्मकरणात् दीनाय दानात्तथा,
बाह्याभ्यन्तरमस्य देवभुवनं संसृज्यते चैव हि ।।९ ।।

अर्थ- 'देवस्य' यह पद बतलाता है कि मरणधर्मा मनुष्य भी अमरता अर्थात् देवत्व को प्राप्त कर सकता है । देवताओं के समान शुद्ध दृष्टि रखने से, प्राणियों की सेवा करने से, परमार्थ कर्म करने से, निर्बलों की सहायता करने से मनुष्य के भीतर और बाहर देवलोक की सृष्टि होती है ।

भावार्थ- परमात्मा की बनाई हुई इस पवित्र सृष्टि में जो कुछ है, पवित्र और आनन्दमय ही है । इस सृष्टि को, संसार को प्रसन्नता की दृष्टि से देखना, उसमें मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की गयी बुराइयों को दूर करना और ईश्वरीय श्रेष्ठताओं को विकसित करना, प्रचलित करना देवकर्म है । इस देव-दृष्टि को धारण करने से मनुष्य देवता बन सकता है । जो अपने को शरीर न समझ कर आत्मा अनुभव करता है, वह अमर है । उसके पास से मृत्यु का भय दूर हो जाता है । प्राणियों को प्रेम और आत्मीयता की पवित्र दृष्टि से देखना, अपने आचरणों को पवित्र रखना, अपने से निर्बलों को ऊँचा उठाने के लिये अपनी शक्ति का दान करना यह देवत्व है । इन गुण वालों के लिये यह भूलोक भी देवलोक के समान आनन्दमय बन जाता है ।

धीमहि सर्वविधं शुचिमेव,

शक्तिचय वयमित्युपदिष्टाः ।
नो मनुजो लभते सुखशांति-
मनेन विनेति वदन्ति हि वेदाः ॥१० ॥

अर्थ- 'धीमहि' का आशय है कि हम सब लोग हृदय में सब प्रकार की पवित्र शक्तियों को धारण करें । वेद कहते हैं कि इसके बिना मनुष्य सुख-शान्ति को प्राप्त नहीं होता ।

भावार्थ- संसार में भौतिक शक्तियाँ अनेक हैं । धन, पद, वैभव, राज्य, शरीर-बल, संगठन, शस्त्र, विद्या, बुद्धि, चतुरता, कोई विशेष योग्यता आदि के बल पर लोग ऐश्वर्य और प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं, पर यह अस्थायी होती हैं । इनसे सुख मिल सकता है, पर वह छोटे-मोटे आघात में ही नष्ट भी हो सकता है । स्थायी सुख आध्यात्मिक पवित्र गुणों में है, जिन्हें 'दैवी सम्पदायें' या 'दिव्य शक्तियाँ' भी कहते हैं । निर्भयता, विवेक, स्थिरता, उदारता, संयम, परमार्थ, स्वाध्याय, तपश्चर्या, दया, सत्य, अहिंसा, नम्रता, धैर्य, अद्रोह, प्रेम, न्यायशीलता, निरालस्य आदि दैवी गुणों के कारण जो सुख मिलता है, उसकी तुलना किसी भी भौतिक सम्पदा से नहीं हो सकती । इसलिये अपनी दैवी सम्पदाओं का कोश बढ़ाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

धियो मत्योन्मथ्यागमनिगममन्त्रान् सुमतिमान्,
विजानीयात्तत्त्वं विमलनवनीतं परमिव ।
यतोऽस्मिन् लोके वै संशयगत - विचार-स्थलशते,
मतिः शुद्धैवाच्छा प्रकटयति सत्यं सुमनसे ।११ ।

अर्थ- 'धियो' पद बतलाता है कि बुद्धिमान् को चाहिये, वह वेद-शास्त्रों को बुद्धि से मथ कर मक्खन के समान उत्कृष्ट तत्त्वों को जाने, क्योंकि शुद्ध बुद्धि से ही सत्य को जाना जाता है ।

भावार्थ- संसार में अनेक विचारधारायें हैं, उनमें से अनेकों आपस में टकराती भी हैं । एक शास्त्र के सिद्धान्त दूसरे शास्त्र के विपरीत भी बैठते हैं । इसी कारण एक विद्वान् या ऋषि के विचार दूसरे विद्वान् या ऋषि के विचारों से पूर्णतया मेल नहीं खाते । ऐसी स्थिति में विचलित नहीं होना चाहिये । देश, काल, पात्र और परिस्थिति के अनुसार जो बात एक समय बिल्कुल ठीक होती है, वही भिन्न परिस्थितियों में गलत भी हो सकती है । जाड़े के दिनों में जो कपड़े लाभदायक होते हैं, उनसे गर्मी में काम नहीं चलाया जा सकता । इसी प्रकार एक परिस्थिति में जो बात उचित है, वह दूसरी परिस्थिति में अनुचित हो जाती है । इसलिये किसी ऋषि, विद्वान्, नेता व शास्त्र की निन्दा न करते हुए हमें उसमें से वही तत्त्व लेने चाहिये, जो आज की स्थिति के अनुकूल हैं । इस उचित-अनुचित का निर्णय तर्क, विवेक और न्याय के आधार पर वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए करना चाहिये ।

योनो वास्ति तु शक्तिसाधनचयो न्यूनाधिकश्चाथवा,
भागं न्यूनतमं हि तस्य विदधेमात्मप्रसादाय च ।
यत्पश्चादवशिष्टभागमखिलं त्यक्त्वा फलाशां हृदि,
तद्धीनेष्वभिलाषवत्सु वितरेद् ये शक्तिहीनाः स्वयम् ॥१२ ॥

अर्थ- 'योनः' पद का तात्पर्य है कि हमारी जो भी शक्तियाँ एवं साधन हैं, चाहे वे न्यून हों अथवा अधिक हों, उनके न्यून से न्यून भाग को ही अपनी आवश्यकता के लिये प्रयोग में लायें और शेष को निःस्वार्थ भाव से अशक्त व्यक्तियों को बाँट दें ।

भावार्थ- भगवान् ने मनुष्य को ज्ञान, बल तथा वैभव एक अमानत के रूप में इसलिये दिये हैं कि इन विभूतियों से सुसज्जित होकर अपने आप का मान, यश, सुख तथा पुण्य का श्रेय प्राप्त करे और इनका लाभ अधिक से अधिक मात्रा में दूसरों को उठाने दें । अपने ऐश, आराम, भोग, संचय या अहंकार की पूर्ति में इनका उपयोग नहीं होना चाहिये । वरन् लोकहित के लिये, अपने से निर्बलों की सहायता के लिये इनका उपयोग किया जाना चाहिये । विद्वान्, बलवान् या धनवान् का गौरव इसी बात में है कि उनके द्वारा कम ज्ञान वालों को, निर्धनों

को ऊँचा उठाने का प्रयास किया जाए। जैसे वृक्ष, कूप, तड़ाग, उपवन, पुष्प, अग्नि, जल, वायु, बिजली आदि श्रेष्ठ समझे जाने वाले पदार्थ, अपनी महान् शक्तियों को लोक-हित के लिये सदैव वितरित करते रहते हैं, वैसे ही हमें भी अपनी शक्तियों का जीवन-निर्वाह मात्र अपने लिये रख कर शेष को जनहित के लिये समर्पित कर देना चाहिये।

प्रचोदयात् स्वं त्वितरांश्च मानवान्,
नरः प्रयाणाय च सत्यवर्त्मनि।
कृतं हि कर्माखिलमित्थमंगिना,
वदन्ति धर्मं इति हि विपश्चितः ॥१३॥

अर्थ- 'प्रचोदयात्' पद का अर्थ है कि मनुष्य अपने आपको तथा दूसरों को सत्य मार्ग पर चलने के लिये प्रेरणा दे। इस प्रकार किये हुए सब कामों को विद्वान् लोग धर्म कहते हैं।

भावार्थ- प्रेरणा संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। इसके बिना सारी साधन सामग्री बेकार है, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो। प्रेरणा से उत्साहित और प्रवृत्त हुआ मनुष्य यदि कार्य आरम्भ कर देता है, तो साधन अपने आप जुटा लेता है। उसे ईश्वरीय सहायतायें मिलती हैं और अनेक सहयोगी प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये अपने आपको सन्मार्ग पर चलाने के लिए प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त करना चाहिये तथा दूसरों को श्रेष्ठता की दिशा में अग्रसर करने के लिये उन्हें प्रेरित करना चाहिये। वस्तुयें देकर किसी का उतना उपकार नहीं किया जा सकता है। सत्कार्य के लिये प्रेरणा देना इतना बड़ा पुण्य कार्य है कि उसकी तुलना में छोटी-मोटी पुण्य-क्रियायें बहुत ही तुच्छ बैठती हैं।

गायत्री-गीतां ह्येतां यो नरो वेत्ति तत्त्वतः।
स मुक्त्वा सर्वदुःखेभ्यः सदानन्दे निमज्जति ॥१४॥

अर्थ- जो मनुष्य इस गायत्री-गीता को भली प्रकार जान लेता है, वह सब प्रकार के दुःखों से छूट कर सदा आनन्दमग्न रहता है।

गायत्री गीता के उपर्युक्त १४ श्लोक समस्त वेद शास्त्रों में भरे हुए ज्ञान का निचोड़ है। समुद्र मन्थन से १४ रत्न निकले थे। समस्त शास्त्रों के समुद्र का मन्थन करके निकाले गये यह १४ श्लोक रूपी १४ रत्न हैं। जो व्यक्ति इन्हें भली प्रकार हृदयंगम कर लेता है, वह कभी भी दुःखी नहीं रह सकता, उसे सदा आनन्द ही आनन्द रहेगा।

गायत्री स्मृति

भूर्भुवः स्वस्त्रयो लोका व्याप्तमोम्ब्रह्म तेषु हि।
स एव तथ्यतो ज्ञानी यस्तद्वेत्ति विचक्षणः ॥१॥

"भूः भुवः और स्वः ये तीन लोक हैं, उन तीनों लोकों में ॐ ब्रह्म व्याप्त है। जो बुद्धिमान् उस ब्रह्म को जानता है, वही वास्तव में ज्ञानी है।"

परमात्मा का वैदिक नाम 'ॐ' है। ब्रह्म की स्फुरणा का सूक्ष्म प्रकृति पर निरन्तर आघात होता रहता है। इन्हीं आघातों के कारण सृष्टि में गतिशीलता उत्पन्न होती रहती है। काँसे के बर्तन पर जैसे हथौड़ी की हल्की चोट मारी जाए, तो वह बहुत देर तक झनझनाता रहता है, इसी प्रकार ब्रह्म और प्रकृति के मिलन-स्पन्दन स्थल पर ॐ की झन्कार होती रहती है। इसलिये यही परमात्मा का स्वयं घोषित नाम माना गया है।

यह ॐ तीनों ही लोकों में व्याप्त है। भूः पृथ्वी, भुवः पाताल, स्वः स्वर्ग- ये तीनों ही लोक परमात्मा से परिपूर्ण हैं। भूः शरीर, भुवः संसार, स्वः आत्मा यह तीनों ही परमात्मा के क्रीड़ा-स्थल हैं। इन सभी स्थलों को, निखिल ब्रह्माण्ड को भगवान् का विराट् रूप समझ कर उस आध्यात्मिक उच्च भूमिका को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये, जो गीता के ११ वें अध्याय में भगवान् ने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाकर प्राप्त कराई थी। परमात्मा को सर्वत्र सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वात्मा देखने वाला मनुष्य माया, मोह, ममता, संकीर्णता, अनुदारता, कुविचार एवं

कुकर्मों की अग्नि में झुलसने से बच जाता है और हर घड़ी परमात्मा के दर्शन करने से परमानन्द सुख में निमग्न रहता है। ॐ भूर्भुव: स्व: का तत्त्वज्ञान समझ लेने वाला ब्रह्मज्ञानी एक प्रकार से जीवन-मुक्त ही हो जाता है।

तत्- तत्त्वज्ञास्तु विद्वांसो ब्राह्मणाः स्वतपोबलैः।
अंधकारमपाकुर्युः लोकादज्ञानसम्भवम् ॥२॥

'तत्त्वदर्शी विद्वान् ब्राह्मण अपने एकत्रित तप के द्वारा संसार से अज्ञान द्वारा उत्पन्न अन्धकार को दूर करें।'

ब्राह्मण वे हैं जो तत्त्व को, वास्तविकता को, परिणाम को देखते हैं, जिन्होंने अपनी पढ़ाई को भाषा साहित्य, शिल्पकला, विज्ञान आदि की पेटभरू शिक्षा तक ही सीमित न रखकर जीवन का उद्देश्य, आनन्द और साफल्य प्राप्त करने की 'विद्या' भी सीखी है। शिक्षित तो गली-कूचों में मक्खी-मच्छरों की तरह भरे पड़े हैं, पर जो विद्वान् हैं, वे ही ब्राह्मण हैं।

भगवान् ने जिन्हें तत्त्वदर्शी और विद्वान् बनने की सुविधा एवं प्रेरणा दी है, उन ब्राह्मणों को अपनी जिम्मेदारी अनुभव करनी चाहिये, क्योंकि वे सबसे बड़े धनी हैं। लोग व्यर्थ ही ऐसा सोचते हैं कि धन की अधिकता ही सुख का कारण है। सच बात यह है कि बिना सद्ज्ञान के कोई मनुष्य सुख-शान्ति का जीवन नहीं बिता सकता, चाहे वह करोड़ों रुपयों का स्वामी क्यों न हो। भारतवासी सद्ज्ञान का महत्त्व आदि काल से समझते आये हैं, इसलिये यहाँ सद्ज्ञान के, ब्रह्मज्ञान के धनी ब्राह्मणों की मान-प्रतिष्ठा सबसे अधिक होती रही है। आज इस गये बीते जमाने में भी उसकी चिह्न पूजा किसी न किसी रूप में ब्राह्मणों के अनधिकारी वंशजों तक को प्राप्त हो जाती है।

ब्राह्मणत्व विश्व का सबसे बड़ा धन है। रत्नों का भण्डार बढ़िया, कीमती, मजबूत तिजोरी में रखा जाता है। जो शरीर तप:पूत है, तपस्या की, संयम की, तितिक्षा की, त्याग की अग्नि में तपा-तपा कर जिस तिजोरी को भली प्रकार से मजबूती से गढ़ा गया है, उसी में ब्राह्मणत्व रहेगा और ठहरेगा। जो असंयमी, भोगी, स्वार्थी, तपोविहीन हैं, वे शास्त्रों की तोतारटन्त भले ही करते हों, पर उस बकवाद के अतिरिक्त अपने में ब्राह्मणत्व को भली प्रकार सुरक्षित एवं स्थिर रखने में समर्थ नहीं हो सकते। इसलिये ब्राह्मण को, सद्ज्ञान के धनी को, अपने को तप:पूत बनाना चाहिये। तप और ब्राह्मणत्व के सम्मिश्रण से ही सोना और सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ होती है।

ब्राह्मण को भूसुर कहा जाता है। भूसुर का अर्थ है- पृथ्वी का देवता। देवता वह है जो दे। ब्राह्मण संसार का सर्वश्रेष्ठ धन का, सद्ज्ञान का धनपति होता है। वह देखता है कि जो धन उसके पास अटूट भण्डार के रूप में भरा हुआ है, उसी के अभाव के कारण सारी जनता दु:ख पा रही है। अज्ञान से, अविद्या से बढ़कर दु:खों का कारण और कोई नहीं है। जैसे भूख से छटपटाते हुए, करुण क्रन्दन करते हुए मनुष्य को देखकर सहृदय धनी व्यक्ति उन्हें कुछ दान दिये बिना नहीं रह सकते, उसी प्रकार अविद्या के अन्धकार में भटकते हुए जन समूह को सच्चा ब्राह्मण, अपनी सद्ज्ञान रूपी सम्पदा से लाभ पहुँचाता है। यह कर्तव्य आवश्यक एवं अनिवार्य है। यह ब्राह्मण की स्वाभाविक जिम्मेदारी है।

गायत्री का प्रथम शब्द 'तत्' ब्राह्मणत्व की इस महान् जिम्मेदारी की ओर संकेत करता है। जिसकी आत्मा, जितने अंशों में तत्त्वदर्शी, विद्वान् और तपस्वी है, वह उतने ही अंश में ब्राह्मण है। यह ब्राह्मणत्व जिस वर्ण, कुल, वंश के मनुष्य में निवास करता है, उसी का यह कर्तव्य-धर्म है कि अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को दूर करने के लिये जो कुछ कर सकता हो, अवश्य करता रहे।

स-सत्तावन्तस्तथा शूराः क्षत्रिया लोकरक्षकाः।
अन्यायाशक्तिसम्भूता ध्वंसयेयुर्हि त्वापदः ॥३॥

"सत्तावान् और संसार के रक्षक क्षत्रिय अन्याय और अशक्ति से उत्पन्न होने वाली आपत्तियों को नष्ट करें।"

जन-बल, शरीर-बल, बुद्धि-बल, सत्ता-शक्ति, पद, शासन, गौरव, बड़प्पन, संगठन, तेज, पुरुषार्थ, चातुर्य, साधन, साहस, शौर्य यह क्षत्रियत्व के लक्षण हैं। जिसके पास इन वस्तुओं में से जितनी अधिक मात्रा है, उतने ही अंशों में उसका क्षत्रियत्व बढ़ा हुआ है।

देखा गया है कि यह क्षत्रियत्व जब अनधिकारियों के हाथ में पहुँच जाता है तो इससे उन्हें अहंकार और मद बढ़ जाता है । अहंकार को बड़प्पन समझकर वे उसकी रक्षा के लिये अनेक प्रकार के अनावश्यक खर्च और आडम्बर बढ़ाते हैं । उसकी पूर्ति के लिये अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है, जिसे वे अनीति, अन्याय, शोषण, अपहरण द्वारा पूरी करते हैं । दूसरों को सताने में अपना पराक्रम समझते हैं । व्यसनों की अधिकता होती है और इन्द्रिय लिप्सा में प्रवृत्ति बढ़ती है । ऐसी दशा में वह क्षत्रियत्व उस व्यक्ति की आत्मा को ऊँचा उठाने और तेजस्वी महापुरुष बनाने की अपेक्षा अहंकारी, दम्भी, अत्याचारी, व्यसनी और दुराचारी बना देता है । ऐसे दुरुपयोग से बचना ही उचित है ।

गायत्री का 'स' अक्षर कहता है कि हे सत्तावानो ! तुम्हें सत्ता इसलिये दी गयी है कि शोषितों और निर्बलों को हाथ पकड़कर ऊँचा उठाओ, उनकी सहायता करो और जो दुष्ट उन्हें निर्बल समझकर सताने का प्रयास करते हैं, उन्हें अपनी शक्ति से परास्त करो । बुराइयों से लड़ने और अच्छाइयों को बढ़ाने के लिये ही ईश्वर शक्ति देता है । उसका उपयोग इसी दिशा में होना चाहिये ।

वि-वित्तशक्त्या तु कर्त्तव्या उचिताभावपूर्तय: ।
न तु शक्त्या तया कार्यं दर्पौद्धत्यप्रदर्शनम् ॥४ ॥

'धन की शक्ति द्वारा तो उचित अभावों की पूर्ति करनी चाहिये । उस शक्ति द्वारा घमण्ड और उद्दण्डता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिये ।'

विद्या और सत्ता की भाँति धन भी एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है । इसका उपार्जन इसलिये आवश्यक है कि अपने तथा दूसरों के उचित अभावों की पूर्ति की जा सके । शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के विकास के लिये, सांसारिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति के लिए धन का उपयोग होना चाहिये और इसलिये उसे कमाया जाना चाहिये ।

पर कई व्यक्ति प्रचुर मात्रा में धन जमा करने में अपनी प्रतिष्ठा अनुभव करते हैं । अधिक धन का स्वामी होना उनकी दृष्टि में कोई 'बहुत बड़ी बात' होती है । अधिक कीमती सामान का उपयोग करना, अधिक अपव्यय, अधिक भोग, अधिक विलास उन्हें जीवन की सफलता के चिह्न मालूम पड़ते हैं । इसलिये जैसे भी बने धन कमाने की उनकी तृष्णा प्रबल रहती है । इसके लिये वे धर्म-अधर्म का, उचित-अनुचित का विचार करना भी छोड़ देते हैं । धन में उनकी इतनी तन्मयता होती है कि स्वास्थ्य, मनोरंजन, स्वाध्याय, आत्मोन्नति, लोक-सेवा, ईश्वराराधन आदि सभी उपयोगी दिशाओं से वे मुँह मोड़ लेते हैं । धनपतियों को एक प्रकार का नशा-सा चढ़ा रहता है, जिससे उनकी सद्बुद्धि, दूरदर्शिता और सत्-असत् परीक्षणी प्रज्ञा कुण्ठित हो जाती है । धनोपार्जन की यह दशा निन्दनीय है ।

धन कमाना आवश्यक है, इसलिये कि उससे हमारी वास्तविक आवश्यकताएँ उचित सीमा तक पूरी हो सकें । इसी दृष्टि से प्रयत्न और परिश्रमपूर्वक लोग धन कमाएँ, गायत्री का 'वि' अक्षर वित्त (धन) के सम्बन्ध में यही संकेत करता है ।

तु-तुषाराणां प्रपातेऽपि यत्नो धर्मस्तु चात्मन: ।
महिमा च प्रतिष्ठा च प्रोक्ता परिश्रमस्य हि ॥५ ॥

"तुषारापात में भी प्रयत्न करना आत्मा का धर्म है । श्रम की महिमा और प्रतिष्ठा अपार है ऐसा कहा गया है ।"

मनुष्य जीवन में विपत्तियाँ, कठिनाइयाँ, विपरीत परिस्थितियाँ, हानियाँ और कष्ट की घड़ियाँ भी आती ही रहती हैं । जैसे रात और दिन समय के दो पहलू हैं वैसे ही सम्पदा और विपदा, सुख और दु:ख भी जीवन रथ के दो पहिये हैं । दोनों के लिये ही मनुष्य को धैर्य पूर्वक तैयार रहना चाहिये । न विपत्ति में छाती पीटे और न सम्पत्ति में इतरा कर तिरछा चले ।

कठिन समय में मनुष्य के चार साथी हैं- (१) विवेक, (२) धैर्य, (३) साहस, (४) प्रयत्न । इन चारों को मजबूती से पकड़े रहने पर बुरे दिन धीरे-धीरे निकल जाते हैं और जाते समय अनेक अनुभवों, गुणों, योग्यताओं तथा

शक्तियों को उपहार में दे जाते हैं । चाकू पत्थर पर घिसे जाने से तेज होता है, सोना अग्नि में तपकर खरा सिद्ध होता है, मनुष्य कठिनाइयों में पड़कर इतनी शिक्षा प्राप्त करता है जितनी कि दस गुरु मिलकर भी नहीं सिखा सकते हैं । इसलिये कष्ट से डरना नहीं चाहिये वरन् उपर्युक्त चार साधनों द्वारा संघर्ष करके उसे परास्त करना चाहिये ।

परिश्रम, प्रयत्न, कर्तव्य ये मनुष्य के गौरव और वैभव को बढ़ाने वाले हैं । आलसी, भाग्यवादी, कर्महीन संघर्ष से डरने वाले, अव्यावहारिक मनुष्य प्रायः सदा ही असफल होते रहते हैं । जो कठिनाइयों पर विजयी होना और आनन्दमय जीवन का रसास्वादन करना चाहते हैं, उन्हें गायत्री मन्त्र का 'तु' अक्षर उपदेश करता है कि प्रयत्न करो, परिश्रम करो, कर्त्तव्य पथ पर बहादुरी से डटे रहो, क्योंकि पुरुषार्थी की महिमा अपार है । 'पुरुष' कहाने का अधिकारी वही है जो पुरुषार्थी है ।

व-वद नारीं विना कोऽन्यो निर्माता मनुसन्ततेः ।
महत्त्वं रचनाशक्तेः स्वस्या नार्या हि ज्ञायताम् ॥ ६ ॥

"नारी के बिना मनुष्य को बनाने वाला दूसरा और कौन है अर्थात् मनुष्य की निर्मात्री नारी ही है । नारी को अपनी रचना शक्ति का महत्त्व समझना चाहिये ।"

जन-समाज दो भागों में बँटा हुआ है (१) नर (२) नारी । नर की उन्नति, सुविधा एवं सुरक्षा के लिये काफी प्रयत्न किया जाता है, परन्तु नारी हर क्षेत्र में पिछड़ी हुई है । फलस्वरूप हमारा आधा संसार, आधा परिवार, आधा जीवन पिछड़ा हुआ रह जाता है । जिस रथ का एक पहिया बड़ा और एक छोटा हो, जिस हल में एक बैल बड़ा और दूसरा बहुत छोटा जुता हो, उसके द्वारा संतोषजनक कार्य नहीं हो सकता । हमारा देश, हमारा समाज, समुदाय तब तक सच्चे अर्थों में विकसित नहीं कहा जा सकता, जब तक कि नारी को भी नर के समान ही अपनी क्रियाशीलता एवं प्रतिभा प्रकट करने का अवसर प्राप्त न हो ।

नारी से ही नर उत्पन्न होता है । बालक की आदि गुरु उसकी माता ही होती है । पिता के वीर्य की एक बूँद निमित्त ही होती है । बाकी बालक के सब अंग-प्रत्यंग माता के रक्त से ही बनते हैं । उस रक्त में जैसी स्वस्थता, प्रतिभा, विचारधारा होगी उसी के अनुसार बालक का शरीर, मस्तिष्क और स्वभाव बनेगा । नारियाँ यदि अस्वस्थ, अशिक्षित, अविकसित, कूप-मण्डूक और पिछड़ी हुई रहेंगी, तो उनके द्वारा उत्पन्न हुए बालक भी इन्हीं दोषों से युक्त होंगे । ऊसर खेत में अच्छी फसल पैदा नहीं हो सकती । अच्छे फलों का बाग लगाना है तो अच्छी भूमि की आवश्यकता होगी ।

गायत्री का 'व' अक्षर कहता है कि यदि मनुष्य जाति अपनी उन्नति चाहती है तो उसे पहले नारी को शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में प्रतिभावान् सुविकसित बनाना चाहिये । तभी नर समुदाय में सबलता, सूक्ष्मता, समृद्धि, सद्बुद्धि, सद्गुण और महानता के संस्कारों का विकास हो सकता है । नारी को पिछड़ी हुई रखना अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना है ।

रे-रेवेव निर्मला नारी पूजनीया सतां सदा ।
यतो हि सैव लोकेऽस्मिन् साक्षाल्लक्ष्मीर्मता बुधैः ॥ ७ ॥

"सज्जन पुरुष को हमेशा नर्मदा नदी के समान निर्मल नारी की पूजा करनी चाहिये; क्योंकि विद्वानों ने उसी को इस संसार में साक्षात् लक्ष्मी माना है ।"

स्त्री लक्ष्मी का अवतार है । जहाँ नारी सुलक्षिणी है, बुद्धिमती है और सहयोगिनी है, वहाँ गरीबी होते हुए भी अमीरी का आनन्द बरसता रहता है । धन-दौलत निर्जीव लक्ष्मी है, किन्तु स्त्री लक्ष्मीजी की सजीव प्रतिमा है, उसका यथोचित आदर, सत्कार और परितोषण होना चाहिये ।

जैसे नर्मदा नदी का जल सदा निर्मल रहता है, उसी प्रकार ईश्वर ने नारी को निर्मल अन्तःकरण दिया है । परिस्थिति दोष के कारण अथवा दुष्ट संगति से कभी-कभी उसमें विकार पैदा हो जाते हैं, पर इन कारणों को बदल दिया जाए, तो नारी हृदय पुनः अपनी शाश्वत निर्मलता पर लौट आता है । स्फटिक मणि को रंगीन मकान में रखा

जाए या उसके निकट कोई रंगीन पदार्थ रख दिया जाए, तो वह मणि भी रंगीन छाया के कारण रंगीन दिखायी पड़ने लगती है । परन्तु पीछे जब उन कारणों को हटा दिया जाए, तो वह शुद्ध, निर्मल, शुभ्र मणि ही दिखाई पड़ती है । इसी प्रकार नारी जब बुरी परिस्थितियों में फँसी हो, तब बुरी दिखाई देती है । उस परिस्थिति का अन्त होते ही वह निर्मल एवं निर्दोष हो जाती है ।

वैधव्य, किसी की मृत्यु, घाटा आदि दुर्घटनायें घटित होने पर उसे नव आगन्तुक वधू के भाग्य का दोष बताना नितांत अनुचित है । ऐसी घटनायें होतव्यता के अनुसार होती हैं । नारी, तो लक्ष्मी का अवतार होने से सदा ही कल्याणकारिणी और मंगलमयी है । गायत्री का अक्षर 'रे' नारी सम्मान की अभिवृद्धि चाहता है, ताकि लोगों को मंगलमय वरदान प्राप्त हो ।

णि- न्यस्यन्ति ये नराः पादान् प्रकृत्याज्ञानुसारतः ।
स्वस्थाः सन्तस्तु ते नूनं रोगमुक्ता भवन्ति हि ॥८ ॥

"जो मनुष्य प्रकृति की आज्ञानुसार पैरों को रखते हैं अर्थात् प्रकृति की आज्ञानुसार चलते हैं, वे मनुष्य निश्चय ही रोगों से मुक्त होते हुए स्वस्थ हो जाते हैं ।

स्वास्थ्य को ठीक रखने और बढ़ाने का राजमार्ग प्रकृति के आदेशानुसार चलना, प्राकृतिक आहार-विहार अपनाना, प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना है । अप्राकृतिक, अस्वाभाविक, बनावटी, आडम्बर और विलासिता से भरा हुआ जीवन बिताने से लोग बीमार होते हैं और अल्पायु में ही काल के ग्रास बन जाते हैं ।

(१) भूख लगने पर खूब चबाकर प्रसन्न चित्त से, थोड़ा पेट खाली रखकर भोजन करना (२) फल, शाक, दूध, दही, छिलके समेत अन्न और दालें जैसे ताजे सात्त्विक आहार लेना ।(३) नशीली चीजें, मिर्च-मसाले, चाट, पकवान, मिठाइयाँ, मांस आदि अभक्ष्यों से बचना । (४) सामर्थ्य के अनुकूल श्रम एवं व्यायाम करना । (५) शरीर, वस्त्र, मकान और प्रयोजनीय सामान की भली प्रकार सफाई रखना । (६) रात को जल्दी सोना और प्रातः जल्दी उठना । (७) मनोरंजन, देशाटन, निर्दोष विनोद के लिये पर्याप्त अवसर प्राप्त करते रहना ।(८) कामुकता, चटोरेपन, अन्याय, बेईमानी, ईर्ष्या, द्वेष, चिन्ता, क्रोध, पाप आदि के कुविचारों से मन को हटाकर सदा प्रसन्नता और सात्त्विकता के सद्विचारों में रमण करना । (९) स्वच्छ जलवायु का सेवन (१०) उपवास, एनीमा, फलाहार, जल, मिट्टी आदि प्राकृतिक उपचारों से रोग-मुक्ति का उपाय करना ।

ये दस नियम ऐसे हैं जिन्हें अपनाकर प्राकृतिक जीवन बिताने से खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करना और प्राप्त स्वास्थ्य को सुरक्षित एवं उन्नत बनाना बिल्कुल सरल है । गायत्री का 'णि' अक्षर यही उपदेश करता है ।

य–यथेच्छति नरस्त्वन्यैः सदान्येभ्यस्तथाचरेत् ।
नम्रः शिष्टः कृतज्ञश्च सत्यसाहाय्यवान् भवेत ॥९ ॥

"मनुष्य दूसरे के साथ उस प्रकार का आचरण करे, जैसा वह दूसरों के द्वारा चाहता है और उसे नम्र, शिष्ट, कृतज्ञ और सच्चाई के साथ सहयोग की भावना वाला होना चाहिये ।"

दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसकी कसौटी यह है कि "हम दूसरों से जैसा व्यवहार अपने लिये चाहते हैं, वैसा ही आचरण स्वयं भी दूसरों के साथ करें ।" दुनिया कुएँ की आवाज की तरह है । कुएँ में मुँह करके जैसी वाणी हम बोलेंगे, बदले में वैसी ही प्रतिध्वनि दूसरी ओर से आयेगी ।

हर एक मनुष्य चाहता है कि दूसरे आदमी उससे नम्र बोलें, सभ्य व्यवहार करें, ईमानदारी से बरतें, कोई भूल हो जाये तो उसे सहन कर लें, मार्ग में कोई रोड़ा न अटकाएँ, उसकी बहिन-बेटियों पर कुदृष्टि न डालें तथा समय-समय पर उदारता एवं सहयोग की भावना का परिचय दें । जब हम दूसरों से ऐसा व्यवहार चाहते हैं तो हमारे लिये भी यह उचित है कि वैसा ही व्यवहार दूसरों से करें । कारण यह है कि सदा ही क्रिया से प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है । यदि हम बुराई करेंगे, तो दूसरों के मन पर उसकी छाप पड़ेगी, प्रतिक्रिया होगी, जो अपने लिये ही नहीं, अन्यों के लिये भी अहितकर होती है । यदि लोग अपने विचार और कार्यों में वैसे ही तत्त्व भर लें, जैसे कि दूसरों में होने की आशा करते हैं तो संसार में सुख-शान्ति की स्थापना हो सकती है ।

गायत्री का अक्षर "य" शास्त्रकारों की **"आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"** उक्ति का उद्घोष करता है। इसे क्रियात्मक रूप में लाना, गायत्री शिक्षा की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ाना है।

भ-भवोद्विग्नमना नैव हृदुद्वेगं परित्यज।
कुरु सर्वास्ववस्थासु शांतं संतुलितं मन: ॥१०॥

"मानसिक उत्तेजना को छोड़ दो। सभी अवस्थाओं में मन को शान्त और सन्तुलित रखो।"

शरीर में उष्णता की मात्रा अधिक बढ़ जाना 'ज्वर' कहलाता है और ज्वर अनेक दुष्परिणामों को पैदा कर सकता है वैसे ही उद्वेग, आवेश, उत्तेजना, मद, आतुरता आदि लक्षण मानसिक ज्वर के हैं। आवेश का अन्धड़-तूफान जिस समय मन में आता है उस समय ज्ञान, विवेक सब का लोप हो जाता है और उस सन्निपात से ग्रस्त व्यक्ति अंड-बंड बातें बकता है, न करने लायक अस्त-व्यस्त क्रियायें करता है। यह स्थिति मानव जीवन में सर्वथा अवांछनीय है।

विपत्ति पड़ने पर लोग चिन्ता, शोक, निराशा, भय, घबराहट, क्रोध, कायरता आदि विषादात्मक आवेश से ग्रस्त हो जाते हैं और सम्पत्ति बढ़ने पर अहंकार, मद, मत्सर, अति हर्ष, अमर्यादा, नास्तिकता, अतिभोग, ईर्ष्या, द्वेष आदि विध्वंसक उत्तेजना में फँस जाते हैं। कई बार लोभ और भोग का आकर्षण उन्हें इतना लुभा लेता है कि वे आँखें रहते हुए भी अन्धे हो जाते हैं। इन तीनों स्थितियों में मनुष्य का होश-हवास दुरुस्त नहीं रहता। देखने में वह स्वस्थ और भला-चंगा दीखता है, पर वस्तुत: उसकी आन्तरिक स्थिति पागलों, बालकों, रोगियों तथा उन्मत्तों जैसी हो जाती है। ऐसी स्थिति मनुष्य के लिये विपत्ति, त्रास, अनिष्ट और अनर्थ के अतिरिक्त और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकती। इसलिये गायत्री के 'भ' शब्द का सन्देश है कि इन आवेशों और उत्तेजनाओं से बचो। दूरदर्शिता, विवेक, शान्ति और स्थिरता से काम लो। बदली की छाया की तरह रोज घटित होती रहने वाली रंग-बिरंगी घटनाओं में अपनी आंतरिक शांति को नष्ट न होने दो। मस्तिष्क को स्वस्थ रखो, चित्त को शान्त रहने दो, आवेश की उत्तेजना से नहीं, विवेक और दूरदर्शिता के आधार पर अपनी विचारधारा और कार्य प्रणाली को चलाओ।

गो-गोप्या स्वीया मनोवृत्तिर्नासहिष्णुर्नरो भवेत्।
स्थितिमन्यस्य संवीक्ष्य तदनुरूपतां चरेत्॥११॥

"अपने मनोभावों को नहीं छिपाना चाहिये। मनुष्य को असहिष्णु नहीं होना चाहिये। दूसरे की स्थिति को देखकर उसके अनुसार आचरण करें।"

अपने मनोभाव और मनोवृत्ति को छिपाना, छल, कपट और पाप है। जैसे भीतर है, वैसे ही बाहर प्रकट कर दिया जाए, तो वह पाप निवृत्ति का सबसे बड़ा राजमार्ग है। स्पष्ट कहने वाले, खरी कहने वाले, जैसा पेट में है वैसा मुँह से कहने वाले, लोग चाहे किसी को कितने ही बुरे क्यों न लगें, पर वे ईश्वर के आगे, आत्मा के आगे अपराधी नहीं ठहरते। जो आत्मा पर असत्य का आवरण चढ़ाते रहते हैं, वे एक प्रकार के आत्म हत्यारे हैं। कोई व्यक्ति यदि अधिक रहस्यवादी हो, अधिक आपराधिक कार्य करता हो, तो भी वह अपने कुछ ऐसे आत्मीय जन, विश्वासी जीव अवश्य रखना चाहता है, जिनके आगे अपने सब रहस्य प्रकट करके मन हल्का कर लिया करे। ऐसे आत्मीय मित्र और गुरुजन हर मनुष्य को नियुक्त कर लेने चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य के दृष्टिकोण, विचार, अनुभव, अभ्यास, ज्ञान, स्वार्थ, रुचि एवं सस्कार भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिये सबका सोचना एक प्रकार का नहीं हो सकता। इस तथ्य को समझते हुए दूसरों के प्रति सहिष्णुता होनी चाहिये। अपने से किसी भी अंश में मतभेद रखने वाले को मूर्ख, अज्ञानी, दुराचारी या विरोधी मान लेना उचित नहीं। ऐसी असहिष्णुता झगड़ों की जड़ है। एक-दूसरे के दृष्टिकोण के अन्तर को समझते हुए यथासम्भव समझौते का मार्ग निकालना चाहिये। फिर भी जो मतभेद रह जाए उसे पीछे धीरे-धीरे सुलझाते रहने के लिये छोड़ देना चाहिये।

संसार में सभी प्रकृति के मनुष्य हैं। मूर्ख, विद्वान्, रोगी, स्वस्थ, पापी, पुण्यात्मा, पाखण्डी, कायर, वीर, कटुवादी, नम्र, चोर, ईमानदार, निन्दनीय, आदरास्पद, स्वधर्मी, विधर्मी, दया-पात्र, दण्डनीय, शुष्क, सरस, भोगी, त्यागी आदि

परस्पर विरोधी स्थितियों के मनुष्य भरे पड़े हैं। उनकी स्थिति के आधार पर ही उनके लिये शक्य सलाह दें। सबसे एक समान व्यवहार नही हो सकता और न सब एक मार्ग पर चल सकते हैं। यह सब बातें 'गो' अक्षर हमें सिखाता है।

दे-देयानि स्ववशे पुंसा स्वेन्द्रियाण्यखिलानि वै।
असंयतानि खादन्तीन्द्रियाण्येतानि स्वामिनम्॥१२।

'मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने वश में करनी चाहिये। ये असंयत इन्द्रियाँ स्वामी को खा जाती हैं।"

इन्द्रियाँ आत्मा के औजार हैं, घोड़े हैं, सेवक हैं। परमात्मा ने इन्हें इसलिये प्रदान किया है कि इनकी सहायता से आत्मा की आवश्यकता पूरी हो और सुख मिले। सभी इन्द्रियाँ बड़ी उपयोगी हैं। सभी का काम जीव को उत्कर्ष एवं आनन्द प्रदान करना है। यदि उनका सदुपयोग हो, तो क्षण-क्षण पर मानव-जीवन का मधुर रस चखता हुआ प्राणी अपने भाग्य को सराहता रहेगा।

किसी इन्द्रिय का भोग पाप नहीं है। सच तो यह है कि अन्त:करण को, विविध क्षुधाओं को, तृष्णाओं को तृप्त करने की इन्द्रियाँ एक माध्यम हैं। जैसे पेट की भूख-प्यास को न बुझाने से शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है, वैसे ही सूक्ष्म शरीर की क्षुधायें उचित रीति से तृप्त न की जाती रहें, तो आंतरिक क्षेत्र का सन्तुलन बिगड़ जाता है और अनेक मानसिक रोग उठ खड़े होते हैं।

इन्द्रिय भोगों की जगह-जगह निन्दा की जाती है और वासनाओं को दमन करने का उपदेश दिया जाता है। उसका वास्तविक तात्पर्य यह है कि अनियन्त्रित इन्द्रियाँ स्वाभाविक एवं आवश्यक मर्यादा का उल्लंघन करके इतनी स्वेच्छाचारी एवं चटोरी हो जाती हैं कि वे स्वास्थ्य और धर्म के लिये संकट उत्पन्न करके भी मनमानी करती हैं। आजकल अधिकांश मनुष्य इसी प्रकार के इन्द्रिय-गुलाम हैं। अपनी वासना पर काबू नहीं रख सकते। बेकाबू हुई वासना अपने स्वामी को खा जाती है।

गायत्री का 'दे' अक्षर आत्म-नियन्त्रण का उपदेश देता है। इन्द्रियों पर हमारा काबू हो, वे अपनी मनमानी करके हमें जब चाहे जिधर को घसीट न सकें, बल्कि हम जब आवश्यकता अनुभव करें, तब उचित आंतरिक भूख बुझाने के लिये उनका उपयोग कर सकें। यही निग्रह है। निगृहीत इन्द्रियों से बढ़कर मनुष्य का सच्चा मित्र तथा अनियन्त्रित इन्द्रियों से बढ़कर बड़ा शत्रु और कोई नहीं है।

व-वस नित्यं पवित्रः सन् बाह्याभ्यन्तरतस्तथा।
यतः पवित्रतायां हि राजतेऽतिप्रसन्नता॥ १३॥

"मनुष्य को बाहर और भीतर सब तरह से पवित्र होकर रहना चाहिये; क्योंकि पवित्रता में ही प्रसन्नता रहती है।"

पवित्रता- अहा ! कितना शीतल, शान्तिदायक, चित्त को प्रसन्न और हल्का करने वाला शब्द है। कूड़ा, करकट, मैल, विकार, पाप, गन्दगी, दुर्गन्ध, अव्यवस्था, घिचपिच को झाड़-बुहार कर स्वच्छता, सफाई, पवित्रता स्थापित कर ली जाती है, तो पहली और पीछे की स्थिति में कितना भारी अन्तर हो जाता है।

मलिनता, अन्ध तामसिकता की प्रतीक है। आलस्य और दारिद्र्य, पाप और पतन जहाँ रहते हैं, वहाँ मलिनता एवं गन्दगी का निवास होता है। जो इस प्रकृति के हैं उनके वस्त्र, घर, सामान, शरीर, मन सब में मन्दगी और अस्तव्यस्तता भरी रहती है। इसके विपरीत जहाँ चैतन्य, जागरूकता, सुरुचि, सात्त्विकता होगी, वहाँ सबसे पहले स्वच्छता की ओर ध्यान जाएगा। सफाई, सादगी, सजावट, व्यवस्था का नाम ही पवित्रता है।

मलिनता से घृणा होनी चाहिये, पर उसे हटाने या उठाने में रुचि होनी चाहिये। जो गन्दगी को छूने या उसे उठाने, हटाने से हिचकिचाते हैं, वे सफाई नहीं रख सकते। मन में, शरीर में, वस्त्रों में, समाज में हर घड़ी गन्दगी पैदा होती है। निरन्तर टूट-फूट का जीर्णोद्धार न किया जाए, तो गन्दगी बढ़ती जाएगी और सफाई चाहने की इच्छा केवल एक कल्पना मात्र बनी रह जाएगी।

गायत्री का 'व' अक्षर स्वच्छता का सन्देश देता है । स्वच्छ शरीर, स्वच्छ वस्त्र, स्वच्छ निवास, स्वच्छ सामान, स्वच्छ जीविका, स्वच्छ विचार, स्वच्छ व्यवहार- जिसमें इस प्रकार की स्वच्छतायें निवास करती हैं, वह पवित्रात्मा मनुष्य निष्पाप जीवन व्यतीत करता हुआ पुण्य-गति को प्राप्त करता है ।

स्य-स्यन्दनं परमार्थस्य परार्थो हि बुधैर्मतः ।
योऽन्यान् सुखयते विद्वान् तस्य दुःखं विनश्यति ।।१४ ।।

"दूसरों का प्रयोजन सिद्ध करना परमार्थ का रथ है, ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है । जो विचारवान् दूसरे लोगों को सुख देता है, उसका दुःख नष्ट हो जाता है ।"

लोक व्यवहार के तीन मार्ग हैं- (१) अर्थ- जिसमें दोनों पक्ष समान रूप से आदान-प्रदान करते हैं, (२) स्वार्थ- दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना लाभ करना, (३) परमार्थ- अपनी हानि करके भी दूसरों को लाभ पहुँचाना । स्वार्थ में चोरी, ठगी, अपहरण, शोषण, बेईमानी आदि आते हैं । परमार्थ में दान, सेवा, सहायता, शिक्षा आदि कार्यों को कहा जाता है ।

अर्थ (जीविका) हमारा नित्यकर्म है । उसके बिना जीवन यात्रा भी नहीं चल सकती । आहार निद्रा, भोजन, मल-त्याग आदि के समान स्वाभाविक होने के कारण उसका विधि-निषेध कुछ नहीं है । वह तो हर एक को करना ही होता है । स्वार्थ त्याज्य है, निन्दनीय है, पाप मूलक है, उससे यथासंभव बचते ही रहना चाहिये । परमार्थ धर्म कार्य है, इससे त्याग का, उदारता का अभ्यास बढ़ता है, आत्म-कल्याण का धर्म-मार्ग प्रशस्त होता है तथा उससे दूसरों का लाभ होने से वे प्रसन्न होकर बदले में प्रत्युपकार करते हैं, प्रशंसा और आदर देते हैं और कृतज्ञ रहते हैं ।

गायत्री का 'स्य' शब्द परमार्थ के लिये प्रेरणा देता है । हर मनुष्य का कर्तव्य है कि अर्थ उपार्जन करता हुआ स्वार्थ से बचे और परमार्थ के लिये यथा सम्भव प्रयत्नशील रहे । अपना पेट तो पशु भी भर लेते हैं, प्रशंसनीय वह है जिसके द्वारा दूसरे भी लाभ उठायें ।

धी-धीरस्तुष्टो भवेन्नैव त्वेकस्यां हि समुन्नतौ ।
क्रियतामुन्नतिस्तेन सर्वास्वाशासु जीवने ।।१५ ।।

"धीर पुरुष को एक ही प्रकार की उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये । मनुष्य को जीवन की सभी दिशाओं में उन्नति करनी चाहिये ।"

जैसे शरीर के कई अंग हैं और उन सभी का पुष्ट होना आवश्यक होता है, वैसे ही जीवन की अनेक दिशायें हैं और उन सभी का विकास होना सर्वतोमुखी उन्नति का चिह्न है । यदि पेट बहुत बढ़ जाए और हाथ-पाँव पतले हो जाएँ, तो इस विषमता से प्रसन्नता न होकर चिन्ता ही बढ़ेगी । इसी प्रकार यदि कोई आदमी केवल धनी, केवल विद्वान् या केवल पहलवान बन जाए तो वह उन्नति पर्याप्त न होगी । वह पहलवान किस काम का जो दाने-दाने को मोहताज हो । वह विद्वान् किस काम का जो रोगों से ग्रस्त हो । वह धनी किस काम का, जिसके पास न विद्या है न तनदुरुस्ती ।

केवल एक ही दिशा में उन्नति के लिये अत्यधिक प्रयत्न करना और अन्य दिशाओं की उपेक्षा करना, उसकी ओर से उदासीन रहना उचित नहीं । जैसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, वायव्य, नैर्ऋत्य, आग्नेय आठ दिशायें हैं, वैसे ही जीवन की भी आठ दिशायें हैं, आठ बल हैं । (१) स्वास्थ्य-बल, (२) विद्या-बल, (३) धन-बल, (४) मित्र-बल, (५) प्रतिष्ठा-बल, (६) चातुर्य-बल, (७) साहस-बल, (८) आत्म-बल । इन आठों का यथोचित मात्रा में संचय होना चाहिये । जैसे किसान खेत की सब ओर से रखवाली करता है, जैसे चतुर सेनापति युद्ध क्षेत्र के सब मोर्चों की रक्षा करता है, वैसे ही जीवन के ये आठों मोर्चे सावधानी के साथ ठीक रखे जाने चाहिये । जिधर भी भूल रह जायेगी, उधर से ही शत्रु के आक्रमण होने और परास्त होने का भय रहेगा ।

गायत्री का 'धी' शब्द हमें सजग करता है कि आठों बल बढ़ाओ, आठों मोर्चों पर सजग रहो,

अष्टभुजी दुर्गा की उपासना करो, आठों दिशाओं की रखवाली करो, तभी सर्वांगीण उन्नति हो सकेगी। सर्वांगीण उन्नति ही स्वस्थ उन्नति है, अन्यथा किसी एक अंग को बढ़ा लेना और अन्यों को दुर्बल रखना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं।

म-महेश्वरस्य विज्ञाय नियमान्यायसंयुतान्।
तस्य सत्तां च स्वीकुर्वन् कर्मणा तमुपासयेत्॥१६॥

"परमात्मा के न्यायपूर्ण नियमों को समझकर और उसकी सत्ता को स्वीकार करते हुए कम से कम उस परमात्मा की उपासना करे।"

परमात्मा के नियम न्यायपूर्ण हैं। सृष्टि में उसके प्रधान कार्य भी दो ही हैं। (१) संसार को नियमबद्ध रखना, (२) कर्मों का न्यायानुकूल फल देना। इन दोनों ईश्वरीय प्रधान कार्यों को समझकर जो अपने को नियमानुसार बनाता है, प्रकृति के कठोर नियमों को ध्यान में रखता है, सामाजिक, राजकीय, धार्मिक, लोक-हितकारी कानूनों, कायदों को मानता है, वह एक प्रकार से ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार जो यह समझता है कि न्याय की अदालत में खड़ा होना ही पड़ेगा और बुरे-भले कर्मों के अनुसार दुःख-सुख की प्राप्ति अनिवार्यतः होगी, वह ईश्वर के समीप पहुँचता है। काम करने पर ही उसकी उजरत मिलती है। जो पसीना बहायेगा, परिश्रम करेगा, पुरुषार्थ, उद्योग और चतुरता का परिचय देगा, उसे उसके प्रयत्न के अनुसार साधन सामग्री जुटाने में सफलता मिलेगी।

परमात्मा की पूजा, उपासना की जितनी साधनायें हैं, जितने कर्मकाण्ड हैं, उनका तात्पर्य यही है कि साधक, परमात्मा के अस्तित्व पर, उसकी सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता पर विश्वास करे। यह विश्वास जितना दृढ़ होगा, उतना ही उसे परमात्मा का नियम और न्याय स्मरण रहेगा। इन दोनों की कठोरता और निश्चितता पर विश्वास होना, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा का सेतु है, जो समझता है कि शीघ्र या देर-सबेर में, तुरन्त या विलम्ब से कर्म का फल मिले बिना नहीं रह सकता, वह आलसी या कुकर्मी नहीं हो सकता। जो आलस्य और कुकर्म से जितना बचता है, वह ईश्वर का उतना ही बड़ा भक्त है। गायत्री का 'म' अक्षर ईश्वर उपासना के रहस्य का स्पष्टीकरण करता है और बताता है कि ईश्वरीय नियम और न्याय का ध्यान रखते हुए हम सतपथ पर चलें।

हि-हितं मत्वा ज्ञानकेन्द्रं स्वातंत्र्येण विचारयेत्।
नान्धानुसरणं कुर्यात् कदाचित् कोऽपि कस्यचित्॥१७॥

"हितकारी ज्ञान केन्द्र को समझकर स्वतंत्रतापूर्वक विचार करे। कभी भी कोई किसी का अन्धानुसरण न करे।"

देश, काल, पात्र, अधिकार और परिस्थिति के अनुसार मानव जाति के हल और सुविधा के लिये विविध प्रकार के नियम, धर्मोपदेश, कानून और प्रथाओं का निर्माण एवं परिचालन होता है। परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ इन प्रथाओं एवं मान्यताओं का परिवर्तन होता रहता है। आदिकाल से लेकर अब तक, अनेकों प्रकार की शासन-पद्धतियाँ, धर्म-धारणायें, रीति-रिवाज तथा परम्परायें बदल चुकी हैं। समय-समय पर जो परिवर्तन होते रहते हैं, उन सभी का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। यही कारण है कि उनमें परस्पर विरोधी बातें दिखाई पड़ती हैं। वास्तव में विरोध कुछ नहीं है। विभिन्न समयों पर विभिन्न कारणों से जो परिवर्तन रीति-नीति में होता रहता है, वह पुस्तकों में लिखा तो है, पर वह स्पष्ट नहीं है कि ये पुस्तकें और प्रथायें किस-किस काल में रही हैं। यदि उनमें काल का उल्लेख होता, तो ग्रन्थों में परस्पर विरोध न दिखाई पड़ता और पाठक समझ जाते कि देश, काल, परिस्थिति के कारण यह अन्तर है, विरोध नहीं।

समाज के सुसंचालन के लिये प्रथायें हैं। मनुष्य जाति की सुव्यवस्था के लिये उन्हें बनाया गया है। ऐसा नहीं कि उन प्रथाओं को अपरिवर्तनशील समझ कर समाज और जाति के लिये उन्हें अमिट लकीर मान लिया जाए। संसार में आदि काल से बराबर परिवर्तन होता आ रहा है। कई रिवाज आज के लिये अनुपयुक्त हैं, तो ऐसा नहीं कि परम्परा मोह के कारण अन्धानुकरण किया ही जाए।

गायत्री का 'हि' अक्षर कहता है कि मनुष्य के द्वारा समाज के हित का ध्यान रखते हुए देश, काल और विवेक के अनुसार प्रथाओं को, परम्पराओं को बदला जा सकता है । आज हिन्दू समाज में ऐसी अगणित प्रथायें प्रचलित हैं, जिन्हें बदलने की अत्यधिक आवश्यकता है ।

धि-धिया मृत्युं स्मरन् मर्म जानीयाज्जीवनस्य च ।
तदा लक्ष्यं समालक्ष्य पादौ सन्ततमाक्षिपेत् ॥१८ ॥

"बुद्धि से मृत्यु का ध्यान रखे और जीवन के मर्म को समझे, तब अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अपने पैरों को चलाए, अर्थात् निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़े ।"

जीवन और मृत्यु के रहस्य को विवेकपूर्वक गम्भीरता से समझना आवश्यक है । मृत्यु कोई डरने की बात नहीं, पर उसे ध्यान में रखना आवश्यक है । न जाने किस समय मृत्यु सामने आ खड़ी हो और कूच की तैयारी करनी पड़े । इसलिये जो समय हाथ में है, उसे अच्छे से अच्छे उपयोग में लाना चाहिये । धन, यौवन आदि अस्थिर हैं । छोटे से रोग या हानि से इनका विनाश हो सकता है, इसलिये इनका अहंकार न करके, दुरुपयोग न करके, ऐसे कार्यों में लगाना चाहिये, जिससे भावी जीवन में सुख-शान्ति की अभिवृद्धि हो ।

जीवन एक अभिनय है और मृत्यु उसका पटाक्षेप है । इस अभिनय को हमें इस प्रकार करना चाहिये, जिससे दूसरों की प्रसन्नता बढ़े और अपनी प्रशंसा हो । नाटक या खेल के समय सुखपूर्ण और दुःख भरे अनेकों अवसर आते हैं, पर अभिनयकर्त्ता समझता है कि यह केवल खेल मात्र हो रहा है, इसमें वास्तविकता कुछ नहीं है, उस खेल के समय होने वाले दुःख के अभिनय में न दुःखी होता है, न सुख के अभिनय में सुखी । वरन् अपना कौशल प्रदर्शित करने में, अपनी नाट्य सफलता में प्रसन्नता अनुभव करता है । जीवन, नाटक का भी अभिनय इसी प्रकार होना चाहिये । हर समय मनुष्य पर आये दिन आने वाली सम्पदा-विपदा का कुछ महत्त्व नहीं, उनकी ओर विशेष ध्यान न देकर अपना कर्म-कौशल दिखाने के लिये हमें प्रयत्नशील रहना चाहिये । मृत्यु जीवन का अन्तिम अतिथि है । इसके स्वागत के लिये सदा तैयार रहना चाहिये । अपनी कार्य प्रणाली ऐसी रखनी चाहिये कि किसी भी समय मृत्यु सामने आ खड़ी हो, तो तैयारी में कोई कमी अनुभव न करनी पड़े ।

गायत्री का 'धि' अक्षर जीवन और मृत्यु के सत्य को समझाता है । जीवन को इस प्रकार बनाओ, जिससे मृत्यु के समय पश्चात्ताप न हो । जो वर्तमान की अपेक्षा भविष्य को उत्तम बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं, वे जीवन और मृत्यु का रहस्य भली प्रकार जानते हैं ।

यो-यो धर्मो जगदाधारः स्वाचरणे तमानय ।
मा विडम्बय तं सोऽस्ति ह्येको मार्गे सहायकः ॥१९ ॥

"जो धर्म संसार का आधार है, उस धर्म को अपने आचरण में लाओ । उसकी विडम्बना मत करो । वह तुम्हारे मार्ग में एक ही अद्वितीय सहायक है ।"

धर्म संसार का आधार है । उसके ऊपर विश्व का समस्त भार रखा हुआ है । यदि धर्माचरण उठ जाए और सब लोग पूर्ण रूप से अधर्मी बन जायें, तो एक क्षण के लिये भी कोई प्राणी चैन से न बैठ सकेगा । सबको अपने प्राण बचाने और दूसरे का अपहरण करने की चक्की के दुहरे पाटों के बीच पिसना पड़ेगा । आज अनेक व्यक्ति लुक-छिप कर अधर्माचरण करते हैं, पर उन्हें भी यह साहस नहीं होता कि प्रत्यक्षतः अपने को अधर्मी घोषित करें या अधर्म को उचित ठहराने की वकालत करें । बुराइयाँ भी भलाई की आड़ लेकर की जाती हैं । इससे प्रकट है कि धर्म ऐसी मजबूत चीज है कि उसी का आश्रय लेकर, आडम्बर ओढ़कर, दुष्ट दुराचारी भी अपना बेड़ा पार लगाते हैं । ऐसे मजबूत आधार को ही हमें अपना अवलम्बन बनाना चाहिये ।

कई आदमी धर्म को कर्मकाण्ड का, पूजा-पाठ का, तीर्थ-व्रत, दान आदि का विषय मानते हैं और कुछ समय इनमें लगाकर शेष समय को नैतिक-अनैतिक कैसे ही कार्य करने के लिये स्वतंत्र समझते हैं । यह भ्रान्त धारणा है । धर्म, पूजा-पाठ तक ही सीमित रहने वाली वस्तु नहीं है । वरन् उसका उपयोग तो अपनी प्रत्येक विचारधारा और क्रिया-प्रणाली में पूरी तरह होना चाहिये ।

गायत्री का 'यो' अक्षर बताता है कि धर्म की विडम्बना मत करो, उसे आडम्बर मत बनाओ, वरन् उसे अपने जीवन में घुला डालो । जो कुछ सोचो, जो कुछ करो, वह धर्मानुकूल होना चाहिये । शास्त्र की उक्ति है कि - "रक्षा किया हुआ धर्म अपनी रक्षा करता है और धर्म को जो मारता है , धर्म उसे मार डालता है ।" इस तथ्य को ध्यान में रखकर हमें धर्म को ही अपनी जीवन- नीति बनाना चाहिये ।

यो-योजनं व्यसनेभ्यः स्यात्तानि पुंसस्तु शत्रवः ।
मिलित्वैतानि सर्वाणि समये घ्नन्ति मानवम् ॥२० ॥

"व्यसनों से योजन भर दूर रहे अर्थात् व्यसनों से बचा रहे; क्योंकि वे मनुष्य के शत्रु हैं । ये सब मिलकर समय पर मनुष्य को मार देते हैं ।"

व्यसन मनुष्य के प्राणघातक शत्रु हैं । मादक पदार्थ व्यसनों में प्रधान हैं । तम्बाकू, गाँजा, चरस, भाँग, अफीम, शराब आदि नशीली चीजें एक से एक बढ़कर हानिकारक हैं । इनसे क्षणिक उत्तेजना आती है । जिन लोगों की जीवनी शक्ति क्षीण एवं दुर्बल हो जाती है, वे अपने को शिथिल तथा अशक्त अनुभव करते हैं । उनका उपचार आहार-विहार इत्यादि में अनुकूल परिवर्तन करके शक्ति संचय की वृत्ति द्वारा वर्धन होना चाहिये । परन्तु भ्रान्त मनुष्य दूसरा मार्ग अपनाते हैं । वे थके घोड़े को चाबुक मार-मारकर दौड़ाने का उपक्रम करके चाबुक को शक्ति का केन्द्र मानने की भूल करते हैं । नशीली चीजें मस्तिष्क को मूर्च्छित कर देती हैं, जिससे मूर्च्छाकाल में शिथिलतावश पीड़ा नहीं होती । दूसरी ओर वे चाबुक मार-मार कर उत्तेजित करने की क्रिया करती हैं । नशीली चीजों का सेवन करने वाला ऐसा समझता है कि वे मुझे बल दे रही हैं, पर वस्तुतः उनसे बल नहीं मिलता, वरन् रही-बची हुई शक्तियाँ भड़ककर बहुत शीघ्र समाप्त हो जाती हैं और मादक द्रव्य सेवन करने वाला व्यक्ति दिन-दिन क्षीण होते-होते अकाल मृत्यु के मुख में चला जाता है । 'व्यसन मित्र के वेष में शरीर में घुसते हैं और शत्रु बनकर उसे मार डालते हैं ।'

नशीले पदार्थों के अतिरिक्त और भी ऐसी आदतें हैं, जो शरीर और मन को हानि पहुँचाती हैं, पर आकर्षण और आदत के कारण मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है । वे उससे छोड़े नहीं छूटते । सिनेमा, नाचरंग, व्यभिचार, मुर्गा-तीतर-बटेर लड़ाना आदि कितनी ही हानिकारक और निरर्थक आदतों के शिकार बनकर लोग अपना धन, समय और स्वास्थ्य निरर्थक बरबाद करते हैं ।

गायत्री का 'यो' अक्षर व्यसनों को दूर करने का आदेश करता है, क्योंकि ये शरीर और मन दोनों का नाश करने वाले हैं । व्यसनी मनुष्य की वृत्तियाँ नीच मार्ग की ओर ही चलती हैं ।

नः-नः शृण्वेकामिमां वार्ता "जागृतस्त्वं सदा भव" ।
सप्रमादं नरं नूनं ह्याक्रामन्ति विपक्षिणः ॥२१ ॥

"हमारी यह एक बात सुनो कि तुम हमेशा जाग्रत् रहो; क्योंकि निश्चय ही सोते हुए मनुष्य पर दुश्मन आक्रमण करते हैं ।"

असावधानी, आलस्य, बेखबरी, अदूरदर्शिता ऐसी भूलें हैं, जिन्हें अनेक आपत्तियों की जननी कह सकते हैं । बेखबर आदमी पर चारों ओर से हमले होते हैं । असावधानी में ऐसा आकर्षण है, जिससे खिंच-खिंच कर अनेक प्रकार की हानियाँ, विपत्तियाँ एकत्रित हो जाती हैं । असावधान, आलसी पुरुष एक प्रकार से अर्धमृत है । मरी हुई लाश को पड़ी देखकर जैसे चील, कौए, कुत्ते, शृगाल, गिद्ध दूर-दूर से दौड़कर वहाँ जमा हो जाते हैं, वैसे ही असावधान पुरुष के ऊपर आक्रमण करने वाले तत्त्व कहीं न कहीं से आकर अपनी घात लगाते हैं ।

जो स्वास्थ्य की रक्षा के लिये जागरूक नहीं है, उसे देर-सबेर में बीमारियाँ आ दबोचेंगी । जो नित्य आते रहने वाले उतार-चढ़ावों से बेखबर है, वह किसी दिन दिवालिया बनकर रहेगा । जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर सरीखे मानसिक शत्रुओं की गतिविधियों की ओर से आँखें बन्द किये रहता है , वह कुविचारों और कुकर्मों के गर्त में गिरे बिना नहीं रह सकेगा । जो दुनिया के छल, फरेब, झूठ, ठगी, लूट, अन्याय, स्वार्थपरता, शैतानी आदि की ओर से सावधान नहीं रहता, उसे उल्लू बनाने वाले, ठगने वाले, सताने वाले अनेकों पैदा हो जाते हैं । जो

जागरूक नहीं, जो अपनी ओर से सुरक्षा के लिये प्रयत्नशील नहीं रहता, उसे दुनिया के शैतानी तत्त्व बुरी तरह नोंच खाते हैं।

इसलिये गायत्री का 'नः' अक्षर हमें सावधान करता है कि होशियार रहो, सावधान रहो, जागते रहो, जिससे तुम्हें शत्रुओं के आक्रमण का शिकार न बनना पड़े। विवेकपूर्वक त्याग करना और उदारता से परोपकार करना तो उचित है, पर अपनी बेवकूफी से दूसरे बदमाशों का शिकार बनना सर्वथा अवांछनीय व पापमूलक है। जहाँ अच्छाई की ओर, उन्नति की ओर बढ़ने का प्रयत्न आवश्यक है, वहाँ बुराई से सावधान रहने, बचने और उससे संघर्ष करने की भी आवश्यकता है।

प्र-प्रकृत्या तु भवोदारो नानुदारः कदाचन।
चिन्तयोदारदृष्ट्यैव तेन चित्तं विशुद्ध्यति ॥२२॥

"स्वभाव से ही उदार हों, कभी भी अनुदार मत बनें, उदार दृष्टि से ही विचार करें- ऐसा करने से चित्त शुद्ध हो जाता है।"

अपनी बात, अपनी रीति, अपने रिवाज, अपनी मान्यता, अपनी अक्ल को ही सही मानना और दूसरे सब लोगों को मूर्ख, भ्रान्त, बेईमान ठहराना अनुदारता का लक्षण है। अपने लाभ के लिये चाहे सारी दुनिया का विनाश होता हो तो हुआ करे, ऐसी नीति अनुदार लोगों की होती है। वे सिर्फ अपनी सुविधा और इच्छा को सर्वोपरि रखते हैं। दूसरों की कठिनाई और असुविधा का उन्हें जरा भी ध्यान नहीं होता।

गायत्री का 'प्र' अक्षर कहता है कि दूसरों की भूलों और कमियों के प्रति हमें कठोर नहीं, उदार होना चाहिये। उनकी उचित इच्छाओं, आवश्यकताओं और माँगों के प्रति हमारी सहानुभूति होनी चाहिये। दूसरे जिस स्थिति में हैं उस स्थिति में हम होते, तो कैसी इच्छा करते ? यह सोचकर उस दृष्टि से उनके साथ व्यवहार करना चाहिये और मतभेदों को संघर्ष का कारण न बनाकर जितने अंशों में एकता मिल सके, उसे प्रेम का निमित्त बनाना चाहिये।

चो-चोदयत्येव सत्संगो धियमस्य फलं महत्।
स्वमतः सज्जनैर्विद्वान् कुर्यात् पर्यावृतं सदा ॥२३॥

"सत्संग बुद्धि को प्रेरणा देता है। इस सत्संग का फल महान् है। इसलिये विद्वान् अपने आपको हमेशा सत्पुरुषों से घिरा हुआ रखे अर्थात् हमेशा सज्जनों का संग करे।"

मनुष्य का मस्तिष्क निर्मल जल के समान है। वातावरण, संस्कार और अनुकरण के साधन उसे विभिन्न दिशाओं में मोड़ते हैं। पानी का बहाव नाव को बहा ले जाता है। हवा जिधर को चलती है, पतंगे उधर ही उड़ते हैं। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है, रमता है, उधर ही उसकी मनोवृत्तियाँ चलने लगती हैं और धीरे-धीरे वह उसी ढाँचे में ढलने लगता है। जैसे दो बालकों में से जन्म से ही एक को कसाई के यहाँ रखा जाय तथा एक को ब्राह्मण के यहाँ, तो बड़े होने पर उन दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव में जमीन-आसमान का अन्तर होगा। यह संगति का ही प्रभाव है।

जो लोग अच्छाई की दिशा में अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि अपने को अच्छे वातावरण में रखें, अच्छे लोगों को अपना मित्र बनायें और उन्हीं से अपना व्यापार, व्यवहार तथा सम्पर्क रखें। सम्भव हो तो परामर्श, उपदेश और पथप्रदर्शन भी उन्हीं से प्राप्त करें। इस प्रकार की स्थिति में रहने से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से वैसा ही प्रभाव अपने ऊपर पड़ता है और उसी दिशा में चलने के लिये प्रेरणा मिलती है। कुसंग में रहने से, बुरे वातावरण के सम्पर्क में आने से मलिनता बढ़ती है। इसलिये उधर से मुँह मोड़े रहना ही उचित है।

यथासाध्य अच्छे व्यक्तियों का सम्पर्क बढ़ाने के अतिरिक्त, अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय भी उपयोगी है। सत्संग न हो सके, तो पुस्तकें पढ़कर सत्संग का लाभ उठाया जा सकता है। एकान्त में स्वयं भी अच्छे विचारों का चिन्तन और मनन करने तथा अपने मस्तिष्क को उसी दिशा में लगाये रहने से भी आत्म-सत्संग होता है। यह सभी सत्संग आत्मोन्नति के लिये आवश्यक हैं। गायत्री का 'च' अक्षर सत्संग का महत्त्व बताता है और उसके लिये प्रयत्नशील रहने का उपदेश करता है।

द-दर्शनं ह्यात्मनः कृत्वा जानीयादात्म गौरवम्।
ज्ञात्वा तु तत्तदात्मानं पूर्णोन्नतिपथं नयेत्॥२४॥

"आत्मा का दर्शन करके आत्मा के गौरव को पहचानो। उसको जानकर तब आत्मा को पूर्ण उन्नति के मार्ग पर ले चलो।"

मनुष्य शरीर नाशवान् और तुच्छ है। उसके हानि-लाभ भी तुच्छ और महत्त्वहीन हैं, पर उसकी आत्मा ईश्वर का अंश होने के कारण महान् है। उसकी महिमा और महत्ता इतनी बड़ी है कि किसी से भी उसकी तुलना नहीं हो सकती। मनुष्य का गौरव उसके शरीर के कारण नहीं, वरन् आत्मा की विशेषताओं के कारण है, जिसकी आत्मा जितनी अधिक बलवान् होती है, वह उतना ही बड़ा महापुरुष कहा जाता है।

जिन कार्यों से हमारी प्रतिष्ठा, साख, सम्मान, आदर, श्रद्धा बढ़ती है, वे ही आत्म-गौरव को बढ़ाने वाले हैं। प्रतिष्ठा सबसे बड़ी सम्पत्ति है, फिर आत्मा की प्रतिष्ठा का मूल्यांकन तो हो ही नहीं सकता। इतनी बड़ी अमानत को हमें सब प्रकार सुरक्षित रखना चाहिये। लोग सम्पत्ति द्वारा बनी हुई प्रतिष्ठा को गिरते या नष्ट होते देखकर तिलमिला जाते हैं और उस दुःख से इतने दुःखी हो जाते हैं कि कोई-कोई तो आत्महत्या भी कर डालते हैं। फिर आत्म-प्रतिष्ठा, आत्म-गौरव तथा आत्म-सम्मान तो और भी ऊँची चीज है, उसे तो किसी भी मूल्य पर न गिरने देना चाहिये।

जिससे आत्म-गौरव घटता हो, आत्म-ग्लानि होती हो और आत्म-हनन करना पड़ता हो, ऐसे धन, सुख, भोग, पद को लेने की अपेक्षा भूखा और दीन रहना कहीं अच्छा है। गायत्री का 'द' अक्षर आत्म-सम्मान की रक्षा और आत्म-हनन की निवृत्ति के लिये हमें बड़े से बड़ा त्याग करने में कभी न झिझकने के लिये तैयार रहने को कहता है। जिसके पास आत्म-धन है, वही सबसे बड़ा धनी है। जिसका आत्म-गौरव सुरक्षित है, वह इन्द्र के समान बड़ा पदवीधारी है, भले ही चाँदी, ताँबे के टुकड़े उसके पास कम मात्रा में ही क्यों न हों?

यात्- यायात्स्वोत्तरदायित्वं निर्वहन् जीवने पिता।
कुपितापि तथा पापः कुपुत्रोऽस्ति यथा मतः॥२५॥

"पिता अपने उत्तरदायित्व को निबाहता हुआ जीवन में चले, क्योंकि कुपिता भी उसी प्रकार पापी होता है, जैसे कुपुत्र होता है।"

जिनके हाथ में प्रबन्ध, व्यवस्था, शासन, स्वामित्व, बल होते हैं, वे प्रायः उसका यथोचित उपयोग नहीं करते। ढील, शिथिलता, लापरवाही भी वैसी ही बुराई है, जैसी कि स्वार्थपरता एवं अनुचित लाभ उठाने की नीति। इसका परिणाम बुरा ही होता है। अक्सर पुत्र, शिष्य, स्त्री, प्रजाजन, सेवक आदि के बिगड़ जाने, बुरे होने, अवज्ञा करने, अनुशासनहीन होने के उदाहरण बहुत सुने जाते हैं। इन बुराइयों का बहुत कुछ उत्तरदायित्व पिता, गुरु, पति, शासक, स्वामी आदि पर भी है, क्योंकि प्रबन्ध शक्ति उनके हाथ में होती है। बुद्धिमत्ता और अनुभव अधिक होने के कारण उत्तरदायित्व उन्हीं का अधिक होता है। व्यवस्था में शिथिलता आने, बुरे मार्ग पर चलने का अवसर देने, नियंत्रण में सावधानी न रखने से भी ऐसी घटनायें प्रायः घटित होती हैं।

प्रत्येक सम्बन्ध में दो पक्ष होते हैं। दोनों पक्षों के यथोचित कर्तव्य पालन करने से ही वे सम्बन्ध स्थिर और सुदृढ़ रहते हैं, तो भी समझदार पक्ष का उत्तरदायित्व विशेष है। उसे अपने पक्ष पर अधिक मजबूती से खड़ा रहना चाहिये और छोटे पक्ष के साथ उदार बर्ताव करना चाहिये। लोग अपने-अपने अधिकार पर अधिक बल देते हैं और अपने कर्तव्य से जी चुराते हैं, यही कलह का कारण है। यदि दोनों ओर से अपने-अपने अधिकारों की उपेक्षा न की जाये, तो संघर्ष का अवसर ही न आये और सम्बन्ध बड़ी मधुरता से निभते चले जायें।

"यात्" अक्षर पिता-पुत्र में, बड़े-छोटे में, अच्छे सम्बन्ध रखने का नुस्खा यह बताता है कि दोनों ओर से अधिकार की माँग मन्द रखी जाये और कर्तव्यों का दृढ़ता से पालन हो। बड़ा पक्ष छोटे पक्ष को सँभालने के लिये अधिक सावधानी और उदारता बरते।

गायत्री-उपनिषद्

वेदों से 'ब्राह्मण' ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ है। प्रत्येक वेद के कई-कई ब्राह्मण ग्रन्थ थे, पर अब उनमें से थोड़े ही प्राप्त होते हैं। काल की कुटिल गति ने उनमें से कितनों को लुप्त कर दिया।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण मिलते हैं- शांखायन और ऐतरेय। शांखायन को कौषीतकि भी कहते हैं।

यजुर्वेद के तीन ब्राह्मण प्राप्त हैं- शतपथ ब्राह्मण, काण्व ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण।

सामवेद के ११ ब्राह्मण उपलब्ध हैं- आर्षेय ब्राह्मण, जैमिनी आर्षेय ब्राह्मण, संहितोपनिषद् ब्राह्मण, मन्त्र ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण, साम विधान ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, दैवत ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण।

अथर्ववेद का केवल मात्र एक ब्राह्मण मिलता है, जिसका नाम गोपथ ब्राह्मण है। गोपथ की ३१ से लेकर ३८ तक आठ कण्डिकायें गायत्री उपनिषद् कहलाती हैं। इनमें मैत्रेय और मौद्गल्य के परस्पर विवाद के उपाख्यान द्वारा गायत्री का महत्त्वपूर्ण रहस्य समझाया गया है। साधारण शब्दार्थ के अनुसार बुद्धि-प्रेरणा की प्रार्थना ही गायत्री का तात्पर्य है, परन्तु इस उपनिषद् में ब्रह्म-विद्या एवं पदार्थ विद्या से सम्बन्ध रखने वाले कई रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है।

अथ गायत्री उपनिषद्

एतद्धस्म एतद् विद्वांसमेकादशाक्षम्।
मौद्गल्यं ग्लावो मैत्रेयोऽभ्याजगाम॥

एकादशाक्ष मौद्गल्य के समीप ग्लाव मैत्रेय आये।

स तस्मिन् ब्रह्मचर्यं वसतो विज्ञायोवाच।
किं स्विन्मर्यादा अयं तन्मौद्गल्योऽध्येति
यदस्मिन्ब्रह्मचर्ये वसतीति।

"मौद्गल्य के ब्रह्मचारी को देखकर और उसे सुनाकर ग्लाव ने उपहास लड़ाते हुए कहा- "मौद्गल्य अपने इस ब्रह्मचारी को क्या पढ़ाता है अर्थात् कुछ नहीं पढ़ाता है।"

तद्धि मौद्गल्यस्यान्तेवासी शुश्राव।
स आचार्यायाव्रज्याचचष्टे।

मौद्गल्य के ब्रह्मचारी ने इस बात को सुनकर अपने आचार्य के पास जाकर कहा-

दुरधीयानं वा अयं भवन्तमवोचद्योऽयमद्यातिथिर्भवति।

जो आज अतिथि हुए हैं, आपको उन्होंने मूर्ख कहा है।

किं सौम्य विद्वानिति।

क्या वह विद्वान् हैं ? मौद्गल्य ने पूछा।

त्रीन्वेदान् ब्रूते भो३ इति-

हाँ, वे तीनों वेदों के प्रवचनकर्त्ता हैं, शिष्य ने कहा-

तस्य सौम्य यो विस्पष्टो विजिगीषोऽन्तेवासी तन्मेह्वयेति।

हे सौम्य ! उसका जो विद्वान्, सूक्ष्मदर्शी तथा विजय चाहने वाला शिष्य हो, तुम उसे मेरे पास ले आओ।

तमाजुहाव। तमभ्युवाचासाविति भो३ इति।

तब वह उसे बुला लाया और बोला-वे ये हैं।

किं सौम्य त आचार्योऽध्येतीति।

मौद्गल्य ने उससे पूछा-हे सौम्य ! तुम्हारे आचार्य क्या पढ़ाते हैं ?

त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३ इति।

उसने उत्तर दिया- वे तीनों वेदों का प्रवचन करते हैं ।

यन्नु खलु सौम्यास्माभिः सर्वे वेदा मुखतो गृहीताः,
कथन्त एवमाचार्यो भाषते, कथं नु......स चेत्सौम्य
दुरधीयानो भविष्यति, आचार्योवाच ब्रह्मचारी
ब्रह्मचारिणे सावित्रीं प्राह, इति वक्ष्यति।

हे सौम्य ! यदि वे यह जानते होंगे, तो कहेंगे कि आचार्य अपने ब्रह्मचारी को जिसका उपदेश देते हैं, वह सावित्री है अर्थात् जो गायत्री का शब्दार्थ, स्थूल अर्थ है, उसे ही बता देंगे ।

तत्त्वं ब्रूयाद् दुरधीयानं तं वै भवान्मौद्गल्य-
मवोचत् , स त्वा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचः ।
पुरा सम्वत्सरादार्तिमाकृष्यसीति।

तब तुम कहना कि आपने तो आचार्य मौद्गल्य को मूर्ख बतलाया था । वे आपसे जो प्रश्न पूछते हैं, उसे आप नहीं बतला सके, तो एक वर्ष के भीतर ही आपको कुछ कष्ट होगा ।

शिष्टाः शिष्टेभ्य एवं भाषेरन् । यं ह्येनमहं प्रश्नं पृच्छामि न तं विवक्ष्यति, न ह्येनमध्येतीति।

"हे सौम्य ! हमने भी सब वेदों का अध्ययन किया है, फिर तुम्हारे आचार्य मुझे मूर्ख क्यों कहते हैं ? क्या शिष्टों के लिये ऐसा कहना ठीक है ? हम उनसे जो प्रश्न पूछेंगे, वे उसे न बतला सकेंगे, वे उसे पढ़ाते भी नहीं होंगे ।"

स ह मौद्गल्यः स्वमन्तेवासिनमुवाच, परेहि सौम्य, ग्लावं
मैत्रेयमुपसीद, अधीहि भोः सावित्रीं गायत्रीम् ।
चतुर्विंशति योनिं द्वादशमिथुनां, यस्या भृग्वंगिरसश्च-
क्षुर्यस्यां सर्वमिदं श्रितं, तां भवान् प्रब्रवीत्विति। -गो० ब्रा० पू० १/३१

"तब उन मौद्गल्य ने अपने ब्रह्मचारी से कहा- हे सौम्य ! तुम जाओ, ग्लाव मैत्रेय के समक्ष उपस्थित होकर कहो कि बारह मिथुन तथा चौबीस योनि वाली भृगु और अंगिरा जिसके नेत्र हैं तथा जिसके आश्रित ये सब हैं, उस सावित्री-गायत्री को हमें पढ़ाइये ।"

इस कण्डिका में मौद्गल्य ने मैत्रेय से गायत्री का रहस्य पुछवाया है । साधारण अर्थ तो सभी जानते हैं कि इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गयी है कि हमें सद्बुद्धि की प्रेरणा दीजिये । ऐसे मन्त्र तो श्रुति-स्मृतियों में अनेकों भरे पड़े हैं, जिसमें इसी प्रकार की या इससे भी उत्तम रीति से बुद्धि-विवेक आदि के लिये प्रार्थनायें की गयी हैं । फिर गायत्री में ही ऐसी क्या विशेषता है, जिसके कारण उसे वेद-माता कहा गया और समस्त श्रुति-क्षेत्र में इतना महत्त्व दिया गया ? इसका कोई न कोई बड़ा कारण अवश्य होना चाहिये । मौद्गल्य ने उसी रहस्य एवं कारण को मैत्रेय से पुछवाया ।

स तत्राजगाम यत्रेतरो बभूव तं ह पप्रच्छ स ह न प्रतिपेदे ।

"मौद्गल्य का शिष्य मैत्रेय के पास आया । उसने उनसे पूछा, किन्तु वे उसका उत्तर न दे सके ।"

तं होवाच दुरधीयानं तं वै भवान्मौद्गल्यमवो-
चत्स त्वा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचः पुरा
सम्वत्सरादार्तिमाकृष्यसीति।

"उसने कहा- आपने मौद्गल्य को मूर्ख कहा था । उन्होंने जो आपसे पूछा, आप उसे नहीं बतला सके, इसलिये एक वर्ष में आपको कष्ट होगा ।"

स ह मैत्रेय: स्वानन्तेवासिन उवाच-यथार्थं
भवन्तो यथागृहं यथामनो विप्रसृज्यन्तां दुरधीयानं
वा अहं मौद्गल्यमवोचम्, स मा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं
व्यवोचं, तमुपैष्यामि, शान्तिं करिष्यामीति।

"तब मैत्रेय ने अपने शिष्यों से कहा- अब आप लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने घरों को लौट जाइये। मैंने मौद्गल्य को मूर्ख कहा था, पर उन्होंने जो कुछ पूछा है, मैं उसे नहीं बतला सका हूँ। मैं उनके पास जाऊँगा और उन्हें शान्त करूँगा।"

स ह मैत्रेय: प्रात: समित्पाणिमौद्गल्यमुपससादासावाग्रहं भो मैत्रेय:।

"दूसरे दिन प्रात:काल हाथ में समिधा लेकर मैत्रेय अनुग्रहशील मौद्गल्य ऋषि के पास आये और कहा- मैं, मैत्रेय आपकी सेवा में आया हूँ।"

किमर्थमिति -

"किसलिये ?" उन्होंने पूछा।

दुरधीयानं वा अहं भवन्तमवोचं त्वं मा यं प्रश्नमप्राक्षीर्न्न तं व्यवोचं, त्वामुपैष्यामि, शान्तिं करिष्यामीति।

"मैत्रेय ने कहा- मैंने आपको मूर्ख कहा था। आपने जो पूछा, मैं उसे न बता सका। अब मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा और आपको शान्त करूँगा।"

स होवाच-अत्र वा उपेतं च सर्वं च कृतं पापकेन त्वा
यानेन चरन्तमाहु:, अथोऽयं मम कल्याणस्तं ते
ददामि तेन याहीति।

"मौद्गल्य ने कहा- आप यहाँ आये हैं, लेकिन लोग कहते हैं कि आप यहाँ शुद्ध भावना से नहीं आये हैं, तो भी मैं तुम्हें कल्याणकारी भाव देता हूँ, तुम इसे लेकर लौटो।"

स होवाच। एतदेवात्रात्त्विषं चानृशंस्यं च यथा भवानाह। उपायामित्येवं भवन्तमिति।

मैत्रेय ने कहा- आपका कहना अभयकारी एवं सदय है। आपकी सेवा में समित्पाणि होकर उपस्थित होता हूँ।

तं होपेयाय-

अब वे विधिपूर्वक उनकी सेवा में उपस्थित हुए।

तं होपेत्य पप्रच्छ-

उपस्थित होकर पूछा-

किं स्विदाहुर्भो: सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवय: किमाहु:।
धियो विचक्ष्व यदि ता: प्रविश्य प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति॥

(१) सविता का वरेण्य किसे कहते हैं ?

(२) उस देव का भर्ग क्या है ?

(३) यदि आप जानते हों तो धी संज्ञक तत्त्वों को कहिये, जिनके द्वारा सबको प्रेरणा देता हुआ सविता विचरण करता है।

तस्मा एतत्प्रोवाच-

उन्होंने उत्तर दिया-

वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः ।
कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति ।।

(१) वेद और छन्द सविता का वरेण्य हैं ।

(२) विद्वान् पुरुष अन्न को ही देव का भर्ग मानते हैं ।

(३) कर्म ही वह "धी" तत्त्व है, जिसके द्वारा सबको प्रेरणा देता हुआ सविता विचरण करता है ।

तमुपसंगृह्य पप्रच्छाधीहि भोः, कः सविता, का सावित्री ।।- गो० ब्र० पू० भाग १/३२

यह सुनकर उनने फिर पूछा- सविता क्या है और सावित्री क्या है ?

मौद्‌गल्य के अभिप्राय को मैत्रेय भली प्रकार समझ गये । उन्होंने सचाई के साथ विचार किया तो जाना कि मैं गायत्री के उस रहस्य को नहीं जानता हूँ, जिसके कारण उन्हें इतना महत्त्व प्राप्त है । उन्होंने सोचा, यह मूल कारण न मालूम हो, तो उसके बाह्य प्रतीकों को जान लेने मात्र से कुछ लाभ नहीं हो सकता । इसलिये वेदों का प्रवचन करने से तब तक क्या लाभ, जब तक कि उनका मूल कारण न मालूम हो । यह सोच कर उनने निश्चय किया कि पहले मैं गायत्री का रहस्य समझूँगा, तब अन्य कार्य करूँगा । उन्होंने अपने विद्यार्थियों की छुट्टी कर दी और स्वयं नम्र बनकर समिधा हाथ में लेकर शिष्यभाव से मौद्‌गल्य के पास पहुँचे । विद्या प्राप्त करने की- विशेष रूप से अध्यात्म-विद्या की-यही परिपाटी है कि शिक्षार्थी अपने अध्यापक के पास नम्र होकर- उनके प्रति श्रद्धाभाव मन में धारण करके-पढ़ने जाये । इस आर्ष प्रणाली को छोड़कर आज के उच्छृंखल 'स्टूडेण्ट' जिन उजड्ड भावनाओं के साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं, वह शिक्षा गुरु का आशीर्वाद न होने से निष्फल ही जाती है ।

मैत्रेय ने पूछा- गायत्री के प्रथम पद में आये हुए शब्दों का रहस्य बताइये । (१) सविता का वरेण्य क्या है अर्थात् उस तेजस्वी परमात्मा को किससे वरेण्य किया जाता है ? ईश्वर किस उपाय से प्राप्त होता है ? (२) उस देव का भर्ग क्या है ? देव कहते हैं श्रेष्ठ को, भर्ग कहते हैं बल को । देव का भर्ग क्या है ? (३) जिसके द्वारा परमात्मा सबको प्रेरणा करता है अर्थात् वह माध्यम क्या है जिसके द्वारा ईश्वर की कृपा होती है ? इन तीनों तत्त्वों को मैत्रेय ने मौद्‌गल्य से पूछा ।

इनका संक्षिप्त उत्तर मौद्‌गल्य ने दिया है, वह बड़े ही मार्के का है । इन उत्तरों पर जितना गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये, उतना ही उनका महत्त्व प्रकट होता है । मौद्‌गल्य कहते हैं-

(१) वेद और छन्द सविता का वरेण्य है । (२) अन्न को ही देव का भर्ग कहते है । (३) कर्म ही 'धी' तत्त्व है, इसी के द्वारा परमात्मा सबको प्रेरणा देता है, सबका विकास करता है । आइये तीनों प्रश्नों पर पृथक्-पृथक् विचार करें-

(१) वेद अर्थात् ज्ञान, छन्द अर्थात् अनुभव । वास्तव में आत्म- ज्ञान से परमात्मा की प्राप्ति होती है, पर वह ज्ञान केवल वाचिक न होना चाहिये । भारवाही गधे की तरह अनेक पुस्तकें पढ़ लेने से, शुक-सरिकाओं की भाँति कुछ रटे हुए शब्दों का प्रवचन कर देने से काम नहीं चल सकता । हमारा तत्त्व- ज्ञान अनुभव सिद्ध होना चाहिये । जिसके कारण तर्क, प्रमाण और उदाहरण के द्वारा सत्य मान लिया जाये, उस सत्य के प्रति मनुष्य के मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिये और उस श्रद्धा का जीवन में व्यावहारिक आचरण होना चाहिये । पहले पूरी तत्परता, सचाई और निष्पक्षता से यह देखना चाहिये कि कौन-कौन सिद्धान्त उचित एवं कल्याणकारी हैं । जब यह विश्वास हो जाए कि सत्य, परोपकार, संयम, ईमानदारी आदि गुण सब दृष्टियों से श्रेयस्कर हैं, तो उनके सिद्धान्त का जीवन में आचरण होना चाहिये । सद्‌ज्ञान का श्रद्धा-भूमि में परिपक्व होना, यही ईश्वर की प्राप्ति का प्रधान उपाय है । बिना सिद्धान्तों को जाने केवल अनुभव निर्बल है और बिना अनुभव का ज्ञान निष्फल है । जब मनुष्य का सद्‌ज्ञान श्रद्धा में परिणत हो जाता है, दम्भ, छल, मात्सर्य, कपट, धूर्तता एवं दुराव को छोड़कर, जब समस्त मनोभूमि में एक ही जाति की श्रद्धा स्थापित हो जाती है, तो उसी आधार पर परमात्मा की प्राप्ति होती है । वेद और छन्द के सम्मिश्रण में सविता का वर्णन किया है और ज्ञान तथा अनुभव से परमात्मा को प्राप्त किया जाता है ।

(२) इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए मौद्‌गल्य कहते हैं, देव का भर्ग अन्न है । श्रेष्ठ का बल, उसके साधन हैं ।

श्रेष्ठता को तभी बलवान् बनाया जा सकता है, जब उसको विकसित करने के लिये अन्न हो, साधन हो। साधन-सामग्री लक्ष्मी, एक शक्ति है, जो असुर के हाथ में चली जाए, तो असुरता को बढ़ाती है और यदि देवों के हाथ में चली जाए, तो उसके द्वारा देवत्व का विस्तार होता है, देवता बलवान् होते हैं। शासन-सत्ता, क्रूर, दुष्ट लोगों के हाथ में हो तो वे उससे दुष्टता फैलाते हैं। पिछली शताब्दियों में भारत की राज-सत्ता विदेशियों के हाथ में रही है, इसके कारण उन्होंने भारत-भूमि का कितना अधःपतन किया, यह किसी से छिपा नहीं है। वही सत्ता अब जब अच्छे हाथों में आयी, तो थोड़े दिनों में रूस, अमेरिका की भाँति यहाँ भी उन्नत अवस्था प्राप्त होने की संभावना है। योगी अरविन्द ने अपनी 'गीता पुस्तक' में लिखा है- "लक्ष्मी पर श्रेष्ठ लोगों को आधिपत्य करना चाहिये। इस प्रकार संसार में सुख-शांति बढ़ेगी। यदि लक्ष्मी असुरों के पास चली गयी, तो उससे विश्व का अनिष्ट ही समझिये।' देवताओं को भोग के लिये नहीं, लोभ के लिये नहीं, संग्रह के लिये नहीं, अहंकार-प्रदर्शन के लिये नहीं, अन्याय करने के लिये नहीं, वरन् इसलिये धन और साधन-सामग्रियों की आवश्यकता है कि वे शक्तियों द्वारा देवत्व की रक्षा एवं वृद्धि कर सकें। अन्न को, इस साधन-सामग्री को लक्ष्मी का प्रतीक माना है। मौद्गल्य का उत्तर यह है कि देव का भर्ग, अन्न है, श्रेष्ठ का बल, साधन है। बिना साधन के तो वह बेचारा निर्बल ही रहेगा।

मौद्गल्य का तीसरा उत्तर यह है कि कर्म ही 'धी' तत्त्व है। इसी के द्वारा परमात्मा सबका विकास करता है। यह नितान्त सत्य है कि परमात्मा की कृपा से सबका विकास होता है। परमात्मा सबको ऊपर की ओर-उन्नति की ओर प्रेरित करता है, पर यह भी जान लेना चाहिये कि उस प्रेरणा का रूप है 'धी'। 'धी' अर्थात् वह बुद्धि जो कर्म के लिये प्रेरणा, प्रोत्साहन देती है और कर्म करने में लगा देती है। परमात्मा की जिस प्रकार की कृपा होती है, उसी प्रकार की बुद्धि प्राप्त होती है। किसी मनुष्य पर परमात्मा की कृपा है या नहीं, इसकी पहचान करनी हो तो वह इस प्रकार हो सकती है कि वह मनुष्य उत्साहपूर्वक, तन्मयतापूर्वक श्रम, जागरूकता और रुचि के साथ कार्य करता है या नहीं ? जिसका स्वभाव इस रुचि का है, समझना चाहिये कि इनको विकसित करने के लिये परमात्मा ने इन्हें 'धी' तत्त्व प्रदान किया है।

कितने ही व्यक्ति आलसी, निकम्मे, हरामखोर होते हैं, निराशा जिन्हें घेरे रहती है, काम को आधे मन से, अरुचिपूर्ण बेगार भुगतने की तरह करते हैं, जरा-सा काम उन्हें पहाड़ मालूम होता है, थोड़े से श्रम में भारी थकान अनुभव करते हैं। ऐसे लोगों को 'धी' तत्त्व से रहित समझना चाहिये। यह प्रत्यक्ष है कि वे ईश्वर के कृपा पात्र नहीं हैं, कर्म प्रेरक बुद्धि के अभाव में वे दुर्भाग्यग्रस्त ही होंगे।

मौद्गल्य का उपर्युक्त कथन गम्भीर और सत्य है, इसके बारे में दो मत नहीं हो सकते। भाग्य का रोना रोने वाले, तकदीर को कोसने वाले, अपनी त्रुटि का दोष किसी दूसरे ज्ञात-अज्ञात पर थोपकर झूठा मन-संतोष भले ही कर लें, पर वस्तुस्थिति यही है कि उन्होंने ईश्वर की कृपा को प्राप्त नहीं किया। यह कृपा हर किसी के लिये सुलभ है, हर किसी के अपने हाथों में है। 'धी' तत्त्व को कर्मशीलता को अपनाकर हर कोई ईश्वरीय कृपा और उन्नति का अधिकारी बन सकता है। परमात्मा अपनी कृपा से किसी को वंचित नहीं रखता, मनुष्य ही दुर्बुद्धि के कारण उसका परित्याग कर देता है।

मन एव सविता वाक् सावित्री यत्र ह्येव मनस्तद्वाक्।
यत्र वै वाक् तन्मन इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥१॥

'मन सविता है, वाक् गायत्री। जहाँ मन है वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है, वहाँ मन। ये दोनों दो योनि और एक मिथुन हैं।"

अग्निरेव सविता पृथिवी सावित्री यत्र ह्येवाग्निस्तत्पृथिवी।
यत्र वै पृथिवी तदग्निरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥२॥ - सावित्र्युपनिषद्

"अग्नि सविता है, पृथ्वी सावित्री। जहाँ अग्नि है वहाँ पृथ्वी है, जहाँ पृथ्वी है, वहाँ अग्नि है। ये दो योनि तथा एक मिथुन हैं।"

वायुरेव सविता अन्तरिक्षं सावित्री। यत्र ह्येव वायुस्तदन्तरिक्षम्, यत्र वा अन्तरिक्षं तद्वायुरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥३ ॥

"वायु सविता है अन्तरिक्ष सावित्री है। जहाँ वायु है, वहाँ अन्तरिक्ष है, जहाँ अन्तरिक्ष है, वहाँ वायु है। ये दोनों दो योनि और एक मिथुन हैं।"

आदित्य एव सविता द्यौः सावित्री यत्र ह्येवादित्यस्तद् द्यौः यत्र वै द्यौस्तदादित्य इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥४ ॥

"आदित्य सविता है, द्यौ सावित्री। जहाँ आदित्य है, वहाँ द्यौ है, जहाँ द्यौ है, वहाँ आदित्य है। ये दोनों दो योनि और एक मिथुन हैं ॥४ ॥

चन्द्रमा एव सविता नक्षत्राणि सावित्री यत्र ह्येव चन्द्रमास्तन्नक्षत्राणि।
यत्र वै नक्षत्राणि तच्चन्द्रमा इति। एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥५ ॥

"चन्द्रमा ही सविता है, नक्षत्र सावित्री है। जहाँ चन्द्रमा है वहाँ नक्षत्र हैं, जहाँ नक्षत्र हैं, वहाँ चन्द्रमा है। ये दोनों, दो योनि और एक मिथुन हैं ॥५ ॥"

अहरेव सविता रात्रिः सावित्री। यत्र ह्येवाहस्तद्रात्रिः।
यत्र वै रात्रिस्तदहरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥६ ॥

"दिन सविता है और रात्रि सावित्री है। जहाँ दिन है, वहाँ रात्रि है, जहाँ रात्रि है, वहाँ दिन है। ये दो योनि और एक मिथुन हैं ॥६ ॥

उष्णमेव सविता शीतं सावित्री यत्र ह्येवोष्णं तच्छीतम्।
यत्र वै शीतं तदुष्णमिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥७ ॥

"उष्ण सविता है, शीत सावित्री। जहाँ उष्ण है, वहाँ शीत है, जहाँ शीत है, वहाँ उष्णता है। ये दोनों, दो योनि और एक मिथुन हैं ॥७ ॥"

अभ्रमेव सविता वर्षं सावित्री यत्र ह्येवाभ्रं तद्वर्षं।
यत्र वै वर्षं तदभ्रमिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥८ ॥

"बादल सविता है और वर्षण सावित्री। जहाँ बादल है, वहाँ वर्षण है, जहाँ वर्षण है, वहाँ बादल हैं। ये दोनों दो योनि तथा एक मिथुन हैं ॥८ ॥

विद्युदेव सविता स्तनयित्नुः सावित्री। यत्र ह्येव विद्युत्तत्स्तनयित्नुः यत्र वै स्तनयित्नुस्तद्विद्युदिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥९ ॥

"विद्युत् सविता है और उसकी तड़क सावित्री। जहाँ बिजली है वहाँ उसकी तड़क है, जहाँ तड़क है, वहाँ बिजली है। ये दोनों, दो योनि और एक मिथुन हैं ॥९ ॥

प्राण एव सविता अन्नं सावित्री। यत्र ह्येव प्राणस्तदन्नं यत्र वा अन्नं तत्प्राण इति। एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥१० ॥

"प्राण सविता है, अन्न सावित्री। जहाँ प्राण है, वहाँ अन्न है, जहाँ अन्न है, वहाँ प्राण है। ये दो योनि तथा एक मिथुन हैं ॥१० ॥

वेदा एव सविता छंदांसि सावित्री, यत्र ह्येव वेदास्तच्छन्दांसि यत्र वै छन्दांसि तद्वेदा इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥११ ॥

"वेद सविता है, छन्द सावित्री। जहाँ वेद हैं, वहाँ छन्द हैं, जहाँ छन्द हैं, वहाँ वेद हैं। ये दो योनि और एक मिथुन हैं ॥ ११ ॥"

यज्ञ एव सविता दक्षिणा सावित्री, यत्र ह्येव यज्ञस्तद् दक्षिणा।
यत्र वै दक्षिणास्तद्यज्ञ इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्॥१२॥

'यज्ञ सविता है और दक्षिणा सावित्री है। जहाँ यज्ञ है, वहाँ दक्षिणा है, जहाँ दक्षिणा है, वहाँ यज्ञ है। ये दो योनि तथा एक मिथुन हैं॥१२॥"

एतद्ध स्मैतद्विद्वांसमोपाकारिमासस्तुर्ब्रह्मचारी ते संस्थित इति।

"विद्वान् तथा परोपकारी महाराज! आपकी सेवा में यह ब्रह्मचारी आया है।'

अथैत आसस्तुराचित इव चितो बभूव अथोत्थाय प्राव्राजीदिति।

"यह ब्रह्मचारी आपके यहाँ आकर ज्ञान से परिपूर्ण हो गया है। इसके बाद वे वहाँ से चले गये।"

एतद्वा अहं वेद नैतासु योनिष्वित एतेभ्यो वा मिथुनेभ्यः सम्भूतो ब्रह्मचारी मम पुरायुषः प्रेयादिति।

"और उन्होंने कहा कि अब मैं इसे जान गया हूँ, उन योनियों अथवा इन मिथुनों में आया हुआ मेरा कोई ब्रह्मचारी अल्पायु नहीं होगा।"

अब प्रश्न होता है कि सविता क्या है? और सावित्री क्या है? गायत्री का देवता सविता माना गया है। प्रत्येक मन्त्र का एक देवता होता है, जिससे पता चलता है कि इस मन्त्र का क्या विषय है? गायत्री का देवता सविता होने से यह स्पष्ट है कि इस मन्त्र का विषय सविता है। सविता की प्रधानता होने के कारण गायत्री का दूसरा नाम सावित्री भी है।

मैत्रेय पूछते हैं- भगवान् सविता क्या है? और वह सावित्री क्या है? महर्षि मौद्गल्य उन्हें उत्तर देते हैं कि सविता और सावित्री का अविच्छिन्न सम्बन्ध है, जो एक है वही दूसरा है। दोनों का मिलकर एक जोड़ा बनता है, एक केन्द्र है, दूसरा उसकी शक्ति है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

शक्ति-मार्ग का महत्त्व उसकी शक्ति के विस्तार से है। यों तो प्रत्येक परमाणु अनन्त शक्ति का पुञ्ज है। एक परमाणु के विस्फोट से प्रलय उपस्थित हो जाती है, पर इस प्रकार की गतिविधि होती तभी है, जब उस शक्ति का विस्तार एवं प्रकटीकरण होता है। यदि यह प्रकटीकरण न हो, तो अनन्त शक्तिशाली पदार्थ का भी कोई अस्तित्व नहीं, उसे कोई जानता तक नहीं। सविता कहते हैं- तेजस्वी परमात्मा को और सावित्री कहते हैं- उसकी शक्ति को। सावित्री, सविता से भिन्न नहीं वरन् उसकी पूरक है उसका मिथुन अर्थात् जोड़ा है। सावित्री द्वारा ही अचिन्त्य, अज्ञेय, निराकार एवं निर्लिप्त परमात्मा इस योग्य होता है कि उससे कोई लाभ उठाया जा सके।

यह बात बहुत सूक्ष्म और गम्भीर विचार के उपरान्त समझ में आने वाली है। इसलिये उपनिषद्कार उसे उदाहरण दे-देकर सुबोध बनाते हैं और इस गूढ़ तत्त्व को इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि हर कोई आसानी से समझ सके। वे कहते हैं-

मन सविता है वाक् सावित्री है, जहाँ मन है, वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है, वहाँ मन है। ये दोनों दो योनियाँ हैं, एक मिथुन है। इसी प्रकार अग्नि और पृथ्वी का, वायु और अन्तरिक्ष का, आदित्य और द्यौ का, चन्द्रमा और नक्षत्रों का, दिन और रात्रि का, उष्ण और शीत का, अग्नि और वरुण का, विद्युत् और तड़क का, प्राण और अन्न का, वेद और छन्द का, यज्ञ और दक्षिणा का मिथुन बताया गया है। यह तो थोड़े से उदाहरण मात्र हैं। यह उदाहरण बताकर उपनिषद्कार ने बताया है कि अकेली कोई वस्तु प्रकट नहीं हो सकती, प्रकाश में नहीं आ सकती, विस्तार नहीं कर सकती। अव्यक्त पदार्थ तभी व्यक्त होता है, जब उसकी शक्ति का प्रकटीकरण होता है। केवल परमात्मा, बुद्धि की मर्यादा के बाहर है, उसे न तो हम सोच सकते हैं और न उसके समीप तक पहुँचकर कोई लाभ उठा सकते हैं। यह अव्यक्त परमात्मा सविता, अपनी शक्ति, सावित्री द्वारा सर्व साधारण पर प्रकट होता है और उस शक्ति की उपासना द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है।

लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण, उमाशंकर, सविता-सावित्री, प्रकृति-परमेश्वर के मिथुन, यही बताते हैं कि यह एक दूसरे के पूरक हैं, प्रकट होने के कारण हैं। जीव भी माया के कारण अव्यक्त से व्यक्त होता है। यह मिथुन हेय या त्याज्य नहीं है वरन् क्रियाशीलता के विस्तार के लिये है। मनुष्य का विकास भी एकांगी नहीं हो सकता, उसे अपनी शक्तियों का विस्तार करना पड़ता है। जो अपनी शक्तियों को बढ़ाता है, वही उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

शक्ति और शक्तिमान् का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जैसे सविता अपनी सावित्री से ओत-प्रोत है, उसी प्रकार हमें भी अपने आपको बहुमुखी शक्तियों से परिपूर्ण बनाना चाहिये। अपने साथ अनेक व्यक्तियों का सहयोग संगठित करना चाहिये। जिसके मिथुन जितने अधिक हैं, वह उतना ही सुखी है।

इस शक्ति और शक्तिमान् के रहस्य को जानकर मैत्रेय सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा- मैं आपका शिष्य, अब ज्ञान की वास्तविक जानकारी से परिपूर्ण हो गया हूँ। अब मैं जान गया कि मेरा जो शिष्य इस योनि और मिथुन के रहस्य को जान लेगा वह अल्पायु न होगा। वह शक्ति को अपना अविच्छिन्न अंग मानकर उसका दुरुपयोग न करेगा; वरन् सदुपयोग द्वारा सब प्रकार का लाभ उठायेगा। इस प्रकार शक्ति का रहस्य समझकर उसका सदुपयोग करने वाले अल्पायु कदापि नहीं हो सकते।

ब्रह्म हेदं श्रियं प्रतिष्ठामायतनमैक्षत तत्तपस्व यदि तद्व्रते ध्रियेत तत् सत्ये प्रत्यतिष्ठत्।

"ब्रह्म ने श्री, प्रतिष्ठा आयतन को देखा और कहा कि - तप करो। यदि तप के व्रत को धारण किया जाए, तो सत्य में प्रतिष्ठा होती है।"

स सविता सावित्र्या ब्राह्मणं सृष्ट्वा तत्सावित्रीं पर्य्यदधात्।

उस सविता ने सावित्री से ब्राह्मण की सृष्टि की तथा सावित्री को उससे घेर लिया।

तत्सवितुर्वरेण्यं इति सावित्र्याः प्रथमः पादः।

'तत्सवितुर्वरेण्यं' यह सावित्री का प्रथम पाद है।

पृथिव्यर्चं समदधात्। ऋचा अग्निम्। अग्निना श्रियम्। श्रिया स्त्रियम्। स्त्रिया मिथुनम्। मिथुनेन प्रजाम्। प्रजया कर्म। कर्मणा तपः। तपसा सत्यम्। सत्येन ब्रह्म। ब्रह्मणा ब्राह्मणम्। ब्राह्मणेन व्रतम्। व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति। अशून्यो भवति, अविच्छिन्नो भवति।

पृथ्वी से ऋक् को जोड़ा युक्त किया। ऋक् से अग्नि को, अग्नि से श्री को, श्री से स्त्री को, स्त्री से मिथुन को, मिथुन से प्रजा को, प्रजा से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को। ब्राह्मण व्रत से ही तीक्ष्ण होता है, पूर्ण होता है और अविच्छिन्न होता है।

अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवतीति, य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतं सावित्र्याः प्रथमं पादं व्याचष्टे।

"जो इस प्रकार से इसे जानता है और जानकर जो विद्वान् इसकी इस प्रकार व्याख्या करता है वह, उसका वंश तथा उसका जीवन अविच्छिन्न होता है।"

ब्रह्म जब तक अपने आप में केन्द्रित था, तब तक कोई पदार्थ न था। जब उसने **"एकोऽहं बहुस्याम्"** की इच्छा की, एक से बहुत बनने का उपक्रम किया तो उस इच्छा शक्ति के कारण सृष्टि उत्पन्न हुई। जब ब्रह्मा ने उस सृष्टि का साक्षात्कार किया, उसमें तीन वस्तुयें प्रधान दिखाई दीं- (१) श्री, (२) प्रतिष्ठा, (३) आयतन अर्थात् ज्ञान। इन विलक्षण सुख सामग्रियों को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ? इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए ब्रह्म ने कहा- तप करो, अर्थात् तन्मयतापूर्वक श्रम करो। यह किस प्रकार संभव है ? तप से अभीष्ट वस्तुयें किस प्रकार प्राप्त हो सकती हैं ? उसका भी ब्रह्म ने बड़े सुन्दर ढंग से स्पष्टीकरण कर दिया। यदि तप का व्रत धारण किया जाय, तप को- रुचिपूर्वक श्रमशीलता को अपना स्वभाव बना लिया जाए, तो मनुष्य अवश्य ही सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है और अवश्य ही सही मार्ग मिल जाता है। उस मार्ग पर चलता हुआ प्राणी अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।

अब इस श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का अधिकारी कौन नियुक्त किया जाय ? इस विलक्षण सुख-साधना का अधिकारी हर कोई नहीं हो सकता। सविता ने- परमात्मा ने अपनी सत् शक्ति से ब्राह्मण को बनाया और उसको सावित्री से घेर दिया। जिसमें सत् तत्त्व विशेष है, जो ब्रह्म परायण है, वह व्यक्ति ब्राह्मण है। ऐसे व्यक्ति ईश्वरीय दिव्य भावों से, दिव्य शक्ति से घिरे रहते हैं, उन्हें श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान की प्राप्ति होती है, वे ही उनका सदुपयोग करके लाभान्वित होते हैं। अन्यों को इन तीनों का अधिकार नहीं है। यदि बलात्, अनधिकृत रूप से कोई इन्हें प्राप्त कर लेता है, तो उसके लिये ये वस्तुयें विपत्ति रूप बन जाती हैं।

आसुरी भावनाओं से आच्छादित मनुष्य तपस्वी नहीं होते, जो उचित मार्ग से तप द्वारा ईमानदारी से इन वस्तुओं को प्राप्त करें। वे अवैधानिक रूप से, अनुचित मार्ग से, चालाकी से इन्हें प्राप्त करते हैं। ऐसी दशा में वह श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान उनके खुद के लिये तथा अन्य लोगों के लिये विपत्ति का कारण बनते हैं। आज हम देखते हैं कि धनी लोग, धन संग्रह के लिये कैसे-कैसे अनुचित तरीके अपनाते हैं और फिर उस संचित धन को कैसे अनुचित मार्ग में खर्च करते हैं। अपनी प्रतिष्ठा का दुरुपयोग करने वाले नेता, महात्मा, साधु-संन्यासी आदि की संख्या कम नहीं है। लोग औंधे-सीधे मार्ग से, नामवरी और वाहवाही लूटने के लिये प्रयत्न करते हैं। ज्ञान का दुरुपयोग करने वालों की भी कमी नहीं है। अश्लील, कुरुचिपूर्ण पुस्तकें लिखने वाले लेखक, चित्रकार कम नहीं हैं। झूठी विज्ञापनबाजी करके अपनी ज्ञान शक्ति का दुरुपयोग करने वालों की संख्या पर्याप्त है। ऐसे असत् प्रकृति के लोगों को जब यह तीन शक्तियाँ मिल जाती हैं, तो वे उनका दुरुपयोग करते हैं। दुरुपयोग का निश्चित परिणाम उनका छिन जाना है। प्रकृति का नियम है कि वह अयोग्य हाथों में किसी वस्तु को अधिक समय नहीं रहने देती।

जो ब्राह्मण हैं, ब्रह्म प्रकृति के हैं, ब्रह्म ने उन्हें उपर्युक्त तीन लाभों का स्थायी अधिकारी बताया है। यही ईश्वरीय नियम है। जिन्हें स्थायी रूप से श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का अधिकारी बनना हो, सदा के लिये इनका रसास्वादन करना हो, उन्हें ब्राह्मण बनना चाहिये। अपने गुण, कर्म, स्वभाव में ब्राह्मी भावों की प्रधानता रखनी चाहिये। तभी ये तीन तत्त्व स्थायी रूप से उसके पास ठहरेंगे। सविता ने- परमात्मा ने अपनी सावित्री से सत्-शक्ति से, ब्राह्मण को वर दिया है। हमें तप द्वारा, योग द्वारा, यज्ञ द्वारा, प्रेम द्वारा, न्याय द्वारा ब्राह्मण बनने का प्रयत्न करना चाहिये, जिससे संसार के इन तीन दिव्य सुखों के अधिकारी बन सकें।

ब्राह्मण के पास-सन्मार्गगामी के पास, वैभव किस प्रकार पहुँचता और ठहरता है, इसका विवेचन करते हुए उपनिषद्कार ने परस्पर सम्बन्धों को गिनाया है कि वह परस्पर सम्बन्ध की शृंखला किस प्रकार सम्पन्नता को प्राप्त कराने में समर्थ होती है ?

गायत्री के प्रथम पाद "तत्सवितुर्वरेण्यं" का भूः प्रतिनिधि कहा गया है। तीन व्याहृतियों से- भूः भुवः स्वः से गायत्री के तीन पद आविर्भूत हुए हैं। भूः कहते हैं- पृथ्वी लोक को। पृथ्वी को पृथ्वी के निवासियों से, ऋक् को ज्ञान से सम्बद्ध किया, ज्ञान से अग्नि अर्थात् क्रिया को सम्बद्ध किया, अग्नि से श्री को अर्थात् क्रिया से वैभव को जोड़ दिया। वैभव को स्त्री से अर्थात् तृप्ति से जोड़ा। तृप्ति से मिथुन अर्थात् जोड़ा बना, मैत्री हुई, मैत्री से प्रजा अर्थात् बहुजन सम्बन्ध स्थापित हुआ, बहुजन सहयोग से कर्म हुए, सत्कर्मों से तप के लिये साहस बढ़ा। तप से सत्य मार्ग मिला, सत्य मार्ग से ब्रह्म प्राप्ति हुई, ब्रह्म प्राप्ति करने वाला ब्राह्मण कहलाया। ब्राह्मण ने व्रत को अपनाया, आदर्शवादी आचरण की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार जिसका जीवन आदर्शवादी आचरण की प्रतिज्ञा से ओत-प्रोत है, वह ब्राह्मण सुतीक्ष्ण, परिपूर्ण और अखण्डित होता है। उसकी तीक्ष्णता में, क्रियाशीलता में, पूर्णता में कुछ भी कमी नहीं होती, उसे कोई खण्डित नहीं कर सकता।

जो इस प्रकार का ज्ञान रखता है, जो इस प्रकार गायत्री की व्याख्या करता है, उसका जीवन और वंश अविच्छिन्न रहता है। गायत्री के प्रथम पाद का शब्दार्थ तो बहुत साधारण है। उसे समझने मात्र से उतना लाभ नहीं मिल सकता, जितना कि मिलना चाहिये। ब्रह्म ने श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान रूपी तीनों रत्नों का जिसे अधिकारी बनाया है उसे गायत्री से घेर दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि गायत्री की मर्यादा के भीतर जिन्होंने ब्राह्मणत्व

प्राप्त किया है - वे ही भौतिक और आत्मिक आनन्दों को प्राप्त करेंगे । जिनकी जठराग्नि तीव्र है, उनके लिये साधारण श्रेणी के पदार्थ भी रुचिकर और पुष्टिकर होते हैं और जिनकी जठराग्नि मन्द है, उनके लिए बढ़िया मोहन-भोग भी रोग उत्पन्न करते हैं । गायत्री से आच्छादित ब्रह्मकर्मा मनुष्य की आत्मिक जठराग्नि ऐसी तीव्र होती है कि वह थोड़ी मात्रा में प्राप्त हुए पदार्थों से भी पर्याप्त रसास्वादन कर सकता है ।

जो यह जानता है कि गायत्री के प्रथम पाद का वास्तविक उद्देश्य मानव जीवन को आदर्शवाद की प्रतिज्ञा से ओत-प्रोत बनाना है, वही उनका वास्तविक तात्पर्य जानता है । जो इस ज्ञान को व्यवहार में लाता है, अर्थात् अपने को वैसा ही बनाता है, उसका जीवन अविच्छिन्न होता है, अर्थात् जीवन भर पथ भ्रष्ट नहीं होता और उसका वंश भी नष्ट नहीं होता । पीछे भी जन्म-जन्मान्तरों तक वह भावना नष्ट नहीं होती, इस अविच्छिन्नता के कारण उसे श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का भी अभाव नहीं होता ।

भर्गो देवस्य धीमहि इति सावित्र्या द्वितीयः पादः ।

भर्गो देवस्य धीमहि- यह सावित्री का दूसरा पाद है ।

अन्तरिक्षेण यजुः समदधात्, यजुषा वायुम्, वायुना अभ्रम् । अभ्रेण वर्षम्, वर्षेणौषधि-वनस्पतीन्, ओषधि-वनस्पतिभिः पशून्, पशुभिः कर्म, कर्मणा तपः, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतं, व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवति ।

"अन्तरिक्ष से ब्रजुष् को युक्त करता है, यजुर्वेद से वायु को, वायु से मेघ को, मेघ से वर्षा को, वर्षा से ओषधि-वनस्पतियों को, ओषधि वनस्पतियों से पशुओं को, पशुओं से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को तथा व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण और अविच्छिन्न होता है ।"

अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति, य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतं सावित्र्या द्वितीयं पादं व्याचष्टे ।

"जो विद्वान् इस प्रकार जानकर सावित्री के द्वितीय पाद की व्याख्या करते हैं, उनका वंश तथा जीवन अविच्छिन्न होता है ।"

पिछली कण्डिका में भूः से ऋक् को सम्बन्धित करके प्रथम पाद का रहस्य समझाया था । इस कण्डिका में गायत्री के दूसरे पद का विवेचन करते हैं । भुवः से (अन्तरिक्ष से) यजुः का सम्बन्ध किया है । यजुः कहते हैं यज्ञ को । यज्ञ कहते हैं, परमार्थ को । पहली कण्डिका में ज्ञान द्वारा आदर्श जीवन की प्राप्ति का उपाय बतलाया था । यहाँ यज्ञ द्वारा व्रतमय जीवन होने की शृंखला का वर्णन करते हैं ।

भुवः से अन्तरिक्ष में यजुः को संयुक्त किया, यजुः से वायु को, वायु से मेघ को, मेघ से वर्षा को, वर्षा से ओषधि और वनस्पतियों को, वनस्पतियों से पशुओं को सम्बद्ध किया । गीता में भी यज्ञ विधान का ऐसा ही वर्णन है । यज्ञ से वायु शुद्ध होगी, वायु के सम्पर्क से गुणदायक जल बरसता है । उससे वृक्ष, वनस्पतियाँ और पशु श्रेष्ठ तत्त्वों वाले होते हैं, उनका उपयोग करने से मनुष्य का मन श्रेष्ठ बनता है और श्रेष्ठ मन से श्रेष्ठ कर्म होते हैं ।

कर्म से मन को, मन से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को और ब्राह्मण को व्रत से सम्बद्ध किया । अन्ततः यही क्रम आ गया । व्रत धारण करने से ब्राह्मण सुतीक्ष्ण, परिपूर्ण एवं अविच्छिन्न वंश वाला होता है ।

जो ज्ञान से प्राप्त होता है, वही प्रकारान्तर से यज्ञ द्वारा, श्रेष्ठ कर्मों द्वारा भी प्राप्त हो सकता है । उच्च अन्तःकरण से निकली हुई सद्‌भावनायें समस्त आकाश को, वातावरण को सत्‌मय बना देती हैं और उस वातावरण में पलने वाले सभी पदार्थ सत् से परिपूर्ण होते हैं । जिस वातावरण के कारण मनुष्य व्रत परायण, व्रतवान् होकर अविच्छिन्न जीवन वाला हो जाता है, वही इस दूसरी कण्डिका का तात्पर्य है ।

धियो यो नः प्रचोदयादिति सावित्र्यास्तृतीयः पादः ।

धियो योनः प्रचोदयात्- यह सावित्री का तीसरा पाद है ।

दिवा साम समदधात् साम्नाऽऽदित्यम् , आदित्येन रश्मीन् रश्मिभिर्वर्षम् , वर्षेणौषधिवनस्पतीन्, ओषधि- वनस्पतिभिः पशून्, पशुभिः कर्म, कर्मणा तपः, तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम् , ब्राह्मणेन व्रतम्, व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवत्यशून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवति। अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद , यश्चैवं विद्वानेवमेतं सावित्र्यास्तृतीयं पादं व्याचष्टे।

द्युलोक से साम को उत्पन्न करता है, साम से आदित्य को, आदित्य से रश्मियों को, रश्मियों से वर्षा को, वर्षा से ओषधि-वनस्पतियों को, ओषधि-वनस्पतियों से पशुओं को, पशुओं से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को। व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण और अविच्छिन्न वंश होता है। जो विद्वान् यह जानकर सावित्री के तृतीय पाद की व्याख्या करते हैं, वे अपने वंश एवं जीवन को अविच्छिन्न बनाते हैं।

गायत्री का तीसरा पद 'स्वः' से आविर्भूत हुआ। 'स्वः' कहते हैं द्युलोक को। द्युलोक सामवेद से संयुक्त किया गया है। साम से आदित्य, आदित्य से रश्मियाँ, रश्मियों से वर्षा, वर्षा से ओषधि-वनस्पति, उनसे पशुओं का सम्बन्ध है। इनका प्रयोग करने से पूर्व कण्डिकाओं में वर्णित प्रकार से मनुष्य ब्रह्मचारी, व्रतधारी बनकर अविच्छिन्न जीवन और वंश वाला बन जाता है।

गायत्री के तीन पादों में वह विज्ञान सन्निहित है, जिसके द्वारा मनुष्य को श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान की उपलब्धि होती है। तीन पाद वेदों से बने हैं। प्रत्येक पाद एक-एक लोकों का प्रतीक है। इन तीन लोकों से यह तीनों वेदों के मन्त्र आवश्यक सामग्री को खींचकर लाते हैं और गायत्री साधक को सब प्रकार से सुखी बना लेते हैं। इसके व्यक्तिगत लाभ ही नहीं, वरन् सामूहिक लाभ भी हैं। जैसे यज्ञ करने से वायु की शुद्धि, उत्तम वर्षा और उससे गुणकारी वनस्पति तथा दूध की उत्पत्ति होती है। वैसे ही गायत्री द्वारा भी वह प्रक्रिया होती है।

ये सम्बद्ध शृंखलायें, अपने में एक बड़ा भारी पदार्थ-विज्ञान सम्बन्धी रहस्य छिपाये बैठी हैं। एक पदार्थ से दूसरे का सम्बन्ध किस प्रकार का है इसकी थोड़ी-सी विवेचना हमने आध्यात्मिक शैली से की है, परन्तु इसमें और भी विशद रहस्य मौजूद हैं, जिसके कारण गायत्री का साधक उन तीनों लाभों से- श्री, प्रतिष्ठा एवं ज्ञान से पर्याप्त मात्रा में लाभान्वित होता है और अन्त में ईश्वर की प्राप्ति करके अविच्छिन्न जीवन को प्राप्त करता है अर्थात् अमर हो जाता है, उसे जरा, मृत्यु के बन्धन में नहीं बँधना पड़ता। ऐसा है- इस त्रिपदा गायत्री का रहस्य !

तेन ह वा एवं विदुषा ब्राह्मणेन ब्रह्माभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्।

सावित्री के तीन पाद जानने वाला ब्राह्मण, ब्रह्म प्राप्त (APPROCHED), ग्रसित (DIGESTED) और परामृष्ट (REALISWS) होता है।

ब्रह्मणा आकाशमभिपन्नं, ग्रसितं परामृष्टम् , आकाशेन वायुरभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टो, वायुना ज्योतिरभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। ज्योतिषापोऽभिपन्ना ग्रसिताः परामृष्टाः। अद्भिर्भूमिरभिपन्ना ग्रसिता परामृष्टा, भूम्यान्नमभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। अन्नेन प्राणोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। प्राणेन मनोऽभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। मनसा वागभिपन्ना ग्रसिता परामृष्टा। वाचा वेदा अभिपन्ना ग्रसिताः परामृष्टाः। वेदैर्यज्ञोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। तानि ह वा एतानि द्वादश महाभूतान्येवं विधि प्रतिष्ठितानि तेषां यज्ञ एव परार्ध्यः।

"ब्रह्म से आकाश प्राप्त, ग्रसित एवं परामृष्ट है। आकाश से वायु प्राप्त, ग्रसित तथा परामृष्ट है। वायु से ज्योति अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ट है। ज्योति से जल प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट है। जल से पृथ्वी प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट है। भूमि से अन्न अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ट है। अन्न से प्राण अभिपन्न, ग्रसित तथा परामृष्ट

हैं । प्राण से मन अभिपन्न, ग्रसित तथा परामृष्ट है । मन से वाक् अभिपन्न, ग्रसित तथा परामृष्ट है । वाक् से वेद अभिपन्न, ग्रसित एवं परामृष्ट है । वेद से यज्ञ प्राप्त, ग्रसित एवं परामृष्ट है । इस प्रकार का ज्ञान रखने वालों में ये बारह महाभूत प्रतिष्ठित रहते हैं । इसमें यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ है ।"

पिछली तीन कण्डिकाओं में वर्णित गायत्री के तीन पादों के रहस्यों को जो भली प्रकार जानता है, उस ब्राह्मण से ब्रह्म प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट होता है अर्थात् वह ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त करता है, प्राप्त करके उसे अपने में पचाता है और उससे परामृष्ट- आच्छादित होता है । उसके भीतर- बाहर सब ओर ब्रह्म की सत्ता काम करती है ।

अब १२ ऐसी कड़ियाँ बतायी जाती हैं, जिन पर विचार करने से यह प्रकट हो जाता है कि पञ्चभूत, अन्तःकरण चतुष्टय, वेद और यज्ञ सब का मूल केवल ब्रह्म है । ब्रह्म से ही एक कड़ी के बाद दूसरी कड़ी की तरह यह सब जुड़े हुए हैं, उसी से ओत-प्रोत हैं ।

बताया गया है कि ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से अन्न, अन्न से प्राण, प्राण से मन, मन से वाक्, वाक् से वेद और वेद से यज्ञ प्राप्त होता है, ग्रसित किया जाता है, आच्छादित होता है ।

ब्रह्म, प्रत्यक्ष रूप से आँखों से दिखाई नहीं पड़ता । स्वल्प ज्ञान वाले मनुष्य समझते हैं कि पञ्चभूतों का यह पुतला ही सब कुछ करता है । उन्हें यह बताया गया है कि पञ्चभूत और तुम्हारे अन्दर काम करने वाली मन, बुद्धि आदि की चैतन्यता ब्रह्म से पृथक् नहीं है वरन् उसी से आच्छादित है । यदि ब्रह्म का आच्छादन इन पर न हो, तो इनकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाए और कोई तत्त्व कुछ भी काम करने में समर्थ न हो सके ।

जो प्रकृति में, पञ्चभूतों में, शरीर में ब्रह्म को, परमात्मा को समाया हुआ देखता है, वह ब्राह्मण कहलाता है । वह वेद और यज्ञ से घिरा होता है अर्थात् सद्ज्ञान और सत्कर्म उसके कण-कण में व्याप्त होते हैं । इन सब ज्ञानों में यज्ञ ही, सत्कर्म ही सर्वोत्तम है, क्योंकि इस ज्ञान का तात्पर्य ही यह है कि मनुष्य सत्कर्म में लगे । जिसे यह सब रहस्य मालूम है, उसमें सब भूत प्रतिष्ठित रहते हैं अर्थात् समस्त सृष्टि-विस्तार को वह अपने भीतर ही समझता है ।

तं ह स्मैतमेवं विद्वांसो मन्यन्ते विद्मैनमिति याथातथ्यमविद्वांसः ।

जो विद्वान् यह समझ लेते हैं कि हम इस यज्ञ के जानकार हो गये हैं, वे ही इसे नहीं जानते ।

अयं यज्ञो वेदेषु प्रतिष्ठितः । वेदा वाचि प्रतिष्ठिताः ।
वाङ् मनसि प्रतिष्ठिता । मनः प्राणे प्रतिष्ठितम् ।
प्राणोऽन्ने प्रतिष्ठितः । अन्नं भूमौ प्रतिष्ठितम् ।
भूमिरप्सु प्रतिष्ठिता । आपो ज्योतिषि प्रतिष्ठिता ।
ज्योतिर्वायौ प्रतिष्ठितम् । वायुराकाशे प्रतिष्ठितः ।
आकाशं ब्रह्मणि प्रतिष्ठितम् । ब्रह्म ब्राह्मणे ब्रह्मविदि प्रतिष्ठितम् ।

यो ह वा एवं-वित् स ब्रह्मवित्पुण्यां च कीर्तिं लभते सुरभींश्च गन्धान् । सोऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद , यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातरं सावित्री- सम्पदमुपनिषदमुपास्त इति ब्राह्मणम् ।।

- गो० १/३८

यह यज्ञ वेद से प्रतिष्ठित है । वेद वाक् में प्रतिष्ठित हैं । वाक् मन में प्रतिष्ठित है । मन प्राण में प्रतिष्ठित है । प्राण अन्न में प्रतिष्ठित है । अन्न भूमि में प्रतिष्ठित है । भूमि जल में प्रतिष्ठित है । जल तेज पर प्रतिष्ठित है । आकाश ब्रह्म पर प्रतिष्ठित है । ब्रह्म ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण पर प्रतिष्ठित है । इस प्रकार जानने वाला ब्रह्मज्ञानी पुण्य एवं कीर्ति को प्राप्त करता है तथा सुरभित गन्धों को पाता है ।वह व्यक्ति पापहीन होकर अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ।

पिछली कण्डिका में यज्ञ को सर्वोत्तम बताया है, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जो यह कहते हैं कि हम यज्ञ को जानते हैं, वे उसे नहीं जानते। कारण यह है कि दूसरे आदमी किसी कार्य के बाह्यरूप को देखकर ही उनके भले-बुरे होने का अनुमान लगाते हैं, परन्तु यथार्थ में काम के बाहरी रूप से यज्ञ का कोई सम्बन्ध नहीं, वह तो आन्तरिक भावना पर निर्भर होता है। यह हो सकता है कि कोई व्यक्ति बड़े-बड़े दान, पुण्य, होम, अग्नि होत्र, ब्रह्म-भोज, तीर्थयात्रा आदि करता हो, पर उसमें उसका उद्देश्य यश लूटना या कोई और लाभ उठाना हो। इसी प्रकार डाक्टर के आपरेशन करने के समान ऐसे कार्य भी हो सकते हैं, जो देखने में पाप प्रतीत होते हैं, परन्तु कर्त्ता की सद्भावना के कारण वे श्रेष्ठ कर्म हों। इसलिये कौन आदमी यज्ञ कर रहा है या नहीं, इसका निर्णय उन व्यक्तियों की अंतरात्मा ही कर सकती है। बाहर के आदमी के लिये बहुत अंशों में उसका जानना सम्भव होने पर भी पूर्ण रूप से शक्य नहीं है।

पिछली कण्डिका में जिन बारह कड़ियों को एक ओर से गिनाया था, इस कण्डिका में उन्हें दूसरी ओर से गिनाया गया है अर्थात् क्रम उल्टा कर दिया-

यह यज्ञ वेदों में, वाक् मन में, मन प्राण में, प्राण अन्न में, अन्न भूमि में, भूमि जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश ब्रह्म में और ब्रह्म ब्राह्मण में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार इस शृंखला का एक सिरा ब्राह्मण है, तो दूसरा यज्ञ। एक सिरा यज्ञ है, तो दूसरा ब्राह्मण। दूसरी तरह से इसी को यों कह लीजिये कि जो सद्ज्ञान और सत्कर्म से ओत-प्रोत है, वही ब्राह्मण है।

जो इस प्रकार से जानता है, जो ब्रह्मज्ञानी है, वह सुगन्ध की तरह उड़ने वाली पुण्यमयी कीर्ति को प्राप्त करता है। वह निष्पाप हो जाने से अनन्त ऐश्वर्यों को भोगता है। वह ज्ञान का उपासक बनकर, इस वेदमाता गायत्री के उपनिषद् का उपासक बनता है अर्थात् इस उपनिषद् में वर्णित महान् ब्रह्मज्ञान को अपने अन्तःकरण में धारण करके उससे अपना जीवन ओत-प्रोत बनाता है। ऐसा व्यक्ति ही ब्राह्मण है, ऐसा शास्त्रों का अभिवचन है।

गायत्री रामायण

यह प्रसिद्ध है कि वाल्मीकि रामायण की रचना का मूल आधार गायत्री मन्त्र है। गायत्री मन्त्र की व्याख्या के रूप में इस महान् ग्रन्थ की रचना हुई है।

वाल्मीकि रामायण में २४ हजार श्लोक हैं। एक-एक अक्षर की व्याख्या स्वरूप एक-एक हजार श्लोक रचे हैं अथवा यों कहा जा सकता है कि एक-एक हजार श्लोकों के ऊपर गायत्री के एक-एक अक्षर का सम्पुट दिया गया है।

आजकल वाल्मीकि रामायण के जो संस्करण मिलते हैं, उनमें श्लोकों की संख्या समान नहीं है और उनमें काफी अन्तर पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि बीच के अन्धकार युग में, यवन काल में कितने ही श्लोक नष्ट-भ्रष्ट हो गये होंगे। अन्य ग्रन्थों की भाँति साम्प्रदायिक उतार-चढ़ाव के जोश में सम्भव है, वाल्मीकि रामायण में भी कुछ श्लोक जोड़े गये हों या निकाले गये हों। रामचन्द्रजी द्वारा मांस का प्रयोग होना ऐसी ही निषिद्ध बात है, जो किसी ने पीछे से जोड़ दी मालूम होती है, अन्यथा विश्वास नहीं होता कि भगवान् रामचन्द्र जब कि वनवास में यती बनकर रह रहे थे, लक्ष्मण से मांस पकवाते और फिर सीता-लक्ष्मण समेत उसे खाते।

इस प्रकार की गड़बड़ी में श्लोक संख्या का क्रम भी बिगड़ गया है। प्रति एक हजार श्लोकों के बाद गायत्री के एक अक्षर का सम्पुट देकर महर्षि वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ में मिलावट रोकना चाहा था, पर न हो सका। आज हमें अव्यवस्थित क्रमों वाली पुस्तकें ही प्राप्त होती हैं। हिसाब लगाकर देखा गया, तो कहीं-कहीं तो केवल ४-६ श्लोकों का ही आगा-पीछा है, पर कहीं यह अन्तर सैकड़ों तक पहुँचा है।

इतना होने पर भी प्रति सहस्र पर गायत्री का एक अक्षर होने के इस क्रम को आकस्मिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अन्य किसी मन्त्र का ऐसा सम्पुट प्राप्त नहीं होता। अनजान में ऐसा सम्पुट नहीं लग सकता। महर्षि वाल्मीकि ने इसे बहुत समझकर लगाया है।

इस गायत्री सम्पुट के न जाने कितने रहस्य और कारण होंगे । उन सबका जानना तो आज कठिन है, परन्तु उन सम्पुट वाले श्लोकों पर दृष्टिपात किया जाए, तो वे बड़े महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं । वैसे उनमें अधिकांश श्लोक घटनात्मक हैं । किसी घटना या वार्तालाप का ही परिचय मिलता दीखता है, तो भी गम्भीर दृष्टि डाली जाए, तो प्रतीत होता है कि उसमें संकेत रूप से एक बड़ी महत्त्वपूर्ण शिक्षा भरी हुई है ।जिस शिक्षा पर ठीक प्रकार से अमल किया जाए, तो मनुष्य का जीवन असाधारण विशेषताओं से परिपूर्ण हो सकता है ।

इन २४ अक्षरों के आरम्भ वाले २४ श्लोकों को 'गायत्री रामायण' कहा जाता है । इन श्लोकों के गर्भ में संकेत रूप में छिपे हुए मर्मों को समझकर, उन्हें हृदयंगम करने वाला मनुष्य, सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण के लाभ प्राप्त कर सकता है । आगे उन गायत्री के २४ अक्षरों से आरंभ होने वाले श्लोकों की विवेचना करते हैं ।

१-तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥ - वा० रा० बालकाण्ड १/१

अर्थ- तप और स्वाध्याय करने वाले सर्व प्रधान और मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी से तपस्वी वाल्मीकि ने पूछा-

इस श्लोक में दो पहेलियों पर प्रकाश डाला गया है । नारदजी को दो पदवी दी हैं और उन पदवियों का कारण भी बताया है । नारद जी को सर्वप्रधान विद्वान् और मुनियों में श्रेष्ठ कहा है । सर्वप्रधान विद्वान् उन्हें क्यों कहा गया है ? क्या नारद जी ने व्यास की तरह अठारह पुराण लिखे थे या उन्होंने कोई और ऐसी विशेषता दिखाई थी, जो अन्य विद्वानों में नहीं होती ? यदि ऐसा नहीं है, तो उन्हें सर्वश्रेष्ठ विद्वान् क्यों कहा गया ? या फिर वाल्मीकि जी झूठे थे, जिन्होंने नारदजी की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा की ?

इसी श्लोक में वह कारण भी स्पष्ट कर दिया है, जिसके कारण उन्हें सर्वश्रेष्ठ विद्वान् बताया गया है । वह कारण है- शास्त्र का चिंतन । पोथी पढ़ने वाले 'पड्डू' तो एक से एक बढ़िया पड़े हैं, जिनकी जिन्दगियाँ पोथी पढ़ने में बीत गयीं । हजारों-लाखों पुस्तकें जिनने पढ़ डालीं, क्या ऐसे लोगों को सर्वश्रेष्ठ विद्वान् कह दिया जाए ? नहीं , ऐसा नहीं हो सकता । पोथी पढ़ने का व्यसन, किसी की जानकारी को तो बढ़ा सकता है, पर उससे कोई आत्मिक लाभ नहीं हो सकता । व्यक्ति भले ही शास्त्र को थोड़ा पढ़ता हो, पर उसका चिन्तन करता रहे । शास्त्र के अर्थ पर, आदेश पर, मर्म पर, महत्त्व पर गम्भीरता से मनन करना, अपनी आत्मा का अध्ययन करना, आत्म-मन्थन से जो नवनीत निकलता हो, उसे पचाकर आत्मसात् कर लेना यही स्वाध्याय का तथ्य है । जो इस प्रकार शास्त्र-सेवन करता है, वही विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ है । इसलिये नारदजी को विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ कहा ।

दूसरी पदवी उन्हें मुनियों में श्रेष्ठ की दी गयी, ऐसा क्यों हुआ ? इसका उत्तर भी साथ ही मौजूद है, वह है 'तप' । मनन करने वालों को मुनि कहते हैं । ऐसे अनेक हैं, जो सत्तत्त्व का मनन करते हैं, पर इतने मात्र से काम नहीं चलता । जिसमें आदर्श के लिये घोर प्रयत्न करने की लगन है और उस प्रयत्न के लिये बड़े से बड़ा कष्ट सहने का साहस है, वही तपस्वी, मुनियों में श्रेष्ठ है । नारद जी घड़ी भर चैन किये बिना अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये यहाँ-वहाँ भ्रमण करते फिरते थे, लोक सेवा के लिये उन्होंने सारा जीवन ही उत्सर्ग कर रखा था ।

इस श्लोक में नारदजी को माध्यम बनाकर तप और स्वाध्याय की सर्वश्रेष्ठता वर्णन की है । गायत्री रामायण का पहला श्लोक हमें तपस्वी और स्वाध्यायशील होने का सदुपदेश देता है ।

२- स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः ।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥ - वा० रा० बालकाण्ड ३०/२४

अर्थ- "यज्ञ नष्ट करने वाले समस्त राक्षसों को रामचन्द्र जी ने मारा । ऋषियों ने उनकी इसी प्रकार पूजा की, जिस प्रकार पहले असुर-विजय करने पर इन्द्र की हुई थी ।"

इस दूसरे श्लोक में तीन तथ्य हैं (१) यज्ञ नष्ट करने वालों को राक्षस मानना (२) राक्षसों को मारना (३) राक्षसों को मारने के लिये विवेकशीलों द्वारा प्रोत्साहित किया जाना ।

भले कामों में जो लोग बाधा अटकाते हैं, जनता की सुख-शान्ति में विघ्न उपस्थित करते हैं, पुण्य की प्रथा को रोक पाप की प्रणाली चलाते हैं- ऐसे लोक-कण्टक मनुष्य राक्षस हैं, जनता के शत्रु हैं ऐसे लोगों के प्रति घृणा

के भाव जाग्रत् रखना आवश्यक है , अन्यथा वे हमारी उपेक्षा, लापरवाही तथा आँख चुराने की मनोवृत्ति देखकर निर्भय हो जायेंगे और दूने उत्साह से अपना काम करेंगे । इसलिये समाज-विरोधी, देश-द्रोही, लोक-कण्टक लोगों पर हमारी तीव्र दृष्टि रहनी आवश्यक है । उनकी करतूतों से सावधान रहें, दूसरों को सावधान रखें और उनके विपक्ष में घृणा का वातावरण तैयार करते रहें, जिससे वे राक्षसी-वृत्तियों में निर्भय होकर बढ़ने से ठिठकें ।

ऐसे लोगों के लिये दूसरा उपाय है- उनका दमन । जहाँ व्यक्तिगत रूप से निपट लेने की अनिवार्य आवश्यकता है, वहाँ तो दूसरी बात है, पर अन्य असाधारण अवसरों पर राज्य द्वारा ऐसे लोगों को दण्ड दिलवाना चाहिये । विदेशी शासन चले जाने पर, अब सरकार ही जनता का प्रतिनिधित्व करती है । इसलिये दण्ड देने का कार्य जनता की सामूहिक दण्ड-शक्ति-सरकार द्वारा उन्हें कुचलवाना चाहिये । ऋषियों ने राक्षसों को स्वयं नहीं मारा था । विश्वामित्र जी, राम और लक्ष्मण राज-पुत्रों को लाये थे और उन्हें धनुष विद्या सिखाकर राक्षसों को मरवाया था । चाहते तो विश्वामित्र भी राक्षसों को मार सकते थे, पर प्रजा द्वारा, प्रजा को दण्ड दिया जाना उचित न समझकर उन्होंने इसके लिये राज्याश्रय को प्राप्त किया । हमें भी दुष्टों के दमन के लिये अपनी राज्य-शक्ति का ही प्रयोग करना चाहिये ।

तीसरी बात यह है- ऋषियों द्वारा राजशक्ति की पूजा । दुष्टों से लड़ने वाली शक्तियों के साथ हमारी पूरी-पूरी सहानुभूति होनी चाहिये । यह हो सकता है कि हमें किसी से , किसी कारणवश विरोध हो, कोई असन्तोष या द्वेष हो, पर जब राक्षसत्व के दमन का अवसर आए, तो उस विरोधी का भी पूरा-पूरा समर्थन और सहयोग करके असुरत्व को परास्त करना चाहिये । सैद्धान्तिक या व्यक्तिगत विरोध का ऐसे अवसरों पर जरा भी ध्यान नहीं करना चाहिये । वीर-पूजा की प्रथा प्राचीन है । इन्द्र आदि की भी पूजा उनके असुर-विजय के कारण होती है । विघ्नों से, कण्टकों से और असुरता के साथ जो लड़ते हैं, वे हमारी प्रशंसा, प्रोत्साहन एवं सहयोग के अधिकारी हैं ।

३- विश्वामित्रः सरामस्तु श्रुत्वा जनक-भाषितम् ।
वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ।। - वा० रा० बालकाण्ड ६७/१२

अर्थ- "राम के साथ विश्वामित्र ने जनक की बातें सुनीं और रामचन्द्र से कहा-वत्स ! धनुष को देखो ।"

"इस कठिन काम को अनेक लोग पूरा नहीं कर सके, इसलिये यह मुझसे भी पूरा नहीं होगा ।" इस प्रकार के अपडर से अनेकों सुयोग्य व्यक्ति अपनी प्रतिभा को कुण्ठित कर लेते हैं और हीनता की ग्रन्थि से ग्रथित हो जाते हैं, ऐसा होना उचित नहीं । कई बार ऐसा देखा गया है कि जो काम बड़े लोगों के लिये कठिन था, वह छोटों ने पूरा कर दिखाया । जनक का धनुष "भूप सहस दस एकहि बारा । लगे उठावन टरहि न टारा ।।" के अनुसार बड़ा भारी कार्य बना हुआ था । विश्वामित्र जानते थे कि वह झिझक राम को भी आ सकती है और उससे डर जायें, तो आधा काम विफल हो सकता है । इसलिये उन्होंने उत्साह प्रदान करते हुए कहा- वत्स राम ! इस धनुष को देखो ।

जो कठिनाइयाँ हमारे सामने आती हैं , उनकी कल्पना बड़ी डरावनी होती है । ऐसा मालूम देता है कि वह विपत्ति न जाने हमारा क्या कर डालेगी, परन्तु जब मनुष्य साहस बाँध कर उसका मुकाबला करने खड़ा हो जाता है, तो विघ्न ऐसे सरल हो जाते हैं जैसे कि राम के लिये धनुष सरल हो गया था । उर्दू की कहावत है, "हिम्मते मरदां मददे खुदा" जो साहस वाले मर्द होते हैं, उनकी ईश्वर सहायता करता है । कठिनाइयों को देखकर हमें झिझकना, डरना या घबराना नहीं चाहिये वरन् दृढ़तापूर्वक उनको हल करने के लिए अग्रसर होना चाहिये । यही इस श्लोक का तात्पर्य है ।

४- तुष्टावास्य तदा वंशं प्रविश्य स विशांपतेः ।
शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्ठत ।। -वा० रा० अयोध्याकाण्ड १५/१९-२०

अर्थ- "राजा के शयनागार तक वे (सुमन्त) चले गये ।वहाँ उनके वंश की प्रशसा की ।"

प्रशंसा एक ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा उस स्थान तक आसानी से पहुँचा जा सकता है, जहाँ पहुँचना

साधारणतः कठिन होता है । राजा के शयनागार में हर किसी का प्रवेश नहीं होता, पर सुमन्त वहाँ भी पहुँच गये । उन्होंने उनके वंश की-अहंभाव के विचार की प्रशंसा की ।

अहंपोषण और काम-सेवन संसार के यह दो प्रमुख विलास हैं । मनःक्षेत्र का सबसे प्रिय विलास प्रशंसा है । अपनी प्रशंसा सुन कर सब कोई मोहित हो जाते हैं । सर्प और मृग संगीत की ध्वनि पर मुग्ध हो जाते हैं, मनुष्य के लिये सबसे मधुर संगीत उसकी आत्म प्रशंसा है ।

इस श्लोक में प्रशंसा के महत्त्व का वर्णन है । यह एक शस्त्र है, जिसके उपयोग द्वारा बुरे और भले दोनों प्रकार के परिणाम निकल सकते हैं ! खुशामदी, चालाक, धूर्त, ठग लोग अनुचित प्रशंसा करके दूसरों के गर्व को फुलाते हैं, अपना उल्लू सीधा करते हैं । अनुचित प्रशंसा से फूलने वाले की आदत बिगड़ती है । उसे ऐसा भ्रम होता है, मानो मैं वैसा ही हूँ । अपनी त्रुटियाँ दिखाई नहीं पड़तीं और अच्छाइयाँ अनुचित रूप से बढ़ी-चढ़ी दिखाई देती हैं, इससे उसका मस्तिष्क अज्ञानग्रस्त एवं भ्रान्त हो जाता है । फलस्वरूप उसके कार्य भी बेढंगे होते हैं । राजाओं, ताल्लुकेदारों, अमीरों, अफसरों आदि में इस प्रकार के खुशामद से उत्पन्न होने वाले अनेक विकार पाये जाते हैं । परन्तु यदि प्रशंसा का सदुपयोग किया जाए, उचित रीति से, किसी का उत्साह-वर्द्धन किया जाए, उसके वास्तविक गुणों को अच्छे रूप में सामने रखकर, उन्हें और अधिक बढ़ाने की शुभकामना की जाए, तो इससे उसका उत्साह और आत्मबल बढ़ता है, प्रशंसा की रक्षा के लिये वह बुराई से बचता है । सफेद कपड़े वाला मनुष्य बहुत सँभल कर बैठता-उठता है, कपड़े मैले न हो जाएँ इसका बहुत ध्यान रखता है, पर जो मैले कपड़े पहने है, उसे इस प्रकार का कोई संकोच नहीं होता । प्रशंसा स्वच्छ चादर है और निन्दा चिथड़ा । हमें अपने हर परिचित को सफेद कपड़े पहनाने चाहिये, जिससे वह लोक-जीवन में सावधानी और सुरुचि सीखे ।

५- वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च ।
भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वसुरो ददौ ।। - वा० रा० अयोध्याकाण्ड ४०/१४

अर्थ- "वनवास के दिनों को गिनकर, पति के साथ जाने वाली सीता को, श्वसुर ने वस्त्र-आभूषण दिये ।"

भविष्य में आने वाली कठिनाइयों को ध्यान में रखकर, उनके लिये समुचित तैयारी करना- यह इस श्लोक का रहस्य है । पूर्व कर्मों के फलस्वरूप आज हमें अच्छी परिस्थिति प्राप्त है, पर यदि अब कोई अच्छी तैयारी न की गयी, तो भविष्य अन्धकारमय है । बुद्धिमान् मनुष्य भविष्य की चिन्ता करते हैं, आगामी जीवन सुख-शान्ति एवं आनन्द-उल्लास के साथ बीते, इसके लिये वे शुभ कर्म करके अधिकाधिक पुण्य-संचय करते हैं । ऐसा ही हमें भी करना चाहिये ।

६-राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।
राजा माता-पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् । - वा० रा० अयोध्याकाण्ड ६७/३४

अर्थ- "राजा सत्य है, धर्म है, कुलवानों का कुल है, माता-पिता के तुल्य है और मनुष्यों का हितकारी है ।"

राजा के द्वारा, प्रजा के हित के लिये सत्य के आधार पर चलने वाले राज्य को सुराज्य और इसके भिन्न प्रकार के राज्य को कुराज्य कहते हैं । इस श्लोक में सुराज्य की प्रशंसा की गयी है, उसकी श्रेष्ठता बताकर सुराज्य द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करने का प्रोत्साहन है । प्रत्येक सभ्य नागरिक का कर्तव्य यह है कि समाज हित के राज्य-नियमों का ईश्वर की- धर्म की आज्ञाओं के समान आदर करे और उनका पालन करे । राज्य-भक्ति का तात्पर्य है- देश- भक्ति, समाज- भक्ति । इस देश-भक्ति एवं समाज-भक्ति के लिये यह श्लोक प्रेरणा देता है ।

७-निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ।। - वा० रा० अयोध्याकाण्ड ९९/२५

अर्थ- "भरत ने उसी क्षण, जटाधारी राम को उस कुटीर में बैठा देखा ।"

ईश्वर का ऐश्वर्य, बड़े वैभवशाली भवनों, खजानों और भण्डारों में मौजूद है, वैभव वाला ईश्वर, प्रत्येक

वैभववान् पदार्थ में हमें झिलमिलाता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु यदि ईश्वर के सतोगुणी स्वरूप का-ब्रह्म का-जटाधारी त्याग-मूर्ति राम का दर्शन करना हो, तो वह कुटीर में ही मिलेगा।

महात्मा गाँधी दरिद्र जनता को दरिद्र नारायण कहा करते थे। उन्हें ईश्वर की सर्वोत्तम झाँकी दरिद्रों में होती थी और दीनों के झोपड़े, उन्हें ईश्वर के सर्वश्रेष्ठ मन्दिर दृष्टिगोचर होते थे। कुटिया सादगी, अपरिग्रह एवं त्यागवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है। जहाँ यह गुण है, वहाँ जटाधारी राम, सत् शक्तियों से आच्छादित ब्रह्म के दर्शन हो सकते हैं। यह दर्शन उन्हें होंगे, जो भरत के समान, निर्मल एवं सरल अन्तःकरण वाले हैं। इस श्लोक में ईश्वर की श्रेष्ठ झाँकी किस प्रकार हो सकती है, इस गुत्थी को सुलझाते हुए कुटिया, जटाधारी राम और भरत इन तीन तत्त्वों का उल्लेख किया है। विवेकवान् व्यक्ति अपने दृष्टिकोण को भरत-सा, अपने अन्तःकरण को सरलतामयी कुटिया-सा बना ले, तब उसे जटाधारी राम के दर्शन होंगे। मुकुटधारी राम तो अन्यत्र भी देखे जा सकते हैं, उनकी झाँकी तो अयोध्या के महलों में भी होती थी, पर जटाधारी राम का घर तो कुटिया ही है।

८-यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम्।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते॥ - वा० रा० अरण्यकाण्ड ११/४३

अर्थ- "हे महामति ! यदि तुमको अगस्त्य के दर्शन की इच्छा है, तो आज ही जाने की सोचो।"

अगस्त्य कहते हैं कल्याण को। जो महामति, कल्याण के दर्शन करना चाहता है, आत्म-साक्षात्कार करना चाहता है, अर्थात् किसी भी प्रकार की भौतिक-मानसिक सफलता चाहता है, तो उसे चाहिये कि उद्देश्य की पूर्ति के लिये आज से ही प्रयत्न प्रारम्भ करे। कल के लिये टालते रहने से कोई बात पूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि कल कभी आता नहीं।

वर्तमान सबसे मूल्यवान् समय है। जो बीत चुका वह वापस नहीं आ सकता, उसके लिये चिन्ता- शोक करने से कुछ लाभ नहीं। जीवन की बहुमूल्य पूँजी वे घड़ियाँ हैं, जिन्हें वर्तमान कहते हैं। समय का सदुपयोग यही है कि वर्तमान की एक-एक घड़ी का उत्तम से उत्तम उपयोग किया जाए। जो करना अभीष्ट है, उसके लिये विलम्ब न लगा कर, समय को बर्बाद न करके, वर्तमान में ही उसके लिये प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिये, यही इस श्लोक का आशय है।

९- भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो।
मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति॥ - वा० रा० अरण्यकाण्ड ४३/१८

अर्थ- "भरत को, आपको और मेरी सासों को यह दिव्य मृगरूपी खिलौना विस्मित करेगा, यदि वह जीवित न पकड़ा जा सके, तो भी इसका चर्म बड़ा ही सुन्दर होगा।"

सब लोगों को प्रसन्नता देने वाले सुन्दर पदार्थ यदि पूर्ण मात्रा में प्राप्त न हो सकें, तो उनको कम मात्रा में ही प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। सद्‍गुण अपने में जितनी अधिक मात्रा में हों उतने अच्छे। पूर्ण हों तो सबसे अच्छे, पर यदि पूर्णता प्राप्त न हो सके तो भी, जितनी कुछ न्यूनाधिक मात्रा में उनका प्राप्त होना सम्भव हो, उसके लिये भी प्रयत्न करना चाहिये। यदि पूर्ण सत्यवादी, पूर्ण निष्पाप, पूर्ण सदाचारी न बन सके, तो हिम्मत हार बैठने की अपेक्षा यही अच्छा है कि जितनी भी, थोड़ी-बहुत सफलता प्राप्त की जा सके, उसके लिये प्रयत्न बराबर जारी रखा जाए।

शिल्प, संगीत, कला-कौशल, व्यायाम, भाषण, वक्तृता, अन्य भाषाओं का ज्ञान आदि जितने कुछ अंशों में प्राप्त हो सके, उसके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। 'पूरा या कुछ नहीं' की दुराग्रह भरी नीति के स्थान पर 'जितना मिले उसे लो और अधिक के लिये कोशिश करो' की नीति अपनाने की शिक्षा इस श्लोक में है। '**सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः**' का भावार्थ यही है।

१०-गच्छ शीघ्रमितो वीर सुग्रीवं तं महाबलम्।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाऽद्य राघव॥ - वा० रा० अरण्यकाण्ड ७२/१७

अर्थ- " हे राघव ! तुम यहाँ से शीघ्र महाबली सुग्रीव के पास जाओ और आज ही उसे अपना मित्र बनाओ ।"

बलवान् को अपना मित्र बनाने में देर न करने की शिक्षा यहाँ दी गयी है । लोक-व्यवहार के लिये बल का, बलवान् का सहारा एक बड़ी चीज है, उससे बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का हल होता है और उन्नति के अनेक द्वार खुल जाते हैं । संगति की महिमा प्रसिद्ध है, जो अपने से बलवान् है उसकी समीपता से (मैत्री से) अपनी बल-वृद्धि होना स्वाभाविक है । आध्यात्मिक क्षेत्र में भी यही बात है, जीवात्मा अपने से बलवान् दैवी शक्तियों से मैत्री स्थापित करके दैवी लाभों को प्राप्त करता है । जिसे जिस क्षेत्र में लाभान्वित होना हो, उसे उसी क्षेत्र में अपने से बलवान् शक्तियों के साथ शीघ्र ही मैत्री स्थापित करनी चाहिये ।

११- देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।
सुख-दुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ।। - वा० रा० किष्किन्धाकाण्ड २२/२०

अर्थ- "देश काल को समझो । प्रिय-अप्रिय को तथा सुख-दुःख को सहकर सुग्रीव के अधीन रहो ।"

मनुष्य जैसी स्थिति चाहता है, जैसी कामनायें और इच्छायें करता है, वैसी उसे प्राप्त हो जाएँ, यह आवश्यक नहीं । देश-काल की विचित्रता के कारण, प्रारब्ध के कारण कभी-कभी मनुष्य को ऐसी परिस्थितियों में रहना पड़ता है, जो असुविधाजनक एवं कष्टकारक होती हैं । ऐसी स्थिति को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए, उससे मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये । प्रिय-अप्रिय में, सुख-दुःख में मनुष्य को विचलित नहीं होना चाहिये , वरन् मन को एकरस कर अपनी मानसिक स्वस्थता का परिचय देना चाहिये ।

१२- वन्दितव्यास्ततः सिद्धास्तपसा वीतकल्मषाः ।
प्रष्टव्या चापि सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ।।- वा०रा० किष्किन्धाकाण्ड ४३/३२, ३३

"अर्थ- निष्पाप, सिद्ध, तपस्वियों को प्रणाम करना और उनसे विनयपूर्वक सीता का पता पूछना ।"

आत्म-ज्ञान की शिक्षा हर किसी से ग्रहण नहीं करनी चाहिये । गुरु चाहे जिसे नहीं बनाना चाहिये, वरन् पहले यह देख लेना चाहिये कि आत्म-ज्ञान का शिक्षक तीन गुणों से सम्पन्न है या नहीं ? (१) निष्पाप, (२) अनुभवी एवं सफलता प्राप्त, (३) तपस्वी । जिसमें यह तीन गुण हों, वे आध्यात्मिक शिक्षा देने के अधिकारी हो सकते हैं । पापात्मा, अनुभवहीन तथा भोग-परायण व्यक्ति चाहे कितने ही चतुर वक्ता एवं पण्डित क्यों न हों, उनके द्वारा शिक्षा ग्रहण करने में पथ-भ्रष्ट किये जाने का, ठगे जाने का खतरा रहता है ।

विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक प्राप्त होने पर, उन्हें प्रणाम करके विनयपूर्वक प्रश्न करना चाहिये । इस प्रकार उचित जिज्ञासा के साथ शिष्टाचार और शिष्य भाव से पूछे जाने पर अधिकारी गुरु उचित पथ-प्रदर्शन करते हैं । इस श्लोक में आत्म-ज्ञानी गुरु के लक्षण और शिष्य की पूछने की शैली का आधार बताया गया है ।

१३- स निर्जित्य पुरीं लंकां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् ।
विक्रमेण महातेजा हनूमान् कपिसत्तमः ।। - वा० रा० सुन्दरकाण्ड ४/१

अर्थ- "कपिश्रेष्ठ महातेजस्वी हनुमान् ने पराक्रम से कामरूपिणी लंका को जीता ।"

कामवासना रूपी लंका देखने में बड़ी लुभावनी स्वर्ण-कान्त, नयनाभिराम मालूम देती है । उसे जीतना कठिन प्रतीत होता है । इस कामवासनारूपी स्वर्ण लंका में असुर कुल आनन्दपूर्वक निवास करता है । सब असुर, आन्तरिक शत्रु, तब तक सुरक्षित हैं जब तक उनकी कामवासना रूपी लंका का दुर्ग सुरक्षित है । इस रहस्य को समझते हुए हनुमान् जी ने इस असुरपुरी को जीतना आवश्यक समझा और अपने पराक्रम से, ब्रह्मचर्य से, शील, सदाचार एवं संयम से उस कामवासना रूपी लंका को जीता । असुरता को परास्त करना है, तो कामवासना को जीतना आवश्यक है । यह विजय ब्रह्मचर्य द्वारा ही संभव है । हनुमान् जी की भाँति हम सबको वासना रूपिणी लंका जीतने का प्रयत्न करना चाहिये ।

१४- धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये वीरं रामं राजीवलोचनम् ।। - वा० रा० सुन्दरकाण्ड २६/३९

अर्थ- "देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा ऋषिगण धन्य हैं, जो मेरे राजीव-लोचन, वीर राम को देखते हैं ।"

वे लोग धन्य हैं, जो परमात्मा को देखते हैं, परमात्मा सबके निकट हैं, सबके भीतर हैं, चारों ओर हैं, उससे एक इञ्च भूमि भी खाली नहीं है, फिर भी मायाग्रस्त लोग उसे देख नहीं पाते, समझते हैं कि न जाने परमात्मा मुझसे कितनी दूर है, न जाने उसे प्राप्त करना, उसके दर्शन करना कितना कठिन है ? वे अपनी अन्धी आँखों से ईश्वर को नहीं देखते और बुराइयों में डूबे रहते हैं ।

जिनके दिव्य नेत्र खुल गये हैं, उनको अपने भीतर बाहर चारों ओर जर्रे-जर्रे में परमात्मा के दर्शन होते रहते हैं । इस दिव्य झाँकी से उनका अन्तःकरण तृप्त हो जाता है और सात्त्विक कर्म, स्वभावों की कस्तूरी जैसी महक उनके भीतर उठती रहती है । दिव्यदर्शी व्यक्तियों को देव, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि की पदवी देते हुए इस श्लोक में उनकी सराहना की है और उन्हें धन्य कहा है ।

१५- मंगलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥ - वा० रा० सुन्दरकाण्ड ५३/२६,२७

अर्थ- "वे उस समय कपि का मंगल करती थीं, इसलिये विशालाक्षी सीता ने अग्नि की स्तुति की ।"

मंगलकामना के लिये अग्निपूजा की वैदिक रीति प्रसिद्ध है । अग्निहोत्र, होम, यज्ञ के साथ जो शुभ कर्म किये जाते हैं, वे सदा सत्परिणाम उपस्थित करते हैं । यज्ञों की महिमा असाधारण है । उनके द्वारा रोगमुक्ति, वर्षा, पुत्र-प्राप्ति तथा विविध कामनाओं की पूर्ति से लेकर आत्मशुद्धि तक होती है । दूसरों के मंगल-अमंगल का विधान भी अग्नि-पूजा द्वारा होना शक्य है ।

अग्नि जीवन-शक्ति को भी कहते हैं । जीवन-शक्ति की वृद्धि से मंगल का होना तो प्रत्यक्ष ही है । जिसमें पर्याप्त मात्रा में उष्णता है, तेजस्विता है उसका हर प्रकार से मंगल ही होगा । क्रियाशक्ति की मात्रा में वृद्धि होने से उनके कार्य सहज ही सफल और सुलभ हो जाते हैं ।

१६- हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं व्यतीतकालायतिसंप्रतिक्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः प्रसंगवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥- वा० रा० युद्धकाण्ड १०/२७

अर्थ- "तीनों कालों में हितकारी, सप्रमाण, कोमल और अर्थयुक्त विभीषण के वचन सुनकर रावण को बड़ा क्रोध आया और उसने कहा ।"

इन व्यक्तियों को इस बात से प्रयोजन नहीं रहता कि क्या उचित है, क्या अनुचित ? क्या कल्याणकर है, क्या अकल्याणकर ? उन्हें तो अपना अहंकार, अपना स्वार्थ सर्वोपरि प्रतीत होता है । उनकी जो अपनी सनक होती है, उसके अतिरिक्त और किसी बात को वे सुनना नहीं चाहते । रावण पर विभीषण के हितकारी, सप्रमाण, कोमल और अर्थयुक्त वचनों का भी कुछ अच्छा प्रभाव नहीं हुआ, वरन् उलटा कुपित होकर प्रत्युत्तर देने लगा ।

"अन्धे के आगे रोवे अपने नयना खोवे" की लोकोक्ति को इस श्लोक में नीति वचन के रूप में समझाया है । जो लोग मदोन्मत्त हो रहे हैं, वे दूसरों की उचित बात को भी नहीं समझते । उनको समझाने का रास्ता दूसरा है ।

१७- धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः संप्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लंकैश्वर्यमिदं श्रीमान्ध्रुवं प्राप्नोत्यकंटकम् ॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ४१/६८

अर्थ- "राक्षस-श्रेष्ठ, धर्मात्मा विभीषण आ रहे हैं, वे ही लंका के शत्रुहीन राज्य का उपयोग करेंगे ।"

शासक चाहे परिवार का हो, वैभवयुक्त हो, राज्य का हो, आमतौर से उसके विरोधी बहुत रहते हैं । परन्तु वे लोग इसके अपवाद रहते हैं, जो धर्मात्मा हैं, जिनका दृष्टिकोण निष्पक्ष है, जो न्याय को, उदारता को सर्वोपरि स्थान देते हैं, ऐसे मनुष्य उत्तरदायित्व, नेतृत्व, शासन और न्याय की बागडोर अपने हाथ में रखते हुए भी किसी के शत्रु नहीं बनते । विभीषण की भाँति न्यायपूर्ण दृष्टि रखकर हम सर्वप्रिय रह सकते हैं और उनके हृदयों पर शासन कर सकते हैं ।

१८- यो वज्रपाताशनिसंनिपातान्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ५९/१३९

अर्थ- "जो रावण वज्रपात तथा अग्नि के प्रहार से विचलित नहीं हुआ था, वह राम के बाणों से आहत होकर बहुत दु:खी हुआ और उसने बाण चलाये।"

जो लोग बड़े साहसी, लड़ाकू और योद्धा होते हैं, सांसारिक कठिनाइयों की कुछ परवाह नहीं करते। कठिन प्रहार सहन करके भी अपना पराक्रम प्रदर्शित करते हैं। उन वीर प्रकृति के लोगों को भी राम के बाणों से, अन्तरात्मा के शाप से व्यथित होना पड़ता है। कुचली हुई आत्मा जब क्रन्दन करती है, जीवन धन को बुरी तरह बर्बाद करने के लिये कुबुद्धि को शाप देती है, तो अन्तस्तल में हाहाकार मच जाता है। उस आत्म- प्रताड़ना से बड़े-बड़े पाषाण हृदय भी विचलित हो जाते हैं।

अपने बाहुबल से लोग कमजोरों को सताते हैं और उनको लूट कर, परास्त कर अपनी विजयश्री पर अभिमान करते हैं, छोटे-मोटे पराक्रमों पर उन्हें बड़ा ही अभिमान रहता है। पर जब पाप के दण्ड स्वरूप कोई दैवी प्रहार उन पर होता है, तो उनके होश गुम हो जाते हैं। अहंकारियों को याद रखना चाहिये कि उनसे भी बलवान् कोई सत्ता मौजूद है और उसके एक प्रहार में सारी अकड़ ढीली हो सकती है। कमजोर को सताया जा सकता है, पर कमजोर की हाय का मुकाबला करना कठिन है, वह बड़े-बड़ों की ऐंठ को सीधा कर देती है। इसलिये हमें ईश्वरीय कोप का और दैवी दण्ड का ध्यान रखते हुए, अपने आचरण को ठीक रखना चाहिये।

१९-यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम्॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ७२/११

अर्थ- "जिसके पराक्रम से राक्षसों की मृत्यु हुई, उस अनामय वीर राम को धन्य है।"

उस वीर पुरुष का पराक्रम धन्य है, जो स्वयं निष्पाप रहता है और कषाय-कल्मषों को मार भगाता है। स्वार्थ के लिये बहुत लोग पराक्रम दिखाते हैं, पराक्रम करने के लोभ से अहंकारग्रस्त हो जाते हैं। ऐसा तो साधारण व्यक्तियों में भी देखा जाता है, पर धन्य वे हैं, जो अपने पराक्रम का उपयोग केवल असुरत्व विनाश के लिये करते हैं और उस पराक्रम का तनिक भी दुरुपयोग न करके अपने को जरा भी पाप-पंक में गिरने नहीं देते। पराक्रम और वीरता की यही श्रेष्ठता है।

२०- न ते ददृशिरे रामं दहन्तमपिवाहिनीम्।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ९३/२६

अर्थ- "महात्मा राम ने दिव्य गन्धर्वास्त्र के द्वारा राक्षसों को मोहित कर दिया था, इसी से वे सेना को नष्ट करने वाले राम को नहीं देख सकते थे।"

अज्ञानियों की बुद्धि ऐसी भ्रम विमोहिता होती है कि उन्हें यह सूझ नहीं पड़ता कि उनकी सेना का संहार कौन कर रहा है ? उन्हें कष्ट कौन दे रहा है ? उन्हें इसका कारण ज्ञात ही नहीं होता। समझते हैं कि हमारे शत्रु हमें हानि पहुँचा रहे हैं, पर असल बात यह है कि अपनी असत् प्रणाली ही फलित होकर विपत्ति का कारण बन जाती है। ईश्वरीय प्रक्रिया के द्वारा वे पाप ही कष्ट बन जाते हैं। अज्ञानी लोग कष्टों का कारण सांसारिक परिस्थितियों को समझते हैं, पर वस्तुतः स्थिति यह है कि उनका पाप ही उनका सबसे बड़ा शत्रु होता है। अदृश्य ईश्वर उन पापों को ही गन्धर्व बाण की तरह उन पर फेंकता है और उससे वे आहत होते हैं।

२१-प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली।
बद्धांजलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ११६/२४

अर्थ- "देवता और ब्राह्मणों को प्रणाम करके सीता ने हाथ जोड़ कर अग्नि के समीप जाकर कहा।"

सच्ची आत्मायें किसी बात को प्रकट करने से पूर्व देव और ब्राह्मणों का श्रद्धापूर्वक ध्यान रखती हैं, अर्थात् वे यह सोचती हैं कि इस कथन के सम्बन्ध में श्रेष्ठ लोग क्या कहेंगे ? चाहे दुनिया भर के मूर्ख लोग किसी बात

को पसन्द करें, पर यदि थोड़े से देव और ब्राह्मण अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष उसे त्याज्य ठहराते हैं, तो वह कार्य सच्ची आत्माओं के लिये त्याज्य ही होगा।

दूसरे सतोगुणी अन्तःकरण वाले व्यक्ति चाहे वैभव में कितने ही बड़े क्यों न हो जायें, ब्रह्म-कर्मा उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों के लिये वे सदा ही झुकते हैं।

सीता ने अग्नि के समीप जाकर कहा। हमें जो कुछ कहना हो, तो अन्तःकरण में निवास करने वाली ज्योति के समक्ष उपस्थित होकर कहना चाहिये। छल, कपट, असत्य की वाणी उन्हीं के मुख से निकलती है, जो ईश्वर से दूर रहते हैं। अग्नि के समीप जाकर, अन्तःज्योति के समक्ष उपस्थित होकर यदि हम अपना मुख खोलें, वाणी से उच्चारण करें, तो सदा सत्य ही मुख से निकलेगा।

२२- चालनात्पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम्॥ - वा० रा० उत्तरकाण्ड १६/२६

"अर्थ- पर्वत के काँपने से शिवगण भी काँप गये और पार्वती भी महादेव से लिपट गयीं।"

आधार के विचलित हो जाने से ऊपर स्थित अन्य सब वस्तुयें भी विचलित हो जाती हैं। चाहे वे कितनी ही बड़ी क्यों न हों। भूकम्प आता है, तो पृथ्वी पर रखी हुई सब वस्तुयें डाँवाडोल हो जाती हैं।

मनुष्य अपने दृष्टिकोण को जैसा निर्धारित कर लेता है उसी के अनुसार उसे संसार की वस्तुयें, क्रियायें, घटनायें तथा परिस्थितियाँ भली या बुरी लगती हैं, पर यदि पूर्व दृष्टिकोण बदल जाए और उसके स्थान पर नये प्रकार से सोचने की प्रणाली प्राप्त हो जाए, तो पहली रुचि बदल जाने के कारण सब कुछ बदला मालूम देता है। आज कोई व्यक्ति एक दृष्टि को अपनाने के कारण घोर लोभी और कंजूस है, यदि उसे कल ही कोई नयी दृष्टि मिल जाए, तो वह उच्चकोटि का त्यागी हो सकता है। इसी प्रकार उल्टा परिवर्तन हो जाए--- तो त्यागी से लोभी भी बना जा सकता है। तात्पर्य यह है कि जीवन-परिवर्तन का मुख्य कारण वह आधार है, जिस पर खड़े होकर मनुष्य सोचता-विचारता है और अपने स्वार्थ का निर्णय करता है।

संसार में जितने भी व्यक्तिगत या सामूहिक परिवर्तन होते हैं, उनका मूल कारण दृष्टिकोण का, आधार का परिवर्तन है। हम अपने को, अपने समाज को, जिस दिशा में परिवर्तित करना चाहते हैं, वैसा ही उसकी दृष्टि का, उसकी विचार-प्रणाली का, आधारशिला का परिवर्तन करना अनिवार्य है। पर्वत काँपने से शिव-पार्वती काँपे थे, अन्तः दृष्टि के काँपने से बाह्य जीवन का सारा महल काँप जाता है।

२३- दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम्।
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर॥ - वा० रा० उत्तरकाण्ड ३४/४१

अर्थ- "वानरराज ! स्त्री, पुत्र, नगर, राष्ट्र, भोग, वस्त्र, भोजन यह हमारी अविभक्त सम्पत्ति होगी।"

सम्पत्ति को, राष्ट्र को, समाज को, खाद्य-सामग्री को अविभक्त बताकर इस श्लोक में वर्तमान समाजवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। ईश्वर प्रदत्त जितनी भी सामग्री इस संसार में है, उस पर मानव प्राणियों का समान रूप से अधिकार है। आवश्यकतानुकूल सभी को इन वस्तुओं के उपभोग का अधिकार होना चाहिये। इन्हीं सिद्धान्तों पर समाजवाद की सारी आधारशिला खड़ी की गयी है। सम्पत्ति को बाँटकर अपने व्यक्तिगत कब्जे में कर लेने का इस श्लोक में विरोध है और समाज तथा व्यक्ति दोनों के सम्मिलित होने का समर्थन है। यह श्लोक समाजवाद के सिद्धान्त का सूत्ररूप है।

२४-यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत्।
तामेव रात्रिं सीतापि प्रासूत दारकद्वयम्॥ - वा० रा० उत्तरकाण्ड ६६/१

अर्थ- "जिस रात्रि में शत्रुघ्न वाल्मीकि आश्रम की पर्णशाला में गये, उसी रात्रि में सीता ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया।"

जिस दिन शत्रु का नाश करने वाला प्रेम-लोभ के महलों को छोड़कर ऋषि भावना की प्रतीक त्यागरूपी पर्णशाला में पहुँचता है, उसी में आत्मा रूपी सीता, दो पुत्र उत्पन्न करती है । (१) लव अर्थात् ज्ञान, (२) कुश अर्थात् कर्म ।

निःस्वार्थ- निर्मल प्रेम जब संसार भर में शत्रुता का भाव हटा देता है, सबको अपना समझकर सबके लिये सद्‌भाव धारण कर लेता है, तो उसका स्वाभाविक फलितार्थ यह होता है कि वह व्यक्ति भोग और संग्रह की वासनायें त्याग कर संयम और त्याग की नीति अपना लेता है । यही शत्रुघ्न का वाल्मीकि जी की पर्णशाला में पहुँचना है ।

ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर आत्मा में सद्ज्ञान का प्रकाश होता है और वह सत्कार्य में प्रवृत्त रहती है । यही सीता का दो पुत्र प्रसव करना है । यही आत्मोन्नति की दो परम सिद्धावस्थाएँ हैं ।

गायत्री रामायण के पिछले २४ श्लोकों में धर्म, नीति, समाज , स्वास्थ्य, अध्यात्म आदि के रहस्यों का उद्‌घाटन किया गया है, रास्ता दिखाया गया है । इस अन्तिम श्लोक में यह बता दिया गया है कि उन पर आचरण करने से अन्तिम स्थिति में क्या परिणाम उपस्थित होता है ? अन्त में सीता के दो पुत्र उत्पन्न होते हैं, आत्मा की गोदी, सद्ज्ञान और सत्कर्म रूपी दो पुत्रों से भर जाती है । इन पुत्रों को पाकर सीता सब कष्टों को भूल गयी थी । आत्मा तपश्चर्या के सारे काय-क्लेशों को विस्मरण करके इन दो दिव्य-पुत्रों के आनन्द से आच्छादित हो जाती है, फिर उन पुत्रों के आनन्द का ठिकाना नहीं रहता । सद्ज्ञान और सत्कर्म जिसे प्राप्त होते हैं उसके दोनों हाथों में लड्डू हैं । उसके आनन्द की सीमा कौन निर्धारित कर सकता है । यह परमानन्द ही गायत्री की सिद्धि है ।

इन २४ श्लोकों में महर्षि वाल्मीकि ने अपने अनुभव और ज्ञान का निचोड़ भर दिया है । उपर्युक्त पंक्तियों में उस रहस्य की ओर अंगुलि-निर्देश मात्र हुआ है । विज्ञ विचारक इन २४ सूत्रों में छिपे रहस्यों पर स्वतंत्र चिन्तन करेंगे, तो उन्हें बड़े-बड़े अद्‌भुत ज्ञान-रत्न इनमें छिपे हुए मिलेंगे ।

गायत्री हृदयम्

इस 'गायत्री हृदय' को कई ग्रन्थों में गायत्री उपनिषद् भी बताया गया है । उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान की - तत्त्वज्ञान की चर्चा होती है । आत्म-विवेचना और आत्म-तत्त्व की प्राप्ति का उसमें विवेचन किया जाता है । इसमें भी वे ही सब विषय हैं, इसलिये इसको उपनिषद् ठीक ही कहा गया है ।

परन्तु 'गोपथ-ब्राह्मण' की कुछ कण्डिकाओं को लेकर भी एक उपनिषद् प्रचलित है । इस प्रकार एक ही नाम की दो पुस्तकें हो जाने से भ्रम में पड़ने की बहुत सम्भावना थी । इस असुविधा को ध्यान में रखते हुए इस उपनिषद् को कई प्राचीन ग्रन्थों ने 'गायत्री-हृदयम्' नाम दिया है ।

हमने भी इसका अनुसरण किया है । इसे हम, 'गायत्री-हृदयम्' और गोपथ ब्राह्मण में वर्णित कण्डिकाओं का 'गायत्री-उपनिषद्' नाम से उल्लेख करेंगे । फिर भी यह 'गायत्री-हृदयम्' उपनिषद् ही है । इसमें बड़े महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की चर्चा की गयी है-

ॐ नमस्कृत्य भगवान् याज्ञवल्क्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति। त्वं नो ब्रूहि ब्रह्मन् गायत्र्युत्पत्तिं-तुरीयां श्रोतुमिच्छामि। ब्रह्मज्ञानोत्पत्तिं प्रकृतिं परिपृच्छामि ॥१ ॥

याज्ञवल्क्यजी ब्रह्माजी से पूछते हैं कि गायत्री की उत्पत्ति कैसे हुई यह सुनाइये ? यह सुनने की इच्छा उन्हें इसलिये हुई कि उस उत्पत्ति विज्ञान को जान लेने से ब्रह्म-ज्ञान की भी उत्पत्ति होती है । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह हुआ कि गायत्री की उत्पत्ति का जो कारण है, वही कारण ब्रह्म-ज्ञान की उत्पत्ति का है । एक ही वस्तु के यह दो नाम हैं । इन दोनों में से एक को जान लेने से दूसरे की जानकारी स्वयमेव हो जाती है ।

श्री भगवानुवाच -

प्रणवेन व्याहृतयः प्रवर्तन्ते तमसस्तु परं ज्योतिः । कः पुरुषः ? स्वयम्भूर्विष्णुरिति। अथ ताःस्वांगुल्या मथ्नाति । मथ्यमानात् फेनो भवति। फेनाद् बुद्‌बुदो भवति। बुद्‌बुदादण्डं भवति। अण्डात् आत्मा भवति। आत्मन आकाशो भवति। आकाशाद्वायुर्भवति। वायोरग्निर्भवति।

अग्नेरोङ्कारो भवति। ओंकाराद् व्याहृतिर्भवति। व्याहृत्या गायत्री भवति। गायत्र्याः सावित्री भवति। सावित्र्याः सरस्वती भवति। सरस्वत्या वेदाः भवन्ति। वेदेभ्यो ब्रह्मा भवति। ब्रह्मणो लोका भवन्ति। तस्माल्लोकाः प्रवर्तन्ते। चत्वारो वेदाः सांगाः सोपनिषदः सेतिहासास्ते सर्वे गायत्र्याः प्रवर्तन्ते। यथाग्निर्देवानां, ब्राह्मणो मनुष्याणां, मेरुः शिखरिणां, गंगा नदीनां, वसन्त ऋतूणां, ब्रह्मा प्रजापतीनां, एवमसौ मुख्यः। गायत्र्या गायत्रीछन्दो भवति॥२॥

भगवान् बताते हैं कि ॐकार और भूर्भुवः स्वः के साथ उस परम ज्योति का सम्बन्ध है, जो प्रकृति के सत् और रजोगुण का स्पर्श तो करती है, परन्तु तमोगुण से सर्वथा दूर है। प्रथम सतोगुण है, उसकी उपासना करने वालों में सतोगुणी प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं, साथ ही रजोगुणी वैभव भी मिलते हैं। जिनके हृदय में आत्म-ज्ञान, संयम, आदर्श, धर्म, सुकर्म, सेवा, उदारता, प्रेम एवं आत्मीयता के सात्त्विक भाव प्रस्तुत होते हैं, उनके बाह्य जीवन में यज्ञ, ऐश्वर्य, सुख, वैभव, प्रतिष्ठा, स्वस्थता आदि राजस समृद्धियों का होना स्वाभाविक है। प्रणव और व्याहृतियों का जोड़ा ऐसा ही है, जैसा आत्म-ज्ञान और सुख-शान्ति का जोड़ा। जहाँ यह दो बातें हैं, वहाँ दुःख, दारिद्र्य, क्लेश, असन्तोष, दीनता, क्रूरता, पाप, पतन का तम नहीं ठहर सकता। जहाँ प्रकाश की परम ज्योति मौजूद है, वहाँ बेचारा तम-अन्धकार अपना किस प्रकार अस्तित्व रख सकेगा ?

जिस ज्योतिर्मय पुरुष का-अखण्ड-ज्योति का ऊपर वर्णन है, वह कौन है ? वह अजन्मा परमात्मा है। परमात्मा प्रकाश स्वरूप है, जहाँ परमात्मा का निवास होगा वहाँ अज्ञान का, पाप का अन्धकार रह नहीं सकता। परमात्मा के भक्त का अन्तःकरण सदा ज्ञान-ज्योति से प्रकाशवान् रहता है।

सृष्टि का निर्माण किस प्रकार हुआ ? अब इस प्रश्न पर विचार किया जाता है। उस ज्योति पुरुष परमात्मा ने सबसे प्रथम जल की रचना की। उस जल का उँगलियों से मन्थन किया, जिससे फेन उत्पन्न हुआ, फेन से बबूले हुए, बबूलों से अण्ड, अण्ड से आत्मा, आत्मा से आकाश और आकाश से वायु उत्पन्न हुई। वायु के चलने से परमाणुओं में संघर्ष हुआ, जिसकी गर्मी से अग्नि पैदा हुई। अग्नि से ओंकार अर्थात् शब्द उत्पन्न हुआ। शब्द को आकाश भी कह सकते हैं। इस प्रकार ईश्वर की इच्छा से एक-एक करके पाँचों तत्त्व बने। जिस प्रकार स्थूल सृष्टि के पाँच तत्त्व हुए, उसी प्रकार सूक्ष्म चैतन्य के भी पाँच कोष बने।

जल कहते हैं रस को। रस का गुण है स्वाद, अनुभूति। सबसे पहले प्राणी का वह भाग बढ़ा, जिससे वह रसास्वादन करता है, जिससे अनुभूति होती है, रस आता है। यदि विविध प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म प्रकार के स्वादों का अनुभव करने की शक्ति न होती, तो उसकी चैतन्यता का विकास होना असम्भव था। सबसे प्रथम प्राणी-जल-परिधान- इस आवरण का बनाया गया, इसे ही आनन्दमय कोष कहते हैं।

इसका मन्थन किया गया। मन्थन से फेन उत्पन्न हुआ। फेन से बुद्‌बुदे पैदा हुए और बुद्‌बुदों से पार्थिव परमाणु बने अर्थात् इसकी अनुभूति से अपनी अभीष्ट वस्तु की खोज की, मन्थन हुआ, प्राप्त पदार्थ की इच्छा हुई, यह फेन कहलाया। इच्छा ने पदार्थों की कल्पना की, जिन्हें बुद्‌बुदा कहा गया। इस खोज और कल्पना के साथ जिस पार्थिव आवरण की रचना हुई, उसे चैतन्य सृष्टि में विज्ञानमय कोष कहा जाता है।

आकाश से वायु हुई। वायु का अर्थ है- गति। विज्ञानमय कोष की सूक्ष्मता को अधिक स्थूल और सफल बनाने के लिये गति की आवश्यकता होती है, यह गतिमय है। परमाणु से वायु बनी। विज्ञानमय कोष से मनोमय कोष बना।

वायु के संघर्ष से अग्नि उत्पन्न हुई, मन की घुड़दौड़ मची। सूक्ष्म को स्थूल में लाने के लिये, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष में अनुभव करने के लिये ऐसी साधन सामग्रियों की, इन्द्रियों की आवश्यकता हुई, जिनके द्वारा प्रकृति के स्थूल परमाणुओं के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। इस आवश्यकता ने आविष्कार उत्पन्न कर दिया। एक उष्णता गुण वाला विकासोन्मुख क्रियाशील शरीर पैदा हुआ, जिसे सूक्ष्म शरीर या प्राणमय कोष कहते हैं। मन, बुद्धि, अहंकार के साथ-साथ दसों इन्द्रियाँ इस अग्नि गुण वाले प्राणमय कोष में विनिर्मित हुईं।

अग्नि से ओंकार 'शब्द' आकाश हुआ। यह ईश्वर का प्रत्यक्ष निवास स्थान ब्रह्माण्ड का बीज रूप पिण्ड

कहलाया। इसे ही स्थूल शरीर कहते हैं। यह अन्नमय कोष ध्यानावस्थित अवस्था में प्रकृति के अन्तराल में प्रतिक्षण होने वाले 'ॐ' ध्वनि के शब्द गुञ्जन को सुनता है, 'ॐ' इस पर प्रकट होता है। इसलिये इस शरीर को अन्नमय कोष (ओंकार) भी कहा है।

पञ्च-तत्त्व पञ्च-कोष बन जाने पर उसकी मर्यादा नियत की गयी। यह पञ्च-तत्त्व कहाँ तक काम करेंगे, यह पञ्च-कोष वाला शरीर, कितने क्षेत्र में अपनी गति-विधि जारी रखेगा, इस सीमा का निर्धारण भू: लोक, भुव: लोक, स्व: लोक है। शरीर भू: लोक है, मस्तिष्क भुव: लोक है, अन्त:करण स्व: लोक है। आकाश, पाताल और पृथ्वी यह तीन स्थूल लोक कहे जाते हैं। साथ ही चैतन्य प्राणी के लिये तीन व्याहृतियाँ उन अपनत्व में भी निवास करती हैं। शरीर, मस्तिष्क और अन्त:करण व्याहृतिमय हैं।

व्याहृति से गायत्री उत्पन्न हुई। तीन लोकों में काम करने वाली त्रिविध शक्तियाँ उत्पन्न हुई। गायत्री कारण शक्ति, सावित्री सूक्ष्म शक्ति, सरस्वती स्थूल शक्ति। यह एक ही ईश्वरीय शक्ति जब भिन्न-भिन्न स्थितियों में होती है, तब भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाती है। ज्ञान की स्थूल शक्ति का नाम वेद है। यह वेद-शक्ति ब्रह्मा के रूप में अवतीर्ण हुई। ब्रह्मा ने उस शक्ति को व्यवस्थित रूप देकर सर्वसाधारण के लिए उपयोगी, सुसम्पादित बनाकर चार भागों में विभक्त कर दिया।

उस ब्रह्मा ने वेदों के साथ लोक भी बनाये अर्थात् लोकों को वेद ज्ञान से सुसज्जित कर दिया। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चतुष्टय को भी ज्ञानमय बताया है। वेद के तथ्य का विस्तार उपनिषदों और इतिहास में भी है। यह सब भी गायत्रीमय है।

प्रत्येक जाति में, श्रेणी में जो विशेषता होती है, वह प्रशंसनीय होती है। उसी का वैभव होता है, उसी की महत्ता से उस वर्ग का गौरव होता है। देवताओं में अग्नि, मनुष्यों में ब्राह्मण, पर्वतों में सुमेरु, नदियों में गंगा, ऋतुओं में वसन्त, प्रजापतियों में ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं, विशेष हैं, असाधरण हैं, महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण छन्दों में, सम्पूर्ण ज्ञानों में, सम्पूर्ण शक्तियों में गायत्री श्रेष्ठ है- विशेष है।

किं भू: ? किं भुव: ? किं स्व: ? किं मह: ? किं जन: ? किं तप: ? किं सत्यं ? किं तत् ? किं सवितु: ? किं वरेण्यं ? किं भर्ग: ? किं देवस्य ? किं धीमहि ? किं धिय: ? किं य: ? किं न: ? किं प्रचोदयात् ?३ ॥

भूरिति भूर्लोको, भुव इत्यन्तरिक्षलोक:, स्वरिति स्वर्लोको, महरिति महर्लोको, जन इति जनो लोक:, तप इति तपो लोक: , सत्यमिति सत्यलोक:, भूर्भुव: स्वरिति त्रैलोक्यम् तदिति तेजो यत्तेजसोऽग्निर्देवता सवितुरित्यादित्यस्य वरेण्यमित्यन्नम् अन्नमेव प्रजापति: । भर्ग इत्याप:, आपो वै भर्ग: । यदापस्तत् सर्वा देवता: । देवस्य सवितुर्देवो वा य: पुरुष: स विष्णु: । धीमहीत्यैश्वर्यं, यदैश्वर्यं स प्राण इत्यध्यात्मं, तदध्यात्मम् । तत् परमं पदं, तन्महेश्वर:, धिय इति महीति । पृथिवी मही । यो न: प्रचोदयादिति काम: । काम इमान् लोकान् प्रच्यावयते । यो नृशंस: । योऽनृशंसोऽस्या: स परो धर्म इत्येषा वै गायत्री ॥४॥

गायत्री का प्रत्येक शब्द क्या है? इसे भलीभाँति समझने की आवश्यकता है। एक सपाटे में सबका विहंगावलोकन कर जाने से काम न चलेगा वरन् एक-एक शब्द पर गम्भीर दृष्टि डालकर उसके गर्भ में छिपे हुए अर्थ, रहस्य और सन्देश पर विचार करना होगा। यह बताने के लिये उपर्युक्त पंक्तियों में हर शब्द के लिये अलग-अलग प्रश्न करके यह प्रयत्न किया गया है कि हर पद के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार किया जाये।

गायत्री की सात व्याहृतियों को और उसके अन्य शब्दों को स्पष्ट किया गया है। उनका क्या तात्पर्य है ? यह इस प्रकार समझना चाहिये। भू:- पृथ्वी लोक। भुव:- आकाश लोक। स्व:- स्वर्ग लोक। मह:- महलोक। जन:- जन लोक। तप:- तप लोक। सत्यं- सत्य लोक। तत्- अर्थात् तेज, तेज का तात्पर्य है अग्नि। सविता- अर्थात् सूर्य। वरेण्यं- अर्थात् अन्न, अन्न का तात्पर्य है- प्रजापालिनी शक्ति। भर्ग- अर्थात् आप:, आप: का तात्पर्य

है देव- शक्तियों का समूह । देवस्य- अर्थात् सविता देव, सविता देव पुरुष । इसका तात्पर्य है- विष्णु । धीमहि- अर्थात् ऐश्वर्य का ध्यान करते हैं । ऐश्वर्य का अर्थ है, प्राण, अध्यात्म, परम पद, महेश्वर । योनः प्रचोदयात्- अर्थात् काम, काम वह जिसके कारण लोक का संचालन होता है ।असत् अर्थात् बुरे कर्मों का संहार करने वाली कामना । नृशंस अर्थात् गर्हित है । जो कामनायें सत्कर्मों की प्रेरणा करती हैं, वह अनृशंस अर्थात् ग्राह्य हैं । इस प्रणाली का परिचालन करना गायत्री का विशेष धर्म है, यह गायत्री का स्वरूप है ।

भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः , सत्यम्- यह सात लोक हैं । सातों लोकों को बार-बार स्मरण करना इसलिये आवश्यक है कि मनुष्य अपनी समस्याओं, कठिनाइयों, स्वार्थों और लाभों की ओर देखते रहने की संकुचितता से ऊँचा उठकर विश्व ब्रह्माण्ड की ओर देखे, उसकी समस्याओं को अपनी समस्या समझते हुए, विश्व-मानव का एक घटक अपने को समझते हुए सोचे और उसी दृष्टि से काम करे ।

तत्, सविता, वरेण्यं, भर्ग, देव- इन पाँच शब्दों द्वारा तेज, उष्णता, अन्न, दिव्यता और परमात्मा- इन पाँच महान् आवश्यकताओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया है । यह पाँचों पदार्थ जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, इन्हें अधिकाधिक मात्रा में संचित करना आवश्यक है । तेजस्विता, प्रतिभा, शालीनता, पुरुषार्थ, पराक्रम-यह तत् शब्द के अंतर्गत हैं । उष्णता, स्फूर्ति, पाचन-शक्ति, नीरोगिता, सुदृढ़ता- यह सब सविता से सम्बन्धित हैं । अन्न, वस्त्र, दुधारू पशु, गृहिणी, सन्तति एवं अन्य समस्त जीवनोपयोगी वस्तुयें वरेण्यं शब्द के अंतर्गत हैं । दिव्यता अनेक सद्गुण, योग्यतायें, शक्तियाँ, सामर्थ्य भर्ग शब्द से सम्बन्धित हैं । गायत्री को पहचानने वाला इन पाँचों की आवश्यकता का अनुभव करता है और अपने पुरुषार्थ एवं दैवी सहायता से उन्हें प्राप्त करता है ।

'धीमहि' कहते हैं- ध्यान को । किसका ध्यान ? उस मंगलमय परमात्मा का ध्यान, जिसको हृदय में धारण कर लेने से- उसके नियमों पर चलने से सब प्रकार की सुख-शान्ति मिलती है । ऐश्वर्य, प्राण-शक्ति, आत्म-दर्शन तथा परम पद की प्राप्ति होती है । ईश्वर की यह धारणा ऐसी निश्चित होनी चाहिये जैसे कि पृथ्वी की धारणा होती है ।

'योनः प्रचोदयात्' में कामनाओं की ओर संकेत किया गया है । मनुष्य कामनाओं से बना हुआ है, बिना कामना के वह रह नहीं सकता । काम उसका स्वभाव है, क्योंकि कामना के कारण-इच्छा के कारण यह संसार चल रहा है, पर हमारी कामना नृशंस नहीं होनी चाहिये । स्वार्थ, लोलुपता, निर्दयता, भोग आदि की नृशंसता से बचते हुए ऐसे काम का सेवन करें, ऐसी कामनायें करें जो धर्ममूलक हों, सबके लिये श्रेयस्कर हों, यही गायत्री का स्वरूप है । इस लक्षण को स्थित करना, इस मार्ग पर चलना यही गायत्री की असाधारण उपासना है ।

किं गोत्रा ? कत्यक्षरा ? कति पादा ? कति कुक्षिः ? कति शीर्षा ?५ ।।

सांख्यायनगोत्रा, चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री, त्रिपदा, षट्कुक्षिः, पञ्च शीर्षा ।।६ ।।

केऽस्यास्त्रयः पादा भवन्ति ? का अस्या षट् कुक्षयः ? कानि च पञ्च शीर्षाणि ।।७ ।।

ऋग्वेदोऽस्याः प्रथमः पादो भवति, यजुर्वेदो द्वितीयः, सामवेदस्तृतीयः । पूर्वा दिक् प्रथमा कुक्षिर्भवति । दक्षिणा द्वितीया, पश्चिमा तृतीया, उत्तरा चतुर्थी, ऊर्ध्वा पञ्चमी, अधोऽस्याः षष्ठी । व्याकरणमस्याः प्रथमं शीर्षं भवति, शिक्षा द्वितीयं, कल्पस्तृतीयं, निरुक्तं चतुर्थं, ज्योतिषामयनमिति पञ्चमम् ।।८ ।।

किं लक्षणम् ? किं विचेष्टितं ? किमुदाहृतम् ? ।।९ ।।

लक्षणं मीमांसा, अथर्ववेदो विचेष्टितं, छन्दो विचितिरुदाहृतम् ।।१० ।।

को वर्णः ? कः स्वरः ? श्वेतो वर्णः षट् स्वराः ।।११ ।।

अब प्रश्न यह उठता है कि गायत्री का गोत्र क्या होता है ? कितने अक्षर हैं ? कितने पाद हैं ? कितने कुक्षि हैं ? कितने शीर्ष हैं ? इनका उत्तर यह है कि गायत्री का सांख्यायन गोत्र है । आत्म-कल्याण के दो मार्ग हैं- एक योग, दूसरा सांख्य । गीता में इन दोनों को एक बताया है- **"सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः"** ।

योग कहते हैं अनासक्ति को, संसार के पदार्थों को त्याग कर- उनसे विमुख होकर आत्मा को प्राप्त करना यह योग मार्ग है। दूसरा मार्ग है, संसार के पदार्थों को उत्साहपूर्वक एकत्रित करना और उदारतापूर्वक उनका सन्मार्ग में व्यय करना। यह दूसरा मार्ग ही सांख्य मार्ग है। गायत्री को सांख्यायन अर्थात् सांख्य का घर कहा है। वह सांख्य, प्रधानता के साथ जीवन व्यतीत करने का संकेत करती है। यही गायत्री का गोत्र है।

गायत्री में चौबीस अक्षर हैं, तीन पाद हैं, छः कुक्षि हैं, पाँच शीर्ष हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यह तीन पाद क्या हैं ? छः कुक्षियाँ क्या हैं ? पाँच शीर्ष क्या हैं ? बताते हैं कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद- यह तीन वेद उसके पाद हैं। इनके ऊपर गायत्री खड़ी होती है। ये वेद उसकी आधारशिला हैं, चौथा अथर्ववेद तो इस वेदत्रयी की व्याख्या मात्र है। छः कुक्षियाँ छः दिशायें हैं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधः- इन छहों दिशाओं में अर्थात् सर्वत्र गायत्री- शक्ति व्याप्त है। वेद के षट् अंगों को शीर्ष कहा गया है। गायत्री का शरीर छन्द है, शेष पाँच वेदांग उसके शीर्ष हैं। गायत्री छन्द के अन्य पाँच वेदांग- व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष् सिर हैं- मस्तिष्क हैं। इन वेदांगों के अन्तर्गत जो महान् भावनायें सन्निहित हैं, उन्हें ही गायत्री का सिर अर्थात् मस्तिष्क समझना चाहिये। गायत्री शक्ति में वही भावना विद्यमान् है, जो वेदांगों में है।

अब जानना है कि गायत्री का लक्षण क्या है ? चेष्टा क्या है ? उदाहरण क्या है ? बताते हैं कि मीमांसा लक्षण है, अथर्ववेद चेष्टा है और छन्द प्रतीक हैं। मीमांसा का अर्थ है - विचार। गायत्री का लक्षण विचार है, इस महाशक्ति का आविर्भाव हुआ है या नहीं, यह परीक्षा किसी मनुष्य के विचारों को देखकर की जा सकती है। जिसके अन्तःकरण में गायत्री अवतीर्ण होगी, उसके विचारों में परिवर्तन दिखाई पड़ेगा। उसके विचार, विवेचना, निर्णय ऐसे होंगे, जो एक आत्म-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के गौरव के अनुकूल हों। वह गायत्री का लक्षण है, लक्षण को देखकर ही किसी वस्तु का अस्तित्व पहचाना जाता है। गायत्री की उपस्थिति का लक्षण साधक की उच्च विचार-धारा को ही समझना चाहिये।

गायत्री की चेष्टा अथर्ववेद बताता है। अथर्ववेद में व्यावहारिक ज्ञान है। शिल्प-कला, रसायन, विज्ञान, चिकित्सा, काम-शास्त्र आदि व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली विद्याओं का वेद में वर्णन है। जहाँ गायत्री की स्थिति होगी, वहाँ अथर्व से सम्बन्ध रखने वाली चेष्टायें देखी जायेंगी। उद्योग, प्रयोग, उत्पादन, निर्माण, कला-कौशल, व्यवस्था, परिवर्तन, ग्रहण, विसर्जन आदि चेष्टायें प्रयत्न रूप में परिलक्षित होंगी। अभीष्ट की प्राप्ति के लिये जहाँ प्रचण्ड प्रयत्न हो रहा हो, समझना चाहिये कि गायत्री-शक्ति की चेष्टा है।

गायत्री का उदाहरण है- छन्द। छन्द का अर्थ है- पदार्थ। लक्षण और चेष्टाओं के द्वारा विचार और कर्मों द्वारा निःसंदेह अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। उदाहरण कहते हैं- नमूने को। गायत्री की स्थिति कैसी होती है ? इसका उदाहरण उत्तमोत्तम पदार्थों और परिस्थितियों को दिखाकर बताया गया है कि जहाँ जाने या अनजाने में गायत्री की कृपा होगी, वहाँ का बाह्य वातावरण श्रेष्ठता से परिपूर्ण होगा।

अब मालूम करना है कि गायत्री का वर्ण क्या है ? स्वर क्या है ? वर्ण श्वेत है। श्वेत-सतोगुण का, शुभ्रता का, उज्ज्वलता का, पवित्रता का प्रतीक है। स्वर छः हैं- ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित। प्रत्येक स्वर का अपना-अपना विज्ञान एवं अपना महत्त्व है। शब्द की शक्ति अनन्त है, शब्दों द्वारा कम्पन होते हैं, उनके कारण सृष्टि में विविध प्रकार के वातावरण बनते हैं। यह छः स्वर ही ध्यान के छः भेद हैं, इन्हीं के द्वारा पंच-तत्त्वों और सूक्ष्म २४ तत्त्वों में गति संचार होता है। इसे गायत्री महाविज्ञान के तृतीय खण्ड में सविस्तार लिखा जायेगा। यहाँ तो इतना ही जान लेना चाहिये कि संसार की सम्पूर्ण गतिविधियों को प्रेरणा देने वाले सभी स्वर गायत्री में मौजूद हैं। जो उनका रहस्य जानता है, वह चाहे जिस राग की स्वर-लहरी बजा सकता है और मनचाहे परिणाम उपस्थित कर सकता है।

पूर्वा भवति गायत्री, मध्यमा सावित्री, पश्चिमा सन्ध्या सरस्वती।
रक्ता गायत्री, श्वेता सावित्री, कृष्णा सरस्वती ॥१२॥

प्रणवे नित्ययुक्ता स्याद् व्याहृतिषु च सप्तसु। सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते। शतसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री पावनं महत् ॥१३॥

उषः काले रक्ता, मध्याह्ने श्वेताऽपराह्ने कृष्णा। पूर्व सन्धि ब्राह्मी, मध्य सन्धि माहेश्वरी, परा सन्धि वैष्णवी। हंसवाहिनी ब्राह्मी, वृषवाहिनी माहेश्वरी, गरुडवाहिनी वैष्णवी ॥१४॥

पूर्वाह्नकाले सन्ध्या गायत्री, कुमारी रक्तांगी रक्तवासास्त्रिनेत्रा पाशांकुशाक्षमाला कमंडलुकरा हंसारूढा ऋग्वेदसहिता, ब्रह्मदैवत्या भूर्लोक व्यवस्थितादित्यपथगामिनी ॥१५॥

मध्याह्नकाले सन्ध्या सावित्री युवती श्वेतांगी श्वेतवासास्त्रिनेत्रा पाशांकुशत्रिशूलडमरुहस्ता वृषभारूढा यजुर्वेदसहिता, रुद्रदैवत्या भुवर्लोक व्यवस्थितादित्यपथगामिनी ॥१६॥

सायाह्नकाले सन्ध्या सरस्वती वृद्धा कृष्णांगी, कृष्णवासास्त्रिनेत्रा शंख- गदा- चक्र- पद्महस्ता- गरुडारूढा सामवेद- सहिता विष्णु- दैवत्या स्वर्लोक व्यवस्थितादित्यपथगामिनी ॥१७॥

गायत्री को तीन नामों से पुकारा जाता है। आरम्भिक अवस्था में गायत्री, मध्य अवस्था में सावित्री और अन्त अवस्था में सरस्वती। प्रारम्भ, तरुणाई और परिपक्वता, इन तीन भेदों के कारण एक ही शक्ति के तीन नाम रखे गये हैं। गायत्री की आभा अरुण है, सावित्री की श्वेत और सरस्वती की कृष्ण वर्ण-धुँधली है। जैसे सूर्य श्वेत वर्ण है पर प्रातःकाल में उसकी आभा लाल, मध्याह्न की शुभ्र और सन्ध्या में धुँधली हो जाती है। उसी प्रकार साधना काल में साधक को अपनी स्थिति के अनुसार यह तीनों वर्ण ध्यानावस्था में परिलक्षित होते हैं। गायत्री सदा प्रणव युक्त है। उसका उच्चारण सदा ॐकार समेत होता है। यद्यपि साधारण साधना में और विवेचना में तीन ही व्याहृतियों का प्रयोग होता है, पर ब्रह्म विवेचना के लिए- उपनिषद् विज्ञान के लिये सात व्याहृतियों का प्रयोग होता है। यदि सब पापों का समूह इकट्ठा हो जाए, तो भी उनका नाश शत-सहस्र गायत्री का अभ्यास करने से हो जाता है। यों मोटे अर्थ में शत सहस्र, एक लाख को और अभ्यास, जप को कहते हैं; परन्तु इस सूत्र का सूक्ष्म रहस्य इस प्रकार है- शत कहते हैं - निश्चित भाव से, सहस्रार कहते हैं- सहस्रार में- ब्रह्मरन्ध्र में गायत्री की धारणा का अभ्यास करने से पाप दूर होते हैं। निश्चित विधि से षट् चक्रों का वेधन कर ब्रह्मरन्ध्र तक गायत्री को पहुँचाने की विधि "गायत्री महाविज्ञान" के प्रथम भाग में वर्णित है। उस साधना से साधक अग्नि में तपे हुए स्वर्ण की भाँति निष्पाप हो जाता है। "शत सहस्र अभ्यास" पद में उसी साधना की ओर संकेत है।

पूर्व सन्ध्या को- प्रातःकाल की सन्ध्या को ब्राह्मी कहते हैं। यह हंसवाहिनी, कुमारी, रक्त अंगवाली, रक्त वस्त्र वाली, तीन नेत्र वाली, पाश, अंकुश, जप माला और कमण्डलु धारण करने वाली, ऋग्वेद सहित, ब्रह्म दैवत्या, भूः लोक में रहने वाली और सूर्य पथ से गमन करने वाली है।

आइए, उपर्युक्त आलंकारिक वर्णन के गूढ़ रहस्य पर विचार करें। प्रातःकाल का समय ब्रह्म-मुहूर्त का कहलाता है। उस समय ब्रह्म-तत्त्व की विशेषता रहने के कारण गायत्री को ब्राह्मी कहते हैं। हंस कहते हैं प्राण को। हंसारूढ़ अर्थात् प्राण पर छायी हुई। ब्राह्मी गायत्री प्राण पर अपना विशेष प्रभाव प्रकट करती है। कुमारी का अर्थ है- बाल्य-वृत्तियों से-चंचलता से युक्त। रक्त, गतिशीलता का-विकास विद्युत् का प्रतीक है। प्रातःकालीन गायत्री में गतिशीलता का- विकास विद्युत् के संचार का गुण है, यही उसका रक्तांगी और रक्तवस्त्रा होना है। त्रिनयनी-तीन दृष्टियों वाली, तीनों लोकों को दृष्टि में रखने वाली, शरीर, मस्तिष्क और अन्तःकरण को देखने वाली है। तीनों ओर दृष्टि रखती है, इसलिये उसे त्रिनयनी कहते हैं। पाश- अर्थात् बन्धन, अंकुश- अर्थात् नियन्त्रण, अक्षमाला- शब्द मातृकाएँ, कमण्डलु- अर्थात् धारणा, ऋग्वेद- अर्थात् ज्ञान, ब्रह्मदैवत्या- अर्थात् ब्रह्म की देव शक्ति। इन सब लक्षणों, गुणों और साधनों से सम्पन्न होने के कारण प्रातःकाल की गायत्री अपने साधक पर इन सब उपचारों का प्रयोग करती है। वह इन सब साधनों से ब्राह्मी गायत्री द्वारा तपाया जाता है और ब्रह्मभूत बनाया जाता है। ब्रह्म गायत्री भूर्लोक निवासिनी है। उसका इस भूर्लोक के प्राणियों द्वारा विशेष उपयोग होता है। भूः

लोक शरीर को भी कहते हैं, ब्राह्मी शरीर को स्वस्थ रखती है । वह सूर्य गामिनी है । जिस प्रकार सूर्य की तेजस्वी किरणें मनुष्य को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं, वैसे ही गायत्री की शक्तियाँ भी काम करती हैं । सूर्य की किरणों और प्रात: गायत्री की शक्तियों की कार्य-विधि में बहुत कुछ समता है ।

अब मध्याह्न गायत्री के लक्षण देखिये । वह सावित्री नाम वाली युवती, श्वेतांगी, श्वेत वस्त्रा, त्रिनयना, पाश, अंकुश, त्रिशूल, डमरू लिये हुए है । वृषभ पर आरूढ़ है । यजुर्वेद सहित, रुद्र दैवत्या, भुव: लोक अवस्थित, सूर्य पथगामिनी है । इनमें से कुछ बातें तो ब्राह्मी के समान हैं- त्रिनयना, पाश, अंकुश, सूर्य पथगामिनी, इन चारों बातों की विवेचना पहले की जा चुकी है । अब शेष लक्षणों पर प्रकाश डालते हैं- युवती अर्थात् प्रौढ़, विकसित, परिपुष्ट, स्थिर, सुदृढ़ । श्वेत वर्ण अर्थात् प्रकाशवती, विस्तृत फैली हुई आलोकमय । परिपुष्ट होकर अपनी पूर्णावस्था के तेज से झिलमिलाती हुई गायत्री को श्वेत वर्ण, श्वेतवस्त्रा कहा है । सविता सूर्य के समान तेजस्वी होने से उनका सावित्री नाम है । त्रिशूल कहते हैं तीन दु:खों को- अज्ञान, अभाव और अशक्ति इन तीनों को वह अपने हाथ में, अपनी मुट्ठी में लिये हुए है- अर्थात् यह तीनों शूल उसके नियंत्रण में हैं । डमरू- ध्वनि का - वाणी का प्रतीक है । वृषभ धर्म का प्रतीक है । तरुण सावित्री धर्म पर आरूढ़ है । यजुर्वेद कर्मकाण्ड का प्रतीक है । वह कर्म की प्रेरणा करता है । रुद्र दैवत्या- अर्थात् भयंकर, उग्र, दिव्य शक्तियों वाली । भुव: लोक में निवास करने वाली, भुव: कहते हैं मानस लोक को । मस्तिष्क, विचार, तर्क, बुद्धि, सूझबूझ को परिमार्जित बनाने वाली है ।

अब सन्ध्याकाल की गायत्री के लक्षण देखिये । वह सावित्री के नाम वाली वृद्धा, कृष्णांगी, कृष्णवस्त्रा, तीन नेत्र वाली, शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथ में लिये हुए, गरुड़ पर आरूढ़-सामवेद सहित, विष्णु दैवत्या, स्व:लोकनिवासिनी, सूर्यपथगामिनी है । सूर्य पथगामिनी और त्रिनयनी का वर्णन पहले हो चुका है । इसलिये इन दो लक्षणों को छोड़कर अन्य लक्षणों पर विचार करेंगे । स + रस् + वती = सरस्वती । सरसता वाली, संगीत, कला, कवित्व तथा अन्य स्थूल सूक्ष्म रसों की निर्झरिणी होने के कारण परिपक्व- सन्ध्याकालीन गायत्री को सरस्वती कहा है । वृद्धा का अर्थ है - परिपक्व, पूर्ण विकसित, विकास की अंतिम मर्यादा तक पहुँची हुई है । कृष्ण वर्ण- धुँधलापन-मिश्रण का द्योतक है । ब्रह्म और प्रकृति के उभय रूपों का मिश्रण काला होता है । पारा श्वेत है, गन्धक पीली है, इसी प्रकार ब्रह्म शुभ्र है, प्रकृति पीत है, दोनों के मिश्रण से काला रंग बनता है । भगवान् राम और कृष्ण के काला होने का यही कारण था । सन्ध्याकालीन गायत्री में ब्रह्म और प्रकृति का सम्मिश्रण होने से वह कृष्ण वर्ण वाली, कृष्ण वस्त्र वाली कहलाती है । सरस्वती के हाथ में चार पदार्थ हैं । शंख अर्थात् वाणी, चक्र अर्थात् तेज, गदा- अर्थात् विनाश, पद्म अर्थात् वैभव । इन चारों शक्तियों पर सरस्वती का आधिपत्य है । गरुड़ कहते हैं- क्रिया को, गतिशीलता को । सरस्वती का क्षेत्र विचार तक ही सीमित नहीं है वरन् वह क्रियाशील भी है । सामवेद, संगीत का- बाह्य गायन का प्रतीक है । विष्णु की सेविका दिव्य शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण वह विष्णु दैवत्या कहलाती है । स्व:लोक कहते हैं- हृदय को- अन्त:करण को । सरस्वती वीणा के तारों को झंकृत करती है- अन्त:करण में विवेक जाग्रत् करती है ।

ऊपर ब्राह्मी , सावित्री और सरस्वती का विवेचन किया गया है । अविकसित, विकसित और परिपुष्ट इन भेदों से तीन रूप कहे गये हैं । इनको प्रात:, मध्याह्न , सन्ध्या इन तीन कालों में भी विभक्त कर दिया गया है । इन तीन भेदों में से साधक को अपने लिये जिस शक्ति की उपयोगिता दृष्टिगोचर होती हो, उसे साधना के लिये चुन लेना चाहिये ।

कान्यक्षर दैवतानि भवन्ति ? ॥१८॥

प्रथममाग्नेयं , द्वितीयं प्राजापत्यं तृतीयं सौम्यं, चतुर्थमैशानं, पञ्चमादित्यं, षष्ठं बार्हस्पत्यं, सप्तमं भगदैवत्यम्, अष्टमं पितृदैवत्यं नवममर्यमणं, दशमं सावित्रं, एकादशं त्वाष्ट्रं, द्वादशं पौष्णं, त्रयोदशमैन्द्राग्नं , चतुर्दशं वायव्यं, पञ्चदशं वामदेव्यं, षोडशं मैत्रावरुणं, सप्तदशं बाभ्रव्यं, अष्टादशं वैश्वदेव्यम्, एकोनविंशतिकं वैष्णव्यं, विंशतिकं वासवम्, एकविंशतिकं

तौषितं, द्वाविंशतिकं कौबेरं, त्रयोविंशतिकं आश्विनं, चतुर्विंशतिकं ब्राह्मं इत्यक्षरदैवतानि भवन्ति ॥१९ ॥

गायत्री के चौबीस अक्षरों के देवता कौन-कौन हैं ? इसका उत्तर देते हुए बताते हैं कि 'तत्' का देवता अग्नि, 'स' का प्रजापति, 'वि' का सोम, -'तुः' का ईशान, 'व' का आदित्य, 'रे' का बृहस्पति, 'णि' का भग, 'यम्' का पितृ, 'भ' का अर्यमा, 'गो' का सविता, 'दे' का त्वष्टा, 'व' का पूषा, 'स्य' का इन्द्र और अग्नि, 'धी' का वायु, 'म' का वामदेव, 'हि' का मित्र और वरुण, 'धि' का वभ्रु, 'यो' का विश्वदेव, 'यो' का विष्णु, 'नः' का वसु, 'प्र' का तुषित, 'चो' का कुबेर, 'द' का अश्विनी कुमार और 'यात्' का ब्रह्मा देवता है ।

ये देवता प्रत्येक अक्षर की शक्तियाँ हैं । इन शक्तियों का गायत्री के चौबीस अक्षर प्रतिनिधित्व करते हैं । इस महामन्त्र के साथ उन शक्तियों का साधना में आविर्भाव होता है ।

द्यौ मूर्ध्निसंगतास्ते, ललाटे रुद्रः, भ्रुवोर्मेघः चक्षुषोश्चन्द्रादित्यौ, कर्णयोः शुक्रबृहस्पती नासिके वायुदैवत्ये दन्तौष्ठावुभयसन्ध्ये, मुखमग्निः, जिह्वा सरस्वती, ग्रीवासाध्यानुगृहीतिः, स्तनयोर्वसवः , बाह्वोर्मरुतः, हृदयं पर्जन्यमाकाशमुदरं, नाभिरंतरिक्षं कट्योरिन्द्राग्नी, जघनं प्राजापत्यं, कैलासमलयावूरू, विश्वेदेवा जानुनी, जह्नु-कुशिकौ जंघाद्वयं, खुराः पितराः , पादौ वनस्पतयः अंगुलयो रोमाणि, नखाश्च मुहूर्तास्तेऽपि ग्रहाः केतुर्मासा ऋतवः सन्ध्याकालस्तथाच्छादनं सम्वत्सरो निमिषमहोरात्र आदित्यश्चन्द्रमाः ॥२० ॥

गायत्री को यदि एक मनुष्याकृति देवी माना जाए, तो उसके अंग-प्रत्यंगों में विविध देव-शक्तियों की स्थापना माननी होगी । गायत्री का ध्यान जब मनुष्याकृति देवी रूप में करते हैं, तो उसके दिव्य होने की धारणा की जाती है । गायत्री के अंग-प्रत्यंगों में जो शक्तियाँ निवास करती हैं, उनका ध्यान भी साधक को करना होता है । जब साधक अपने को गायत्री-शक्ति से ओत-प्रोत अनुभव करे, तब भी उसे ऐसा ही ज्ञान होना चाहिये कि मैं स्वयं उन शक्तियों से ओत-प्रोत हो रहा हूँ । मेरे अंग-प्रत्यंगों में वे ही देवतागण समाये हुए हैं, जो गायत्री के अंगों में हैं । इस भावना के कारण साधक अपने उपास्य देव की जाति में आ जाता है । कहा है कि - "देव बनकर देवता की उपासना करनी चाहिये ।" देव शक्तियाँ हमारे अंग-प्रत्यंगों में विराजमान हैं, यह भावना आत्म-श्रेष्ठता का संचार करती है और आत्म-स्थिति को देव- उपासना के योग्य बनाती है । अब गायत्री के अंगों में देव-शक्तियों की स्थापना का वर्णन देखिये ।

गायत्री के मस्तक में स्वर्ण, ललाट में रुद्र, भौंहों में मेघ, दोनों नेत्रों में चन्द्र-सूर्य, दोनों कानों में शुक्र और बृहस्पति, दोनों नथुनों में वायु, दन्त और ओष्ठों में दोनों सन्ध्याएँ, मुख में अग्नि, जिह्वा में सरस्वती, ग्रीवा में साध्य-गण, स्तनों में वसु-गण, दोनों भुजाओं में मरुद्गण, हृदय में पर्जन्य, उदर में आकाश, कटि में इन्द्राग्नि , जघन में प्रजापति, उरु में कैलाश और मलय पर्वत, जंघा में जह्नु और कुशिक, तलवों में पितृ-गण, चरण में वनस्पति-गण, अंगुलियों , रोम और नखों में मुहूर्त, ग्रह, धूमकेतु, मास, ऋतु और सन्ध्याएँ, आच्छादन, सम्वत्सर, वर्ष, दिन-रात्रि, सूर्य और चन्द्र गायत्री के निमेष हैं ।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । सहस्रनेत्रां गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ॥२१ ॥

ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः । ॐ तत् पूर्व जयाय नमः । ॐ तत् प्रातरादित्य प्रतिष्ठाय नमः ॥२२ ॥

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । तत् सायं प्रातरधीयानो ऽपापो भवति ॥२३ ॥

य इदं गायत्रीहृदयं ब्राह्मणः पठेत् अपेयपानात् पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । अज्ञानात् पूतो भवति । स्वर्ण स्तेयात् पूतो भवति । गुरु तल्पगमनात् पूतो भवति । अपंक्ति

पावनात् पूतो भवति। ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति। अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। इत्यनेन हृदयेनाधीतेन क्रतु सहस्रेणेष्टो भवति। षष्टि शतसहस्राणि जप्यानि फलानि भवन्ति अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयेदर्थसिद्धिर्भवति ॥२४॥

य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रयतः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यते इति। ब्रह्मलोके महीयते इत्याह भगवान् याज्ञवल्क्यः ॥२५॥

॥ इति "गायत्री हृदयम्" सम्पूर्णम् ॥

गायत्री का एक हजार जप करना नित्य श्रेष्ठ है। इतना न हो सके तो मध्यम रूप से सौ जप भी किये जा सकते हैं। अन्ततः इतना भी न हो सके, तो कम से कम दस बार तो अवश्य ही करना चाहिये। गायत्री सहस्र नेत्र वाली है, उसकी हजारों आँखें हैं, वह सर्वत्र सब कुछ देखती है, उससे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। ऐसी सर्वत्रदर्शी ईश्वरीय शक्ति को सर्व-व्यापक समझकर अपने विचार और कार्य ऐसे रखने चाहिये, जो दिव्य हों, माता की दृष्टि में उचित, उत्तम, धर्ममय जँचें। अपने उद्देश्य, आचरण और व्यवहार को श्रेष्ठ रखना ही गायत्री की भक्ति है। सच्चा साधक वह है, जो भक्तिपूर्वक वेदमाता की शरण में जाता है।

'ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं' इत्यादि पदों वाले मंत्रों को नमस्कार है, जिनके द्वारा माता का साक्षात्कार होता है। ॐ तत् आदि शब्दों के साथ किये हुए पूर्व जप को नमस्कार है, क्योंकि उस जप के द्वारा आत्म-ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ॐ तत् सहित भगवान् आदित्य को नमस्कार है, क्योंकि उनके प्रकाश और प्रेरणा से पथ में प्रगति होती है।

सायंकाल में गायत्री का पाठ करने से, दिन में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रातः पाठ करने से रात्रि में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। सायं-प्रातः दोनों पाठ करने से पापी भी निष्पाप हो जाते हैं। मद्यादि पीने, अभक्ष्य खाने, अज्ञान में डूबे रहने, चोरी करने, व्यभिचार, ब्रह्महत्या, दुराचार आदि पापों से छुटकारा मिल जाता है, ऐसा भगवान् याज्ञवल्क्य ने कहा है।

पाठ के द्वारा निष्पाप हो जाने का रहस्य यह है कि श्रद्धा और विश्वासपूर्वक इन महान् ब्रह्मविद्या का विवेचन, चिन्तन, मनन करने के कारण विवेक की जागृति होती है। मनुष्य को पाप की निरर्थकता और पुण्य की सार्थकता समझ में आ जाती है। फलस्वरूप वह कुमार्ग से विरत होकर सन्मार्ग पर चलना अपनी नीति बनाता है। अन्तःकरण में धँसे हुए अज्ञानान्धकार को बहिष्कृत करके ज्ञान का प्रकाश धारण करता है। पूर्वकृत पापों का प्रायश्चित्त करता है और भविष्य में उन्हें न करने की प्रतिज्ञा करता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर नये पाप हो जाना बन्द हो जाता है, पुराने प्रारब्ध बने हुए पाप धीरे-धीरे भुगतते जाते हैं, इस प्रकार वह थोड़े ही दिनों में निष्पाप बन जाता है। कुबुद्धि का परित्याग और सद्बुद्धि की धारणा ही पाप-नाश का वास्तविक कारण है। परन्तु वह कारण यदि इस ब्रह्मज्ञान के पाठ, चिन्तन, मनन से उत्पन्न हुआ है, तो उसका श्रेय इस पाठ या मनन को ही दिया जायेगा। इसलिये पाठ द्वारा पाप-निवृत्ति का वर्णन किया जाता है।

'गायत्री-हृदय' में जो विस्तृत तत्त्व-ज्ञान भरा पड़ा है, उसको भली प्रकार हृदयंगम कर लेने से आत्मा में उतना ही प्रकाश हो जाता है, उतनी ही आत्म- शुद्धि हो जाती है, जितनी कि साठ लाख गायत्री जप करने से। इस 'गायत्री-हृदय' में वर्णित तत्त्वज्ञान को आत्मसात् कर लेने का पुण्य-फल इतना अधिक है कि इसकी तुलना और किसी कार्य से नहीं की जा सकती।

गायत्री पञ्जरम्

किसी वस्तु के सम्बन्ध में विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कोई मूर्ति हमारे मनःक्षेत्र में हो। बिना कोई प्रतिमूर्ति बनाये मन के लिये किसी भी विषय में कुछ सोचना असम्भव है। मन की प्रक्रिया ही यह है कि पहले वह किसी वस्तु का आकार निर्धारित कर लेता है, तब उसके बारे में कल्पना-शक्ति काम करती

है। समुद्र भले ही किसी ने न देखा हो, पर जब समुद्र के बारे में कुछ सोच-विचार किया जायेगा, तब एक बड़े जलाशय की प्रतिमूर्ति मनःक्षेत्र में अवश्य रहेगी। भाषा विज्ञान का यही आधार है। प्रत्येक शब्द के पीछे एक आकृति रहती है। 'कुत्ता' शब्द जानना तभी सार्थक है, जब 'कुत्ता' शब्द उच्चारण करते ही एक प्राणी विशेष की आकृति सामने आ जाये। न जानी हुई विदेशी भाषा कोई हमारे सामने बोले, तो उसके शब्द कान में पड़ते हैं, पर वे शब्द चिड़ियों के चहचहाने की तरह निरर्थक जान पड़ते हैं। कोई भाव मन में उदय नहीं होता। कारण यही है कि उस शब्द के पीछे रहने वाली आकृति का हमें पता नहीं होता। जब तक आकृति सामने न आए, तब तक मन के लिये असम्भव है कि उस सम्बन्ध में कोई सोच-विचार करे।

ईश्वर या ईश्वरीय शक्तियों के बारे में यही बात है। चाहे उन्हें सूक्ष्म माना जाए या स्थूल, निराकार माना जाए या साकार, इन दार्शनिक और वैज्ञानिक झमेलों में पड़ने से मन का कोई प्रयोजन नहीं। उससे यदि इस दिशा में कोई सोच-विचार का काम लेना है, तो कोई न कोई आकृति बनाकर उसके सामने उपस्थित करनी पड़ेगी, अन्यथा वह ईश्वर या उसकी शक्ति के बारे में कुछ भी नहीं सोच सकेगा। जो लोग ईश्वर को निराकार मानते हैं, वे भी 'निराकार' का कोई न कोई आकार बनाते हैं। आकाश जैसा निराकार, प्रकाश जैसा तेजोमय, अग्नि जैसा व्यापक, परमाणुओं जैसा अदृश्य। आखिर कोई न कोई आधार उस निराकार का भी स्थापित करना ही होगा। जब तक आकार की स्थापना न होगी, मन, बुद्धि और चित्त से उसका कुछ भी सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकेगा।

इस महा सत्य को ध्यान में रखते हुए निराकार, अचिन्त्य, बुद्धि से अगम्य , वाणी से अतीत परमात्मा का मन से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भारतीय आचार्यों ने ईश्वर की आकृतियाँ स्थापित की हैं। इष्टदेवों के ध्यान की सुन्दर, दिव्य आकृति की प्रतिमायें गढ़ी हैं। उनके साथ दिव्य आयुध, दिव्य वाहन, दिव्य गुण, दिव्य स्वभाव एवं शक्तियों का सम्बन्ध किया गया है। ऐसी आकृतियों का भक्तिपूर्वक ध्यान करने से साधक उनके साथ एकीभूत होता है, दूध और पानी की तरह साध्य और साधक का मिलन होता है। भृंगी झींगुर को पकड़ ले जाती है और उसके सामने भिनभिनाती है, झींगुर उस गुञ्जन को सुनता है और इतना तन्मय हो जाता है कि उसकी आकृति तक बदल जाती है और वह झींगुर भृंगी बन जाता है। दिव्य कर्म स्वभाव वाली देवाकृति का ध्यान करते रहने से साधक में भी उन्हीं दिव्य शक्तियों का आविर्भाव होता है। जैसे रेडियो यन्त्र को माध्यम बनाकर सूक्ष्म आकाश में उड़ती फिरने वाली विविध ध्वनियों को सुना जा सकता है, उसी प्रकार ध्यान में देवमूर्ति की कल्पना करना एक आध्यात्मिक रेडियो स्थापित करना है, जिसके माध्यम से सूक्ष्म जगत् में विचरण करने वाली विविध ईश्वरीय शक्तियों को साधक पकड़ सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार अनेक इष्टदेवों की अनेक आकृतियाँ साधकों को ध्यान करने के लिये बनाई गयी हैं। इन देव आकृतियों का स्वतंत्र विज्ञान है। अमुक देवता की अमुक प्रकार की आकृति क्यों रखी गयी है ? इसका एक क्रमबद्ध रहस्य है। उसकी चर्चा तो स्वतन्त्र पुस्तक में करेंगे, यहाँ तो इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि अमुक प्रयोजन के लिये अमुक ईश्वरीय शक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये जो आकृति योगी लोगों को ठीक सिद्ध हुई है, वही आकृति उस देवता की घोषित कर दी गयी है।

जहाँ अन्य प्रयोजनों के लिये अन्य देवाकृतियाँ हैं, वहाँ इस विश्व-ब्रह्माण्ड को ईश्वरमय देखने के लिये 'विराट् रूप' परमेश्वर की प्रतिमूर्ति विनिर्मित की गयी है। मनुष्य की सारी आत्मोन्नति और सुख-शान्ति इस बात पर निर्भर है कि उसका आन्तरिक और बाह्य जीवन पवित्र एवं निष्पाप हो, समस्त प्रकार के क्लेश, दुःख , अभाव एवं विक्षोभों के कारण मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक पाप हैं। यदि वह इन पापों से बचता जाता है, तो फिर और कोई कारण ऐसा नहीं, जो इसकी ईश्वर प्रदत्त अनन्त सुख-शान्ति में बाधा डाल सके। पापों से बचने के लिये ईश्वरीय भय की आवश्यकता होती है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, इस बात को जानते तो सब हैं, पर अनुभव बहुत कम लोग करते हैं। जो मनुष्य यह अनुभव करेगा कि ईश्वर मेरे चारों ओर छाया हुआ है और वह पाप का दण्ड अवश्य देता है- जिसको यह भावना अनुभव में आने लगेगी, वह पाप नहीं कर सकेगा। जिस चोर के चारों ओर सशस्त्र पुलिस घेरा डाले खड़ी हो और हर तरफ से उस पर आँखें गड़ी हुई हों, वह ऐसी दशा में भला किस प्रकार चोरी करने का साहस करेगा ?

परमात्मा की आकृति चराचरमय ब्रह्माण्ड में देखना ऐसी साधना है, जिसके द्वारा सर्वत्र परमात्मा अनुभव करने की चेतना जाग्रत् हो जाती है। यही विश्व मानव की पूजा है, इसे ही विराट् दर्शन कहते हैं। रामायण में भगवान् राम ने अपने जन्म-काल में कौशल्या को विराट् रूप दिखाया था। एक बार भोजन करते समय भी राम ने माता को विराट् रूप दिखलाया था। उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि जी के सम्बन्ध में वर्णन है कि वे एक बार भगवान् के मुख में चले गये, तो वहाँ सारे ब्रह्माण्ड को देखा। भगवान् कृष्ण ने भी इसी प्रकार कई बार अपने विराट् रूप दिखाये। मिट्टी खाने के अपराध में मुँह खुलवाते समय यशोदा को विराट् रूप दिखाया, महाभारत के उद्योग पर्व में दुर्योधन ने भी ऐसा ही रूप देखा। अर्जुन को भगवान् ने युद्ध के समय में विराट् रूप दिखलाया, जिसका गीता के ११ वें अध्याय में सविस्तार वर्णन किया गया है।

इस विराट् रूप को देखना हर किसी के लिये सम्भव है। अखिल विश्व ब्रह्माण्ड को परमात्मा की विशालकाय मूर्ति देखना और उसके अन्तर्गत-उसके अंग-प्रत्यंगों के रूप में समस्त पदार्थों को देखने, प्रत्येक स्थान को ईश्वर से ओत-प्रोत देखने की भावना करने से भगवद् बुद्धि जाग्रत् होती है और सर्वत्र प्रभु की सत्ता के व्याप्त होने का सुदृढ़ विश्वास होने से मनुष्य पाप से छूट जाता है। फिर उससे पाप कर्म नहीं बन सकते। निष्पाप होना इतना बड़ा लाभ है कि उसके फलस्वरूप सब प्रकार के दु:खों से छुटकारा मिल जाता है। अन्धकार के अभाव का नाम है- प्रकाश और दु:ख के अभाव का नाम है- आनन्द। विराट् दर्शन के फलस्वरूप निष्पाप हुआ व्यक्ति, सदा अक्षय आनन्द का उपभोग करता है।

गायत्री परमात्मा की शक्ति है। परमात्मा की शक्ति सर्वत्र, अणु-अणु में, विश्व-ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। जो कुछ है गायत्रीमय है। गायत्री के शरीर में ही यह जगत् है, यह भावना 'गायत्री का विराट् रूप दर्शन' कहलाती है। नीचे दिये हुए "गायत्री पञ्जर स्तोत्र" में यही विराट् दर्शन है। पञ्जर कहते हैं ढाँचे को। गायत्री का ढाँचा, सम्पूर्ण विश्व में है, यह इस स्तोत्र में बताया गया है। इस स्तोत्र का भावना सहित ध्यान करने से अन्त:लोक और बाह्य-जगत् में विराट् गायत्री के दर्शन होते हैं। उस दर्शन के फलस्वरूप पाप करने का किसी को उसी प्रकार साहस नहीं हो सकता जैसे कि पुलिस से घिरा हुआ व्यक्ति चोरी करने का प्रयत्न नहीं करता।

॥ अथ गायत्री पञ्जरम् ॥

भूर्भुवः सुविरित्यतैर्निगमत्व प्रकाशिकाम्।
महर्जनस्तपः सत्यं लोकोपरि सुसंस्थिताम् ॥१॥

भू: भुव: स्व: द्वारा निगम को प्रकाशित करती है, मह:, जन:, तप:, सत्यं इन लोकों से ऊपर स्थित है।

कृतगान- विनोदादि कथालापेषु तत्पराम्।
तदित्यवाङ् मनोगम्य तेजो रूपधरां पराम् ॥२॥

गान आदि से विनोद और कथा आदि में तत्पर वह वाणी और मन से अगम्य होने पर भी जो तेज रूप धारण किये हुए है।

जगतः प्रसवित्रीं तां सवितुः सृष्टिकारिणीम्।
वरेण्यमित्यन्नमयीं पुरुषार्थफलप्रदाम् ॥३॥

जगत् का प्रसव करने वाली को सविता की सृष्टिकर्त्री कहा है। वरेण्य का अर्थ अन्नमयी है, वह पुरुषार्थ का फल देती है।

अविद्या वर्ण वर्ज्यां च तेजोवद्गर्भसंज्ञिकाम्।
देवस्य सच्चिदानन्द परब्रह्म रसात्मिकाम् ॥४॥

वह अविद्या है, वर्ण रहित है, तेजयुक्त है, गर्भ संज्ञा वाली है तथा सच्चिदानन्द परब्रह्म देव की रसमयी है।

यद्वयं धीमहि सा वै ब्रह्माद्वैतस्वरूपिणीम् ।
धियो योनस्तु सविता प्रचोदयादुपासिताम् ॥५ ॥

हम ध्यान करते हैं कि वह अद्वैत ब्रह्म स्वरूपिणी है, सविता स्वरूपा हमारी बुद्धि को उपासना के लिये प्रेरणा देती है ।

तादृगस्या विराट्रूपां किरीटवरराजिताम् ।
व्योमकेशालकाकाशां रहस्यं प्रवदाम्यहम् ॥६ ॥

इस प्रकार वह विराट् रूप वाली है, वह सुन्दर किरीट धारण करती है । व्योम केश हैं, आकाश अलकें हैं, इस प्रकार इसका रहस्य कहा जाता है ।

मेघ भ्रुकुटिकाक्रान्तां विधिविष्णुशिवार्चिताम् ।
गुरु भार्गवकर्णां तां सोमसूर्याग्निलोचनाम् ॥७ ॥

भौंहों से आक्रान्त मेघ हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शिव से जो अर्चित है, गुरु, शुक्र जिसके कान हैं, सोम, सूर्य, अग्नि जिसके नेत्र हैं ।

पिंगलेडाद्वयं नूनं वायुनासापुटान्विताम् ।
सन्ध्यौभयोष्ठपुटितां लसद्वाग्भूपजिह्विकाम् ॥८ ॥

इडा, पिंगला दोनों नासापुट हैं । दोनों सन्ध्या, दोनों ओष्ठ हैं, उपजिह्वा ही वाणी है ।

सन्ध्याद्युमणिकण्ठां च लसद्बाहुसमन्विताम् ।
पर्जन्य हृदयासक्तां वसु-सुस्तनमण्डलाम् ॥९ ॥

उस सन्ध्या रूपी द्युमणि से कण्ठ शोभित है । बाहु शोभायुक्त हैं तथा पर्जन्य हृदय है और स्तनमण्डल वसु है ।

वितताकाशमुदरं सुनाभ्यन्तरदेशकाम् ।
प्रजापत्याख्यजघनां कटीन्द्राणीतिसंज्ञिकाम् ॥१० ॥

आकाश उदर है, अन्तरदेश नाभि है । जघन प्रजापति है, कटि इन्द्राणी है ।

ऊरुमलयमेरुभ्यां सन्ति यत्रासुरद्विषः ।
जानुनी जह्नु कुशिकौ वैश्वदेवसदाभुजाम् ॥११ ॥

ऊरु मलय- मेरु है, जहाँ असुर द्वेषी देव निवास करते हैं । जानु में जह्नु कुशिक है, भुजाएँ वैश्वदेव हैं ।

अयनद्वयं जंघाद्यं खुरादि पितृसंज्ञिकाम् ।
पदांघ्रि नखरोमादि भूतलद्रुमलांछिताम् ॥१२ ॥

जंघाओं के दोनों आदि स्थान अयन हैं, खुर आदि पितृ हैं, पद, अंघ्रि, नख, रोम आदि पृथ्वी तल के पेड़ आदि कहे हैं ।

ग्रहराशिर्देवर्षयो मूर्तिं च परसंज्ञिकाम् ।
तिथिमासस्तुवर्षाख्यं सुकेतुनिमिषात्मिकाम् ॥
माया कल्पित वैचित्र्यां सन्ध्याच्छादन संवृताम् ॥१३ ॥

ग्रह, राशि, देव, ऋषि, परसंज्ञक शशि की मूर्तियाँ हैं । तिथि, मास, ऋतु, वर्ष तथा सुकेतु आदि निमेष हैं । माया से रचित विचित्रता वाली तथा सन्ध्या के आवरण से युक्त है ।

ज्वलत्कालानलप्रभां तडित्कोटिसमप्रभाम् ।
कोटिसूर्य-प्रतीकाशां चन्द्रकोटि-सुशीतलाम् ॥१४ ॥

कालाग्नि की तरह ज्वलन है, करोड़ों बिजलियों के समान प्रभायुक्त है, करोड़ों सूर्य की तरह प्रकाशवान् और करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल है।

सुधामण्डलमध्यस्थां सान्द्रानन्दाऽमृतात्मिकाम्।
प्रागतीतां मनोरम्यां वरदां वेदमातरम्॥१५॥

सुधा मण्डल के मध्य में आनन्द और अमृतयुक्त है, प्राक् है, अतीत है, मनोहर है, वरदा है और वेदमाता है।

षडंगा वर्णिता सा च तैरेव व्यापकत्रयम्।
पूर्वोक्तदेवतां ध्यायेत्साकारगुणसंयुताम्॥१६॥

इसके छः अंग हैं, यह तीनों भुवनों में व्यापक है। इन पूर्वोक्त गुणों से संयुक्त देवता का ध्यान करना चाहिये।

पञ्चवक्त्रां दशभुजां त्रिपञ्चनयनैर्युताम्।
मुक्ताविद्रुमसौवर्णां स्वच्छशुभ्रसमाननाम्॥१७॥

पाँच मुँह हैं, दश भुजाएँ हैं, पन्द्रह नेत्र हैं और मुक्ता, विद्रुम के तुल्य सुवर्ण, सफेद तथा शुभ्र आनन हैं।

आदित्य-मार्गगमनां स्मरेद् ब्रह्मस्वरूपिणीम्।
विचित्र-मन्त्र-जननीं स्मरेद्विद्यां सरस्वतीम्॥१८॥

वह सूर्य मार्ग से गमन करती है, उस ब्रह्म स्वरूपिणी का स्मरण करना चाहिये। उन विचित्र मन्त्रों की जननी विद्या सरस्वती का स्मरण करना चाहिये।

॥इति गायत्री पञ्जरम्॥

अन्यत्र भी इस प्रकार के प्रमाण पाये जाते हैं, जिनमें पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति होने की पुष्टि की गयी है, देखिये-

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि तथा ग्रहाः।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठ देवताः॥
सृष्टिसंहारकर्त्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्त्तते॥
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः।
ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः॥

- शिव संहिता

मनुष्य शरीर इस विशाल ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति है, जो शक्तियाँ इस विश्व का परिचालन करती हैं, वे सब इस मानव देह में विद्यमान हैं।

इस शरीर में सप्तद्वीप सहित मेरु है। नदियाँ, सागर, पर्वत, खेत, किसान, ऋषि, मुनि, सब नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ, पीठ और पीठ-देवता विद्यमान हैं। सृष्टि और संहार करने वाले चन्द्र, सूर्य घूम रहे हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तीनों लोकों में जितने भी भूत हैं वे सब शरीर में हैं। मेरु को संवेष्टन कर सर्वत्र व्यवहार होता है। जो भी इनको जानता है, वह योगी है। इसमें संशय नहीं कि ये सब ब्रह्माण्ड नामक देह में यथा आदेश व्यवस्थित हैं।

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भेद्य निर्गतः ।
सहस्रोर्वङ्घ्रिबाहृवक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥
यस्येहावयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः ।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्यनाभितः ।
हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥
ग्रीवायां जनलोकोऽस्य तपोलोकः स्तनद्वयात् ।
मूर्द्धभिः सत्यलोकश्च ब्रह्म लोकः सनातनः ॥
तत्कट्या चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघाभ्यां च तलातलम् ॥
महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ।
पातालं पादतलजमिति लोकमयः पुमान् ॥

इसलिए यह भी पुरुष प्राण को भेदन कर निकल गया, जिसके हजार ऊरु, अंगुली, बाहु, नेत्र और हजार ही मुख और शिर थे तथा इस संसार में विद्वान् जिसके अवयवों के द्वारा लोकों की कल्पना करते हैं । कटि से नीचे सात और नितम्ब से ऊपर सात लोक हैं । पैरों में भू लोक की कल्पना की है, नाभि से भुवः लोक की, हृदय में स्वर्लोक की, वक्षस्थल से महः लोक, गर्दन से जनःलोक की तथा दोनों स्तनों में तपः लोक की और मूर्द्धा में सत्य-लोक की । वह ब्रह्म लोक सनातन है, उसकी कटि में अतल कल्पित किया है । ऊरुओं में वितल, घुटनों में सुतल, पिण्डलियों में तलातल, गुल्फ में महातल, पञ्जों में रसातल और पादतल में पाताल । यह लोकमय पुरुष हैं ।

इन श्लोकों का पाठ करना पर्याप्त न होगा । इस पर विचारपूर्वक, भक्ति-भावना के साथ चित्त एकाग्र किया जाना चाहिए । विराट् विश्व में अपने इष्टदेव को व्याप्त देखने की अनुभूति जब प्रत्यक्ष होने लगती है, तो प्रतिक्षण ईश्वर के दर्शन का लाभ प्राप्त करने वाले स्वर्ग का साक्षात्कार इसी जीवन में होने लगता है ।

गायत्री संहिता

आदि शक्तिरिति विष्णोस्तामहं प्रणमामि हि ।
सर्गः स्थितिर्विनाशश्च जायन्ते जगतोऽनया ॥१ ॥

यह गायत्री ही परमात्मा की आदि शक्ति है उसको मैं प्रणाम करता हूँ । इसी शक्ति से संसार का निर्माण, पालन और विनाश होता है ।

नाभि- पद्म- भुवा विष्णोर्ब्रह्मणा निर्मितं जगत् ।
स्थावरं जंगमं शक्त्या गायत्र्या एव वै ध्रुवम् ॥२ ॥

विष्णु की नाभि-कमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा ने गायत्री की शक्ति से जड़ तथा चेतन संसार भी बनाया ।

चन्द्रशेखर केशेभ्यो निर्गता हि सुरापगा ।
भगीरथं ततारैव परिवारसमं यथा ॥३ ॥
जगद्धात्री समुद्भूय या हृन्मानसरोवरे ।
गायत्री सकुलं पारं तथा नयति साधकम् ॥

सास्ति गंगैव ज्ञानाख्यसुनीरेण समाकुला।
ज्ञान गंगा तु तां भक्त्या वारं-वारं नमाम्यहम् ।।५ ।।

जिस प्रकार शिव के केशों से निकलने वाली गंगा ने परिवार सहित भगीरथ को पार कर दिया, उसी प्रकार संसार का पालन करने वाली गायत्री, हृदयरूपी मानसरोवर से प्रकट होकर सपरिवार साधक को भवसागर से पार ले जाती है। वही गायत्री ज्ञानरूपी जल से परिपूर्ण गंगा है। उस गंगा को मैं भक्ति से बार-बार नमस्कार करता हूँ।

ऋषयो वेद- शास्त्राणि सर्वे चैव महर्षयः।
श्रद्धया हृदि गायत्रीं धारयन्ति स्तुवन्ति च ।।६ ।।

ऋषि लोग, वेद, शास्त्र और समस्त महर्षि गायत्री को श्रद्धा से हृदय में धारण करते और उनकी स्तुति करते हैं।

ह्रीं श्रीं क्लीं चेति रूपैस्तु त्रिभिर्वा लोकपालिनी।
भासते सततं लोके गायत्री त्रिगुणात्मिका ।। ७ ।।

ह्रीं, श्रीं, क्लीं इन तीनों रूपों से संसार का पालन करने वाली त्रिगुणात्मक गायत्री संसार में निरन्तर प्रकाशित होती है।

गायत्र्यैव मता माता वेदानां शास्त्रसम्पदाम्।
चत्वारोऽपि समुत्पन्ना वेदास्तस्या असंशयम् ।।८ ।।

शास्त्रों की सम्पत्ति रूप वेदों की माता गायत्री ही मानी जाती है। निश्चित ये चारों ही वेद इस गायत्री से उत्पन्न हुए हैं।

परमात्मनस्तु या लोके ब्रह्म शक्तिर्विराजते।
सूक्ष्मा च सात्त्विकी चैव गायत्रीत्यभिधीयते ।।९ ।।

संसार में परमात्मा की जो सूक्ष्म और सात्त्विक ब्रह्मशक्ति विद्यमान है, वह ही गायत्री कही जाती है।

प्रभावादेव गायत्र्या भूतानामभिजायते।
अन्तःकरणेषु देवानां तत्त्वानां हि समुद्भवः ।।१० ।।

प्राणियों के अन्तःकरण में दैवी तत्त्वों का प्रादुर्भाव गायत्री के प्रभाव से ही होता है।

गायत्र्युपासनाकरणादात्मशक्तिर्विवर्धते ।
प्राप्यते क्रमशोऽजस्य सामीप्यं परमात्मनः ।।११ ।।

गायत्री की उपासना करने से आत्मबल बढ़ता है। धीरे-धीरे जन्म- बन्धन रहित परमात्मा की समीपता प्राप्त होती है।

शौचं शान्तिर्विवेकश्चैतल्लाभ त्रयमात्मिकम्।
पश्चादवाप्यते नूनं सुस्थिरं तदुपासकम् ।। १२ ।।

मन को वश में रखने वाली गायत्री के उस उपासक को उपासना के पश्चात् पवित्रता, शान्ति और विवेक- ये तीन आत्मिक लाभ प्राप्त होते हैं।

कार्येषु साहसः स्थैर्यं कर्मनिष्ठा तथैव च।
एते लाभाश्च वै तस्माज्जायन्ते मानसास्त्रयः ।।१३ ।।

कार्यों में साहस, स्थिरता और वैसी ही कर्तव्यनिष्ठा ये तीन मन सम्बन्धी लाभ उसको प्राप्त होते हैं।

पुष्कलं धन- संसिद्धिः सहयोगश्च सर्वतः।
स्वास्थ्यं वा त्रय एते स्युस्तस्माल्लाभाश्च लौकिकाः ।।१४ ।।

संतोषजनक धन की वृद्धि, सब ओर से सहयोग और स्वस्थता ये तीन सांसारिक लाभ उससे होते हैं।

काठिन्यं विविधं घोरं ह्यापदां संहतिस्तथा।
शीघ्रं विनाशतां यान्ति विविधा विघ्नराशयः ॥१५॥

नाना प्रकार की घोर कठिनाई और विपत्तियों का समूह, नाना प्रकार के विघ्नों के समूह इससे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

विनाशादुक्त शत्रूणामन्तः शक्तिर्विवर्धते।
संकटानामनायासं पारं याति तया नरः ॥१६॥

उपर्युक्त शत्रुओं के विनाश से आन्तरिक शक्ति बढ़ती है। आन्तरिक शक्ति से मनुष्य सहज ही संकटों से पार हो जाता है।

गायत्र्युपासकस्वान्ते सत्कामा उद्भवन्ति हि।
तत्पूर्तयेऽभिजायन्ते सहजं साधनान्यपि ॥१७॥

निश्चय ही गायत्री के उपासक के हृदय में सदिच्छाएँ पैदा होती हैं। उनकी पूर्ति के लिये सहज में साधन भी मिल जाते हैं।

त्रुटयः सर्वथा दोषा विघ्ना यान्ति यदान्तताम्।
मानवो निर्भयं याति पूर्णोन्नति पथं तदा ॥१८॥

जब सब प्रकार के दोष, भूलें और विघ्न विनाश को प्राप्त हो जाते हैं, तब मनुष्य निर्भय होकर पूर्ण उन्नति के मार्ग पर चलता है।

बाह्यंचाभ्यन्तरं त्वस्य नित्यं सन्मार्गगामिनः।
उन्नतेरुभयं द्वारं यात्युन्मुक्तकपाटताम् ॥१९॥

सर्वदा सन्मार्ग पर चलने वाले ऐसे व्यक्ति के बाह्य और भीतरी दोनों उन्नति के द्वार खुल जाते हैं।

अतः स्वस्थेन चित्तेन श्रद्धया निष्ठया तथा।
कर्त्तव्याविरतं काले गायत्र्याः समुपासना ॥२०॥

इसलिये श्रद्धा से, निष्ठा से तथा स्वस्थ चित्त से प्रतिदिन निरन्तर ठीक समय पर गायत्री की उपासना करनी चाहिये।

दयालुः शक्ति सम्पन्ना माता बुद्धिमती यथा।
कल्याणं कुरुते ह्येव प्रेम्णा बालस्य चात्मनः ॥२१॥
तथैव माता लोकानां गायत्री भक्तवत्सला।
विदधाति हितं नित्यं भक्तानां ध्रुवमात्मनः ॥२२॥

जैसे दयालु, शक्तिशालिनी और बुद्धियुक्त माता प्रेम से अपने बालक का कल्याण ही करती है, उसी प्रकार भक्तों पर प्यार करने वाली गायत्री संसार की माता है, वह अपने भक्तों का सर्वदा कल्याण ही करती है।

कुर्वन्नपि त्रुटीर्लोके बालको मातरं प्रति।
यथा भवति कश्चिन्न तस्या अप्रीतिभाजनः ॥२३॥
कुर्वन्नपि त्रुटीर्भक्तः क्वचित् गायत्र्युपासने।
न तथा फलमाप्नोति विपरीतं कदाचन ॥२४॥

जिस प्रकार संसार में माता के प्रति भूलें करता हुआ भी कोई बालक उस माता का शत्रु नहीं होता, उसी प्रकार गायत्री की उपासना करने में भूल करने पर कोई भक्त कभी भी विपरीत फल को नहीं प्राप्त होता।

अक्षराणां तु गायत्र्या गुम्फनं ह्यस्ति तद्विधम्।
भवन्ति जागृता येन सर्वा गुह्यास्तु ग्रन्थयः ॥२५॥

गायत्री के अक्षरों का गुम्फन इस प्रकार हुआ है कि जिससे समस्त गुह्य ग्रन्थियाँ जाग्रत् हो जाती हैं।

जागृता ग्रन्थयस्त्वेताः सूक्ष्माः साधकमानसे।
दिव्यशक्तिसमुद्भूतिं क्षिप्रं कुर्वन्त्यसंशयम् ॥२६॥

जाग्रत् हुई ये सूक्ष्म यौगिक ग्रन्थियाँ साधक के मन में निःसंदेह शीघ्र ही दिव्य शक्तियों को पैदा कर देती हैं।

जनयन्ति कृते पुंसामेता वै दिव्यशक्तयः।
विविधान् वै परिणामान् भव्यान् मंगलपूरितान् ॥२७।

ये दिव्य शक्तियाँ मनुष्यों के लिये नाना प्रकार के मंगलमय सुन्दर परिणामों को उत्पन्न करती हैं।

मन्त्रस्योच्चारणं कार्यं शुद्धमेवाप्रमादतः।
तदशक्तो जपेन्नित्यं सप्रणवास्तु व्याहृतीः ॥२८॥

आलस्य रहित होकर गायत्री मन्त्र का शुद्ध ही उच्चारण करना चाहिये। जो ऐसा करने में असमर्थ हों, वे केवल प्रणव (ॐ) सहित व्याहृतियों का जाप करें।

ओमिति प्रणवः पूर्वं भूर्भुवः स्वस्तदुत्तरम्।
एषोक्ता लघु गायत्री विद्वद्भिर्वेदपण्डितैः ॥२९॥

पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण करना चाहिये, तत्पश्चात् भूर्भुवः स्वः का यह पञ्चाक्षरी मन्त्र (ॐ भूर्भुवः स्वः) वेदज्ञ विद्वानों ने लघु गायत्री कहा है।

शुद्धं परिधानमाधाय शुद्धे वै वायुमण्डले।
शुद्ध देहमनोभ्यां वै कार्या गायत्र्युपासना ॥३०॥

शुद्ध वस्त्रों का धारण करके शुद्ध वायुमण्डल में देह एवं मन को शुद्ध करके गायत्री की उपासना करनी चाहिये।

दीक्षामादाय गायत्र्या ब्रह्मनिष्ठाग्रजन्मना।
आरभ्यतां ततः सम्यग्विधिनोपासना सता ॥३१॥

किसी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण से गायत्री की दीक्षा लेकर तब विधिपूर्वक उपासना आरम्भ करनी चाहिए।

गायत्र्युपासनामुक्त्वा नित्यावश्यककर्मसु।
उक्तस्तत्र द्विजातीनां नानध्यायो विचक्षणैः ॥३२॥

गायत्री उपासना को विद्वानों ने द्विजों के लिये अनिवार्य किसी भी दिन न छोड़ने योग्य, नित्य कर्म बताया है।

आराधयन्ति गायत्रीं न नित्यं ये द्विजन्मनः।
जायन्ते हि स्वकर्मभ्यस्ते च्युता नात्र संशयः ॥३३॥

जो द्विज गायत्री की नित्य प्रति उपासना नहीं करते, वे अपने कर्तव्य से च्युत हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है।

शूद्रास्तु जन्मना सर्वे पश्चाद्यान्ति द्विजन्मताम्।
गायत्र्यैव जनाः सार्कं ह्युपवीतस्य धारणात् ॥३४।

जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं, तत्पश्चात् मनुष्य गायत्री के सहित यज्ञोपवीत धारण करने से द्विजत्व को प्राप्त होता है।

उच्चता पतितानां च पापिनां पापनाशनम्।
जायेते कृपयैवास्याः वेदमातुरनन्तया ॥३५॥

पतितों को उच्चता और पापियों को उनके पापों का विनाश, ये दोनों कार्य इन वेदों की माता गायत्री की अनन्त कृपा से ही होते हैं।

गायत्र्या या युता संध्या ब्रह्मसंध्या तु सा मता।
कीर्तितं सर्वतः श्रेष्ठं तस्यानुष्ठानमागमैः ॥३६

जो सन्ध्या गायत्री से युक्त होती है, वह ब्रह्म सन्ध्या कहलाती है। शास्त्रों ने उसका उपयोग सबसे श्रेष्ठ बताया है।

आचमनं शिखाबंधः प्राणायामोऽघमर्षणम्।
न्यासश्चोपासनायां तु पंच कोषा मता बुधैः ॥३७॥

आचमन, चोटी बाँधना, प्राणायाम, अघमर्षण और न्यास, ये पाँच कोष विद्वानों ने गायत्री सन्ध्या की उपासना में स्वीकार किये हैं।

ध्यानतस्तु ततः पश्चात् सावधानेन चेतसा।
जप्या सततं तुलसी मालया च मुहुर्मुहुः ॥३८॥

सावधान चित्त से ध्यानपूर्वक गायत्री मन्त्र को सात्त्विक प्रयोजन के लिये तुलसी की माला पर जपना चाहिये।

एक वारं प्रतिदिनं न्यूनतो न्यूनसङ्ख्यकम्।
धीमान्मन्त्र शतं नूनं नित्यमष्टोत्तरं जपेत् ॥३९॥

प्रतिदिन कम से कम एक माला १०८ मन्त्रों का जप अवश्य ही करना चाहिये।

ब्राह्मे मुहूर्त्ते प्राङ्मुखो मेरुदण्डं प्रतन्य हि।
पद्मासनं समासीनः सन्ध्यावंदनमाचरेत् ॥४०॥

ब्राह्म मुहूर्त में पूर्वाभिमुख होकर, मेरुदण्ड को सीधा कर पद्मासन पर बैठकर सन्ध्यावन्दन करे।

दैन्यरुक् शोक चिंतानां विरोधाक्रमणापदाम्।
कार्यं गायत्र्यनुष्ठानं भयानां वारणाय च ॥४१॥

दीनता, रोग, शोक, विरोध, आक्रमण, आपत्तियाँ और भय; इनके निवारण के लिये गायत्री का अनुष्ठान करना चाहिये।

जायते सा स्थितिरस्मान्मनोऽभिलाषयान्विता।
यतः सर्वेऽभिजायन्ते यथा कालं हि पूर्णताम् ॥४२॥

इस अनुष्ठान से वह स्थिति पैदा होती है, जिससे समस्त मनोवांछित अभिलाषायें यथासमय पूर्णता को प्राप्त होती हैं।

अनुष्ठानात्तु वै तस्माद् गुप्ताध्यात्मिक-शक्तयः।
चमत्कारमया लोके प्राप्यन्तेऽनेकधा बुधैः ॥४३॥

इस अनुष्ठान से साधकों को संसार में चमत्कार से पूर्ण अनेक प्रकार की गुप्त आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

सपादलक्षमंत्राणां गायत्र्या जपनं तु वै।
ध्यानेन विधिना चैव ह्यनुष्ठानं प्रचक्षते ॥४४॥

विधि एवं ध्यानपूर्वक गायत्री के सवा लाख मन्त्रों का जप करना ही अनुष्ठान कहलाता है।

पञ्चम्यां पूर्णिमायां वा चैकादश्यां तथैव हि।
अनुष्ठानस्य कर्त्तव्यं आरम्भः फल-प्राप्तये ।।४५ ।।

पञ्चमी, पूर्णमासी और एकादशी के दिन अनुष्ठान का आरम्भ करना शुभ होता है।

मासद्वयेऽविरामं तु चत्वारिंशद् दिनेषु वा।
पूरयेत्तदनुष्ठानं तुल्यसंख्यासु वै जपन् ।।४६ ।।

दो महीने में अथवा चालीस दिनों में बिना नागा किये तथा नित्य समान संख्याओं में जप करता हुआ उस अनुष्ठान को पूर्ण करे।

तस्याः प्रतिमां सु संस्थाप्य प्रेम्णा शोभन-आसने।
गायत्र्यास्तत्र कर्त्तव्या सत्प्रतिष्ठा विधानतः ।।४७ ।।

प्रेम से सुन्दर और ऊँचे आसन पर गायत्री की प्रतिमा स्थापित करके, उसकी भली प्रकार प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

तद्विधाय ततो दीप-धूप-नैवेद्य-चन्दनैः।
नमस्कृत्याक्षतेनापि तस्याः पूजनमाचरेत् ।।४८ ।।

इस प्रकार से गायत्री की स्थापना करके, तदनन्तर उन्हें नमस्कार करके, दीपक, धूप, नैवेद्य और चन्दन तथा अक्षत इन सबसे पूजन करे।

पूजनानन्तरं विज्ञः भक्त्या तज्जपमारभेत्।
जपकाले तु मनः कार्यं श्रद्धान्वितमचञ्चलम् ।।४९ ।।

बुद्धिमानों को चाहिये कि वह पूजा के अनन्तर भक्ति से गायत्री का जप आरम्भ करें। जप के समय मन को श्रद्धा से युक्त और स्थिर कर लेना चाहिये।

कार्यतो यदि चोत्तिष्ठेन्मध्य एव ततः पुनः।
कर- प्रक्षालनं कृत्वा शुद्धैरंगैरुपाविशेत् ।।५० ।।

और यदि किसी काम से साधना समय के बीच में ही उठना पड़े, तो फिर पानी से हाथ मुँह धोकर बैठे।

आद्यशक्तिर्वेदमाता गायत्री तु मदन्तरे।
शक्तिकल्लोलसंदोहान् ज्ञानज्योतिश्च संततम् ।।५१ ।।
उत्तरोत्तरमाकीर्य प्रेरयन्ती विराजते।
इत्येवाविरतं ध्यायन् ध्यानमग्नस्तु तां जपेत् ।।५२ ।।

आद्यशक्ति, वेदों की माता स्वरूप गायत्री मेरे भीतर लगातार शक्ति की लहरों के समूहों को और ज्ञान के प्रकाश को उत्तरोत्तर फैलाकर प्रेरित करती हुई विद्यमान है, इस प्रकार से निरन्तर ध्यान करता हुआ निमग्न होकर उनका जाप करे।

चतुर्विंशतिलक्षाणां सततं तदुपासकः।
गायत्रीणामनुष्ठानाद् गायत्र्याः सिद्धिमाप्नुते ।।५३ ।।

गायत्री का उपासक निरन्तर चौबीस लाख गायत्री के मन्त्र जप का अनुष्ठान करने से गायत्री की सिद्धि को प्राप्त करता है।

साधनायै तु गायत्र्या निश्छलेन हि चेतसा।
वरणीयः सदाचार्यः साधकेन सुभाजनः ।।५४ ।।

गायत्री की साधना के लिये साधक को चाहिये कि वह श्रद्धा भक्ति के साथ योग्य श्रेष्ठ आचार्य को गुरु वरण करे और गायत्री की दीक्षा लेकर साधना आरंभ करे।

लघ्वनुष्ठानतो वापि महानुष्ठानतोऽथवा।
सिद्धिं विन्दति वै नूनं साधकः सानुपातिकाम् ॥५५ ॥

लघु अनुष्ठान करने से अथवा बृहत् अनुष्ठान करने से साधक, साधना में किये श्रम के अनुपात के अनुसार सिद्धि को प्राप्त करता है।

एक एव तु संसिद्धः गायत्री मन्त्र आदिशत्।
समस्तलोक-मन्त्राणां कार्य- सिद्धेस्तु पूरकः ॥५६ ॥

सिद्ध हुआ अकेला ही गायत्री मन्त्र संसार के समस्त मंत्रों द्वारा हो सकने वाले कार्यों को सिद्ध करने वाला माना गया है।

अनुष्ठानावसाने तु अग्निहोत्रो विधीयताम्।
यथाशक्ति ततो दानं ब्रह्मभोजस्ततः खलु ॥५७ ॥

अनुष्ठान के अनन्तर हवन करना चाहिये, तदनन्तर शक्ति के अनुसार दान और ब्रह्मभोज कराना चाहिये।

महामन्त्रस्य चाप्यस्य स्थाने स्थाने पदे पदे।
गूढानन्तोपदेशानां रहस्यं तत्र वर्त्तते ॥५८ ॥

इस महामन्त्र के अक्षर- अक्षर और पद- पद में रहस्य भरा हुआ है और अनन्त उपदेशों का समूह इस महामन्त्र में छिपा हुआ है।

यो दधाति नरश्चैतानुपदेशांस्तु मानसे।
जायते ह्युभयं तस्य लोकमानन्दसंकुलम् ॥५९ ॥

जो मनुष्य इन उपदेशों को मन में धारण करता है, उसके दोनों लोक आनन्द से व्याप्त हो जाते हैं।

समग्रामपि सामग्रीमनुष्ठानस्य पूजिताम्।
स्थाने पवित्र एवैतां कुत्रचिद्धि विसर्जयेत् ॥६० ॥

अनुष्ठान की समस्त पूजित सामग्री को कहीं पवित्र स्थान पर ही विसर्जित करना उचित है।

सत्पात्रो यदि वाचार्यो न चेत्संस्थापयेत्तदा।
नारिकेलं शुचिं वृत्वाचार्य- भावेन चासने ॥६१ ॥

अगर श्रेष्ठ एवं योग्य आचार्य न प्राप्त हो, तो पवित्र नारियल को आचार्य भाव से वरण करके आसन पर स्थापित करे।

प्रायश्चित्तं मतं श्रेष्ठं त्रुटीनां पापकर्मणाम्।
तपश्चर्यैव गायत्र्याः नातोऽन्यद् दृश्यते क्वचित् ॥६२ ॥

विभिन्न प्रकार की भूलों एवं पाप-कर्मों के प्रायश्चित्त के लिये गायत्री की तपश्चर्या सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है।

सेव्याः स्वात्मसमृद्ध्यर्थं पदार्थाः सात्त्विकाः सदा।
राजसाश्च प्रयोक्तव्याः मनोवांछित- पूर्तये ॥६३ ॥

आत्मा की उन्नति के लिये सतोगुणी पदार्थों का उपयोग करना चाहिये और मनोभिलाषाओं की पूर्ति के लिये रजोगुणी पदार्थ का उपयोग करना चाहिये।

प्रादुर्भावस्तु भावानां तामसानां विजायते।
तमोगुणानामर्थानां सेवनादिति निश्चयः ॥६४ ॥

तमोगुणी पदार्थों के उपयोग करने से, तमोगुणी भावों की उत्पत्ति होना निश्चित है।

मालासन-समिध्यज्ञ-सामग्र्यर्चन- संग्रहः ।
गुणत्रयानुसारं हि सर्वे वै ददते फलम् ।।६५ ।।

माला, आसन, हवन सामग्री, पूजा के पदार्थ जिस तत्त्व की प्रधानता वाले लिये जायेंगे, वे वैसे ही अपने गुणों के अनुसार फल को देते हैं ।

प्रादुर्भवन्ति वै सूक्ष्माश्चतुर्विंशति शक्तयः ।
अक्षरेभ्यस्तु गायत्र्या मानवानां हि मानसे ।।६६ ।।

मनुष्य के अन्तःकरण में गायत्री के चौबीस अक्षरों से चौबीस सूक्ष्म शक्तियाँ प्रकट होती हैं ।

मुहूर्ता योग-दोषा वा येऽप्यमंगलकारिणः ।
भस्मतां यान्ति ते सर्वे गायत्र्यास्तीव्रतेजसा ।।६७ ।।

अमंगल को करने वाले जो मुहूर्त अथवा योग दोष हैं, वे सब गायत्री के प्रचण्ड तेज से भस्म हो जाते हैं ।

एतस्मात्तु जपान्नूनं ध्यानमग्नेन चेतसा ।
जायते क्रमशश्चैव षट् चक्राणां तु जागृतिः ।।६८ ।।

निश्चय ही ध्यान में रत चित्त के द्वारा, इस जप को करने से धीरे-धीरे षट्- चक्र जाग्रत् हो जाते हैं ।

षट् चक्राणि यदैतानि जागृतानि भवन्ति हि ।
षट् सिद्धयोऽभिजायन्ते चक्रैरेतैर्नरस्य वै ।६९ ।।

जब ये षट्- चक्र जाग्रत् हो जाते हैं, तब मनुष्य को इन चक्रों के द्वारा छः सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

अग्निहोत्रं तु गायत्री मन्त्रेण विधिवत् कृतम् ।
सर्वेष्ववसरेष्वेव शुभमेव मतं बुधैः ।।७० ।।

गायत्री मन्त्र से विधिपूर्वक किया गया अग्निहोत्र सभी अवसरों पर विद्वानों ने शुभ माना है ।

यदावस्थासु स्याल्लोके विपन्नासु तदा तु सः ।
मौनं मानसिकं चैव गायत्री- जपमाचरेत् ।।७१ ।।

जब कोई मनुष्य विपन्न (सूतक, रोग, अशौच आदि) अवस्थाओं में हो, तब तक मौन मानसिक गायत्री जप करे ।

तदनुष्ठान- काले तु स्वशक्तिं नियमेज्जनः ।
निम्नकर्मसु ताः धीमान् न व्ययेद्धि कदाचन ।।७२ ।।

मनुष्य को चाहिये कि वह गायत्री साधना से प्राप्त हुई अपनी शक्ति को संचित रखे । बुद्धिमान् मनुष्य कभी भी उन शक्तियों को छोटे कार्यों में खर्च नहीं करते ।

नैवानावश्यकं कार्यमात्मोद्धार- स्थितेन च ।
आत्मशक्तेस्तु प्राप्तायाः यत्र-तत्र प्रदर्शनम् ।।७३ ।।

आत्मोद्धार के अभिलाषी मनुष्य को प्राप्त हुई अपनी शक्ति का जहाँ- तहाँ अनावश्यक प्रदर्शन नहीं करना चाहिये ।

आहारे व्यवहारे च मस्तिष्केऽपि तथैव हि ।
सात्त्विकेन सदा भाव्यं साधकेन मनीषिणा ।।७४ ।।

आहार में, व्यवहार में और उसी प्रकार मस्तिष्क में भी बुद्धिमान् साधक को सात्त्विक होना चाहिये ।

कर्त्तव्यधर्मतः कर्म विपरीतं तु यद् भवेत् ।
तत्साधकस्तु प्रज्ञावानाचरेन्न कदाचन ।।७५ ।।

जो काम कर्त्तव्य कर्म से विपरीत हो, वह कर्म बुद्धिमान् साधक कभी नहीं करें ।

पृष्ठतोऽस्याः साधनाया राजतेऽतितरं सदा।
मनस्विसाधकानां हि बहूनां साधनाबलम् ॥७६ ॥

इस साधना के पीछे आदिकाल से लेकर अब तक के असंख्य मनस्वी साधकों का साधन बल शोभित है।

अल्पीयस्या जगत्येवं साधनायास्तु साधकः।
भगवत्याश्च गायत्र्याः कृपां प्राप्नोत्यसंशयम् ॥७७ ॥

थोड़ी ही श्रम साधना से जगत् में ही साधक भगवती गायत्री माता की कृपा को प्राप्त कर लेता है।

प्राणायामे जपन् लोकः गायत्रीं ध्रुवमाप्नुते।
निग्रहं मनसश्चैव इन्द्रियाणां हि सम्पदाम् ॥७८ ॥

मनुष्य निश्चय पूर्वक प्राणायाम सहित गायत्री को जपता हुआ मन का निग्रह और इन्द्रियों की सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

मन्त्रं विभज्य भागेषु चतुर्षु सुबुधस्तदा।
रेचकं कुम्भकं बाह्यं पूरकं कुम्भकं चरेत् ॥७९ ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति मन्त्र को चारों भागों में विभक्त करके, तब रेचक, कुम्भक, पूरक और बाह्य कुम्भक को करे।

यथा पूर्वस्थितञ्चैव न द्रव्यं कार्य-साधकम्।
महासाधनतोऽप्यस्मान्नाज्ञो लाभं तथाप्नुते ॥८० ॥

जिस प्रकार धन पास में रखे रहने से ही कार्य सिद्ध नहीं हो जाता, उसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य इस महासाधना से लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

साधकः कुरुते यस्तु मन्त्रशक्तेरपव्ययः।
तं विनाशयति सैव समूलं नात्र संशयः ॥८१ ॥

जो साधक मन्त्र- शक्ति का दुरुपयोग करता है, उसको वह शक्ति ही समूल नष्ट कर देती है।

सततं साधनाभिर्यो याति साधकतां नरः।
स्वप्नावस्थासु जायन्ते तस्य दिव्यानुभूतयः ॥८२ ॥

जो मनुष्य निरन्तर साधना करने से साधकत्व को प्राप्त हो जाता है, उस व्यक्ति को स्वप्नावस्था में दिव्य अनुभव होते हैं।

सफलः साधको लोके प्राप्नुतेऽनुभवान् नवान्।
विचित्रान् विविधाँश्चैव साधनासिद्ध्यनन्तरम् ॥८३ ॥

संसार में सफल साधक नवीन और विचित्र प्रकार के विविध अनुभवों को साधना की सिद्धि के पश्चात् प्राप्त करता है।

भिन्नाभिर्विधिभिर्बुद्ध्या भिन्नासु कार्यपंक्तिषु।
गायत्र्याः सिद्धमन्त्रस्य प्रयोगः क्रियते बुधैः ॥८४ ॥

बुद्धिमान् पुरुष भिन्न-भिन्न कार्यों में गायत्री के सिद्ध हुए मन्त्र का प्रयोग भिन्न- भिन्न विधि से विवेकपूर्वक करता है।

चतुर्विंशतिवर्णैर्या गायत्री गुम्फिता श्रुतौ।
रहस्यमुक्तं तत्रापि दिव्यैः रहस्यवादिभिः ॥८५ ॥

वेद में जो गायत्री चौबीस अक्षरों में गूँथी गयी है, विद्वान् लोग इन चौबीस अक्षरों के गूँथने में बड़े-बड़े रहस्यों को छिपा बतलाते हैं।

रहस्यमुपवीतस्य गुह्याद् गुह्यतरं हि यत्।
अन्तर्हितं तु तत्सर्वं गायत्र्यां विश्वमातरि ॥८६ ॥

यज्ञोपवीत का जो गुह्य से गुह्य रहस्य है, वह सब विश्व-माता गायत्री में अन्तर्निहित है ।

अयमेव गुरोर्मन्त्रः यः सर्वोपरि राजते।
बिन्दौ सिंधुरिवास्मिंस्तु ज्ञानविज्ञानमाश्रितम् ॥८७ ॥

यह गायत्री ही गुरु- मन्त्र है, जो सर्वोपरि विराजमान है । एक बिन्दु में सागर के समान इस मन्त्र में समस्त ज्ञान और विज्ञान आश्रित है ।

आभ्यन्तरे तु गायत्र्या अनेके योगसञ्चयाः ।
अन्तर्हिता विराजन्ते कश्चिदत्र न संशयः ॥८८ ॥

गायत्री के अन्तर्गत अनेक योग समूह छिपे हुए रहते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

धारयन् हृदि गायत्रीं साधको धौतकिल्विषः ।
शक्तीरनुभवत्युग्राः स्वस्मिन्नेवह्यलौकिकाः ॥ ८९ ॥

पाप- रहित साधक हृदय में गायत्री को धारण करता हुआ अपनी आत्मा में अलौकिक तीव्र शक्तियों का अनुभव करता है ।

एतादृश्यस्तस्य वार्ता भासन्तेऽल्पप्रयासतः ।
यास्तु साधारणो लोको ज्ञातुमर्हति नैव हि ॥९० ॥

उसको थोड़े ही प्रयास से ऐसी-ऐसी बातें विदित हो जाती हैं , जिन बातों को सामान्य लोग जानने में समर्थ नहीं होते ।

एतादृश्यस्तु जायन्ते तन्मनस्यनुभूतयः ।
यादृश्यो न हि दृश्यन्ते मानवेषु कदाचन ॥९१ ॥

उसके मन में इस प्रकार के अनुभव होते हैं, जैसे अनुभव साधारण मनुष्यों में कभी नहीं देखे जाते ।

प्रसादं ब्रह्मज्ञानस्य येऽन्येभ्यो वितरन्त्यपि ।
आसादयन्ति ते नूनं मानवाः पुण्यमक्षयम् ॥९२ ॥

ब्रह्मज्ञान के प्रसाद को जो लोग दूसरों को भी बाँटते हैं, वे मनुष्य निश्चय ही अक्षय पुण्य को प्राप्त करते हैं ।

गायत्री संहिता ह्येषा परमानन्ददायिनी ।
सर्वेषामेव कष्टानां वारणायास्त्यलं भुवि ॥९३ ॥

यह 'गायत्री-संहिता' परम आनन्द को देने वाली है । समस्त कष्टों के निवारण के लिये पृथ्वी पर यह अकेली ही पर्याप्त है ।

श्रद्धया ये पठन्त्येनां चिंतयन्ति च चेतसा ।
आचरंत्यानुकूल्येन भवबाधां तरन्ति ते ॥९४ ॥

जो लोग इसको श्रद्धा से पढ़ते हैं और ध्यानपूर्वक इसका चिन्तन, मनन करते हैं तथा अपने विचार एवं कार्यों को इसके अनुकूल बना लेते हैं, वे लोग भव- बाधाओं से तर जाते हैं ।

गायत्री तन्त्र

गायत्री का गोपनीय वाम मार्ग

न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्यो विशेषत: ।
शिष्येभ्यो भक्तियुक्तेभ्यो ह्यन्यथा मृत्युमाप्नुयात् ।।

"दूसरे के शिष्य के लिये, विशेषकर भक्ति रहित के लिये, यह मन्त्र कभी नहीं देना चाहिये । इसकी शिक्षा भक्तियुक्त शिष्य को ही देनी चाहिये अन्यथा मृत्यु की प्राप्ति होती है ।

उपर्युक्त प्रमाण में यह बताया गया है कि तन्त्र एक गुप्त विज्ञान है । उसकी बातें सब लोगों के सामने प्रकट करने योग्य नहीं होतीं । कारण यह है कि तान्त्रिक साधनायें बड़ी क्लिष्ट होती हैं । वे उतनी ही कठिन हैं, जितना कि समुद्र के तले में घुसकर मोती निकालना । गोताखोर लोग जान को जोखिम में डालकर पानी में बड़ी गहराई तक नीचे उतरते हैं, तब बहुत प्रयत्न के बाद उन्हें कुछ मोती हाथ लगते हैं, परन्तु इस क्रिया में उन्हें अनेक बार जल- जन्तुओं का सामना करना पड़ता है । नट अपनी कला दिखाकर लोगों को मुग्ध कर देता है और प्रशंसा भी प्राप्त करता है, परन्तु यदि एक बार चूक जाए तो खैर नहीं ।

तन्त्र- प्रकृति से संग्राम करके उसकी शक्तियों पर विजय प्राप्त करना है । इसके लिये असाधारण प्रयत्न करने पड़ते हैं और उसकी असाधारण ही प्रतिक्रिया होती है । पानी में ढेला फेंकने पर वहाँ का पानी जोर से उछाल खाता है और एक छोटे विस्फोट जैसी स्थिति दृष्टिगोचर होती है । तान्त्रिक साधक भी एक रहस्यमय साधन द्वारा प्रकृति के अन्तराल में छिपी हुई शक्तियों को प्राप्त करने के लिये अपनी साधना का एक आक्रमण करता है । उसकी एक प्रतिक्रिया होती है, उस प्रतिक्रिया से कभी-कभी साधक के भी आहत हो जाने का भय रहता है ।

जब बन्दूक चलाई जाती है, तो जिस समय नली में से गोली बाहर निकलती है, उस समय वह पीछे की ओर एक झटका मारती है और भयंकर शब्द करती है । यदि बंदूक चलाने वाला कमजोर प्रकृति का है, तो उस झटके से पीछे की ओर गिर सकता है, धड़ाके की आवाज से डर या घबरा सकता है । चन्दन के वृक्षों के निकट सर्पों का निवास रहता है, गुलाब के फूलों में काँटे होते हैं, शहद प्राप्त करने के लिये मक्खियों के डंक का सामना करना पड़ता है, सर्पमणि प्राप्त करने के लिये भयंकर सर्प से और गजमुक्ता प्राप्त करने के लिये मदोन्मत्त हाथी से जूझना पड़ता है । तांत्रिक साधनायें ऐसे ही विकट पुरुषार्थ हैं, जिनके पीछे ख़तरों की श्रृंखला जुड़ी रहती है । यदि ऐसा न होता तो उन लाभों को हर कोई आसानी से प्राप्त कर लिया करता ।

तलवार की धार पर चलने के समान तंत्र- विद्या के कठिन साधन हैं । उनके लिये साधक में पुरुषार्थ, साहस, दृढ़ता, निर्भयता और धैर्य पर्याप्त होना चाहिये । ऐसे व्यक्ति सुयोग्य अनुभवी गुरु की अध्यक्षता में यदि स्थिर चित्त से श्रद्धापूर्वक साधना करें, तो वे अभीष्ट साधना में सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं । परन्तु यदि निर्बल मनोभूमि के डरपोक, सन्देहयुक्त स्वभाव वाले, अश्रद्धालु, अस्थिर मति वाले लोग किसी साधना को करें और थोड़ा-सा संकट उपस्थित होते ही उसे छोड़ भागें, तो वैसा ही परिणाम होता है, जैसा किसी सिंह, सर्प को पहले तो छेड़ा जाय, पर जब वह क्रुद्ध होकर अपनी ओर लपके तो लाठी-डण्डा फेंककर बेतहाशा भागा जाय । इस प्रकार छोड़कर भागने वाले मनुष्य के पीछे वह सिंह या सर्प अधिक क्रोधपूर्वक, अधिक साहस के साथ दौड़ेगा और उसे पछाड़ देगा । देखा गया है कि मनुष्य किसी भूत-पिशाच को वश में करने के लिये तान्त्रिक साधना करते हैं । जब उनकी साधना आगे बढ़ चलती है, तो ऐसे भय सामने आते हैं, जिनसे डर कर वे मनुष्य अपनी साधना छोड़ बैठते हैं । यदि उस साधक में साहस नहीं होता और किसी भयंकर दृश्य को देखकर डर जाता है, तो डराने वाली शक्तियाँ उसके ऊपर हमला बोल देती हैं, फलस्वरूप उसको भयंकर क्षति का सामना करना पड़ता है । कई व्यक्ति भयंकर बीमार पड़ते हैं, कई पागल हो जाते हैं, कई तो प्राणों तक से हाथ धो बैठते हैं ।

तन्त्र एक उत्तेजनात्मक उग्र प्रणाली है । इस प्रक्रिया के अनुसार जो साधना की जाती है, उससे प्रकृति के

अन्तराल में बड़े प्रबल कम्पन उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण ताप और विक्षोभ की मात्रा बढ़ती है। गर्मी के दिनों में सूर्य की प्रचण्ड किरणों के कारण जब वायुमण्डल का तापमान बढ़ जाता है, तो हवा कुछ तेज चलने लगती है। लू, आँधी और तूफान के दौरे बढ़ते हैं। उस उग्र उत्तेजना में खतरे बढ़ जाते हैं, किसी को लू सता जाती है, किसी की आँख में धूल भर जाती है, अनेकों के शरीर फोड़े-फुन्सियों से भर जाते हैं, आँधी से छप्पर उड़ जाते हैं, पेड़ उखड़ जाते हैं। कई बार हवा के भँवर पड़ जाते हैं, जो एक छोटे दायरे में बड़ी तेजी से नाचते हुए डरावनी शक्ल में दिखाई पड़ते हैं। तन्त्र की साधनाओं से ग्रीष्म काल का- सा उत्पात पैदा होता है और मनुष्य के बाह्य एवं आन्तरिक वातावरण में एक प्रकार की सूक्ष्म लू एवं आँधी चलने लगती है, जिसकी प्रचण्डता के झकझोरे लगते हैं। यह झकझोरे मस्तिष्क के कल्पना तन्तुओं से जब संघर्ष करते हैं, तो अनेकों प्रकार की भयंकर प्रतिमूर्तियाँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं। ऐसे अवसर पर डरावने भूत, प्रेत, पिशाच, देव, दानव जैसी आकृतियाँ दीख सकती हैं। दृष्टि-दोष उत्पन्न होने से कुछ का कुछ दिखाई दे सकता है। अनेकों प्रकार के शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्शों का अनुभव हो सकता है। यदि साधक निर्भयतापूर्वक इन स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं को देखकर मुस्कराता न रहे, तो उसका साहस नष्ट हो जाता है और उन भयंकरताओं से यदि वह भयभीत हो जाए, तो वह उसके लिये संकट बन सकती है।

इस प्रकार की कठिनाई का हर कोई मुकाबला नहीं कर सकता, इसके लिये एक विशेष प्रकार की साहसपूर्ण मनोभूमि होनी चाहिये। मनुष्य दूसरों के विषय में तो परीक्षा बुद्धि रखता है, पर अपनी स्थिति का ठीक परीक्षण कोई विरले ही कर सकते हैं। मैं तन्त्र साधनायें कर सकता हूँ या नहीं इसका निर्णय अपने लिये कोई मनुष्य स्वयं नहीं कर सकता। इसके लिये उसे किसी दूसरे अनुभवी व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। जैसे रोगी अपनी चिकित्सा स्वयं नहीं कर सकता, विद्यार्थी अपने आप शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता, वैसे ही तांत्रिक साधनायें भी अपने आप नहीं की जा सकतीं, इसके लिये किसी विज्ञ पुरुष को गुरु नियुक्त करना होता है। वह गुरु सबसे पहले अपने शिष्य की मनोभूमि का निरीक्षण करता है और तब उस परीक्षण के आधार पर निश्चित करता है कि इस व्यक्ति के लिये कौन साधना उपयोगी होगी और उसकी विधि में अन्यों की अपेक्षा क्या हेर-फेर करना ठीक होगा। साधना काल में जो विक्षेप आते हैं, उनका तात्कालिक उपचार और भविष्य के लिये सुरक्षा व्यवस्था बनाना भी गुरु के द्वारा ही सम्भव है। इसलिये तन्त्र की साधनायें गुरु परम्परा से चलती हैं। सिद्धि के लोभ से अनधिकारी साधक स्वयं अपने आप- उन्हें ऊट-पटाँग ढंग से न करने लग जायें- इसलिये उन्हें गुप्त रखा जाता है। रोगी के निकट मिठाइयाँ नहीं रखी जातीं, क्योंकि पचाने की शक्ति न होते हुए भी यदि लोभवश उसने उन्हें खाना शुरू कर दिया तो अन्ततः उसका अहित ही होगा।

तन्त्र की साधनायें सिद्ध करने के बाद जो शक्ति आती है उसका यदि दुरुपयोग करने लगे, तो उससे संसार में बड़ी अव्यवस्था फैल सकती है, दूसरों का अहित हो जाता है, अनधिकारी लोगों को अनावश्यक रीति से लाभ या हानि पहुँचाने से उनका अनिष्ट ही होता है। बिना परिश्रम के जो लाभ प्राप्त होता है, वह अनेक प्रकार के दुर्गुण पैदा करता है। जिसने जुआ खेलकर दस हजार रुपया कमाया है, वह उन रुपयों का सदुपयोग नहीं कर सकता और न उनके द्वारा वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार ईश्वरीय या राजकीय विधि से मिलने वाले स्वाभाविक दण्ड विधान से बचकर किसी को मन्त्र बल से, जो हानि पहुँचाई जा सकती है, वह गर्भपात के समान ही अहितकर होती है। तन्त्र में सफल हुआ व्यक्ति ऐसी गड़बड़ी पैदा कर सकता है। इसलिये हर किसी को उसकी साधना करने का अधिकार नहीं दिया गया है। वह तो एक विशेष मनोभूमि के व्यक्तियों के लिये सीमित क्षेत्र में उपयोग में आने वाली वस्तु है। इसलिये उसका सार्वजनिक प्रकाशन नहीं किया जा सकता। हमारे घर सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों के प्रयोग के लिये होते हैं, जो उनमें अधिकार पूर्वक रहते हैं। निजी घरों का प्रयोग धर्मशालाओं की तरह नहीं हो सकता और न हर कोई मनुष्य किसी के घर में प्रवेश कर सकता है। तन्त्र भी अधिकार सम्पन्न मनोभूमि वाले विशेष व्यक्तियों का घर है, उसमें हर व्यक्ति का प्रवेश नहीं है। इसलिये उसे नियत सीमा तक सीमित रखने के लिये गुप्त रखा गया है।

हम देखते हैं कि तन्त्र ग्रन्थों में जो साधन-विधियाँ लिखी गयी हैं, वे अधूरी हैं। उनमें दो ही बातें मिलती हैं- एक साधना का फल दूसरे साधन-विधि का कोई छोटा-सा अंग। जैसे एक स्थान पर आया है कि 'छोंकर की लकड़ी हवन करने से पुत्र की प्राप्ति होती है।' केवल इतने उल्लेख मात्र को पूर्ण समझकर जो छोंकर की लकड़ियों के गट्ठे भट्ठी में झोंकेगा, उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं होगी। मूर्ख लोग समझेंगे कि साधना विधि झूठी है। परन्तु इस शैली से वर्णन करने में तन्त्रकारों का मन्तव्य यह है कि साधना विधि का संकेत कायम रहे, जिससे इस विद्या का लोप न हो, वह विस्मृत न हो जाए। यह सूत्र प्रणाली है। व्याकरण आदि के सूत्र बहुत छोटे-छोटे होते हैं। उनमें अक्षर तो दस-दस या पाँच-पाँच ही होते हैं और अर्थ बहुत। वे लघु संकेत मात्र होते हैं, जिससे यदि काम करना पड़े तो समय पड़ने पर पूरी बात याद आ जाए। गुप्त कार्य करने वाले डाकू षड्यंत्रकारी या खुफिया पुलिस आदि के व्यक्ति भी कुछ ऐसे ही संकेत बना लेते हैं, जिनके द्वारा दो- चार शब्द कह देने मात्र से एक अर्थ समझ लिया जाता है।

"छोंकर के हवन से पुत्र प्राप्ति" इस संकेत सूत्र में एक भारी विधान छिपा हुआ है। किस मनोभूमि का मनुष्य किस समय, किन नियमों के साथ, किन उपकरणों के द्वारा, किन मन्त्रों से, कितना हवन करे, तब पुत्र की प्राप्ति हो, यह सब विधान उस सूत्र में छिपा कर रखा गया है। छिपाना इसलिये है कि अनधिकारी लोग उसका प्रयोग न कर सकें। संकेत रूप से कहा इसलिये गया है कि कालान्तर में इस तथ्य का विस्मरण न हो जाए, आधार रहने से आगे की बात का स्मरण हो आना सुगम होता है। तन्त्र ग्रन्थों में साधना विधियों को गुप्त रखने पर बार-बार जोर दिया गया है। साथ ही कहीं-कहीं ऐसी विधियाँ बताई गयी हैं, जो देखने में बड़ी सुगम मालूम पड़ती हैं, पर उनका फल बड़ा भारी कहा गया है। इस दशा में अनजान लोगों के लिये यह गोरखधन्धा बड़ा उलझन भरा हुआ है। वे कभी उसे अत्यंत सरल समझते हैं और कभी उसे असत्य मानते हैं, पर वस्तुस्थिति दूसरी ही है। संकेत सूत्रों की विधि से उन साधनाओं का वर्णन करके तंत्रकारों ने अपनी रहस्यवादी वृत्ति का परिचय दिया है।

गायत्री के दोनों ही प्रयोग हैं, दक्षिणमार्गी भी और वाममार्गी भी। वे योग भी हैं और तन्त्र भी। उससे आत्म-दर्शन और ब्रह्म-प्राप्ति भी होती है तथा सांसारिक उपार्जन और संहार भी। गायत्री योग दक्षिणमार्ग है- उस मार्ग से हमारे आत्मकल्याण का उद्देश्य पूरा होता है। गायत्री-तन्त्र वाममार्ग है- उससे सांसारिक वस्तुयें प्राप्त की जा सकती हैं और किसी का नाश भी किया जा सकता है। तन्त्र का विषय गोपनीय है, इसलिये गायत्री तन्त्र के ग्रन्थों से ऐसी अनेकों साधनायें प्राप्त होती हैं, जिनमें धन, संतान, स्त्री, आरोग्य, पद-प्राप्ति, रोग निवारण, शत्रु नाश, पाप नाश, वशीकरण आदि लाभों का वर्णन है और संकेत रूप से उन साधनाओं का एक अंश बताया गया है। परन्तु यह भली प्रकार स्मरण रखना चाहिये कि इन संक्षिप्त संकेतों के पीछे एक भारी कर्मकाण्ड एवं विधि-विधान है। वह पुस्तकों में नहीं, वरन् अनुभवी, साधना सम्पन्न व्यक्तियों से प्राप्त होता है।

तन्त्र-ग्रन्थों से संग्रह करके कुछ संकेत आगे के पृष्ठों पर दिये जाते हैं, जिससे पाठकों को गायत्री द्वारा मिल सकने वाले महान् लाभों का थोड़ा-सा परिचय प्राप्त हो जाए।

अथ गायत्रीतन्त्रम्

नारद उवाच—

नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समासतः।
शान्त्यादिकान्प्रयोगांस्तु वदस्व करुणानिधे !॥१॥

नारदजी ने प्रश्न किया- हे नारायण ! गायत्री के शान्ति आदि के प्रयोग को कहिये।

नारायण उवाच—

अतिगुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मतनूद्भव।
वक्तव्यं न कस्मैचिद् दुष्टाय पिशुनाय च॥२॥

यह सुनकर श्री नारायण ने कहा कि - हे नारद ! आपने अत्यन्त गुप्त बात पूछी है, परन्तु उसे किसी दुष्ट या पिशुन (छलिया) से नहीं कहना चाहिये ।

अथ शान्त्यर्थमुक्ताभिः समिद्भिर्जुहुयाद् द्विजः ।
शमी समिद्भिः शाम्यन्ति भूतरोगग्रहादयः ॥३ ॥

द्विजों को शान्ति प्राप्त करने के लिये हवन करना आवश्यक है तथा शमी की समिधाओं से हवन करने पर भूत-रोग एवं ग्रहादि की शान्ति होती है ।

आर्द्राभिः क्षीरवृक्षस्य समिद्भिर्जुहुयाद् द्विजः ।
जुहुयाच्छकलैर्वापि भूतरोगादिशान्तये ॥४ ॥

दूध वाले वृक्षों की आर्द्र समिधाओं से हवन करने पर ग्रहादि की शान्ति होती है । अतः भूत- रोगादि की शान्ति के लिये सम्पूर्ण प्रकार की समिधाओं से हवन करना आवश्यक है ।

जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शान्तिमाप्नुयात् ।
जानुघ्ने जले जप्त्वा सर्वान् दोषान् शमं नयेत ॥ ५ ॥

सूर्य को हाथों द्वारा जल से तर्पण करने पर शान्ति मिलती है तथा घुटनों पर्यन्त पानी में स्थिर होकर जपने से सब दोषों की शान्ति होती है ।

कण्ठदघ्ने जले जप्त्वा मुच्येत् प्राणान्तिकाद् भयात् ।
सर्वेभ्यः शान्तिकर्मभ्यो निमज्याप्सु जपः स्मृतः ॥६ ॥

कण्ठ पर्यन्त जल में खड़ा होकर जप करने से प्राणों के नाश होने का भय नहीं रहता, इसलिये सब प्रकार की शान्ति प्राप्त करने के लिये जल में प्रविष्ट होकर जप करना श्रेष्ठ है ।

सौवर्णे राजते वापि पात्रे ताम्रमयेऽपि वा ।
क्षीरवृक्षमये वापि निश्छिद्रे मृन्मयेऽपि वा ॥७ ॥
सहस्रं पंचगव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले ।
क्षीरवृक्षमयैः काष्ठैः शेषं सम्पादयेच्छनैः ॥८ ॥

सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, दूध वाले वृक्ष की लकड़ी से बने या छेद रहित मिट्टी के बर्तन में पञ्चगव्य रखकर दुग्ध वाले वृक्ष की लकड़ियों से प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिये ।

प्रत्याहुतिं स्पृशञ्जप्त्वा तद्गव्यं पात्रसंस्थितम् ।
तेन तं प्रोक्षयेद्देशं कुशैर्मन्त्रमनुस्मरन् ॥९ ॥

प्रत्येक आहुति में पञ्चगव्य को स्पर्श करना चाहिये तथा मन्त्रोच्चारण करते हुए कुशाओं द्वारा पञ्चगव्य ही से सम्पूर्ण स्थान का मार्जन करना चाहिये ।

बलिं प्रदाय प्रयतो ध्यायेत परदेवताम् ।
अभिचारसमुत्पन्ना कृत्या पापं च नश्यति ॥१० ॥

पश्चात् बलि प्रदान कर देवताओं का ध्यान करना चाहिये । इस प्रकार ध्यान करने से अभिचारोत्पन्न कृत्यों और पाप की शान्ति होती है ।

देवभूतपिशाचादीन् यद्येवं कुरुते वशे ।
गृहं ग्रामं पुरं राष्ट्रं सर्वं तेभ्यो विमुच्यते ॥११ ॥

देवता, भूत और पिशाच आदि को वश में करने के लिये भी उपर्युक्त कही हुई विधि करनी चाहिये । इस प्रकार की क्रिया से देवता, भूत, पिशाच सभी अपना-अपना घर, ग्राम, नगर और राज्य छोड़कर वश में हो जाते हैं ।

चतुष्कोणे हि गन्धेन मध्यतो रचितेन च।
मण्डले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा ॥१२ ॥
अभिमन्त्र्य सहस्रं तन्निखनेत्सर्वं सिद्धये।

चतुष्कोण मण्डल में गन्ध से शूल लिखकर और पूर्वोक्त विधि द्वारा सहस्र गायत्री का जप कर, गाढ़ देने पर सब प्रकार की सिद्धि मिलती है।

सौवर्णं, राजतं वापि कुम्भं ताम्रमयं च वा ॥१३ ॥
मृन्मयं वा नवं दिव्यं सूत्रवेष्टितमव्रणम् ॥
स्थण्डिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मन्त्रितैर्जलैः ॥१४ ॥
दिग्भ्य आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः ॥

सोना, चाँदी, ताँबा, मिट्टी आदि में से किसी एक का छेद रहित घड़ा लेकर सूत्र से ढक कर बालुका युक्त स्थान में स्थापित कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा चारों दिशाओं से लाये हुए जल से भरें।

एला, चन्दन, कर्पूर, जाती, पाटल, मल्लिकाः ॥१५ ॥
बिल्वपत्रं तथाक्रान्तां, देवीं व्रीहि यवांस्तिलान्।
सर्षपान् क्षीरवृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत् ॥१६ ॥

इलायची, चन्दन, कपूर, पाटल, बेला, बिल्व-पत्र, विष्णु-क्रान्ता, देवी (सहदेई), जौ, तिल, सरसों और दुग्ध निकालने वाले वृक्षों के पत्ते लेकर उसमें छोड़ें।

सर्वमेवं विनिक्षिप्य कुशकूर्चसमन्वितम्।
स्नातः समाहितो विप्रः सहस्रं मन्त्रयेद् बुधः ॥१७ ॥

इस प्रकार सबको छोड़कर कुशा की कूँची बनाकर तथा उसे भी घड़े में छोड़कर स्नान करके एक हजार बार मन्त्र का जप करना चाहिये।

दिक्षु सौरानधीयीरन् मन्त्रान् विप्रास्त्रयीविदः।
प्रोक्षयेत्पाययेदेनं नीरं तेनाभिषिंचयेत् ॥१८ ॥

धर्मादि के ज्ञाता ब्राह्मण द्वारा मन्त्रों से पूतीकृत इस जल से भूत आदि की बाधा से पीड़ित पुरुष के ऊपर मार्जन करे तथा पिलाए और गायत्री मन्त्र के साथ इसी जल से अभिषिंचन करे।

भूत रोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखीभवेत्।
अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्यगतो नरः ॥१९ ॥

इस प्रकार अभिषिंचन करने पर, मरणासन्न हुआ मनुष्य भी भूत व्याधि से मुक्त होकर सुखी हो जाता है।

अवश्यं कारयेद्विद्वान् राजा दीर्घं जिजीविषुः।
गावो देयाश्च ऋत्विग्भ्यो ह्यभिषेके शतं मुने ॥२०।
तेभ्यो देया दक्षिणा च यत् किञ्चिच्छक्ति- पूर्वकम्।
जपेदश्वत्थमालभ्य मन्दवारे शतं द्विजः ॥२१ ॥
भूतरोगाभिचारेभ्यो मुच्यते महतो भयाद्।

हे मुने ! अधिक समय तक जीने की इच्छा वाला विद्वान् राजा इस कार्य को अवश्य कराए तथा इस अभिषेक के समय ऋत्विजों को सौ गायों की दक्षिणा देनी चाहिये या ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने वाली दूसरी दक्षिणा देनी चाहिये अथवा अपनी शक्ति के अनुसार जो हो सके, वह देनी चाहिये। शनिवार के दिन जो ब्राह्मण, पीपल के नीचे बैठकर सौ बार जप करता है, वह निःसंदेह भूत बाधा आदि से विमुक्त होता है।

गुडूच्याः पर्व विच्छिन्नैर्जुहुयाद्दुग्ध-सिक्तकैः ।
द्विजो मृत्युञ्जयो होमः सर्व व्याधिविनाशनः ॥२२ ॥

जो द्विज गुर्च (गिलोय) की समिधाओं को दूध में डुबा-डुबाकर हवन करता है, वह सम्पूर्ण व्याधियों से छुटकारा पा जाता है । यह मृत्यु को जीतने वाला होम है ।

आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयसाज्वरशान्तये ॥२३ ॥

ज्वर की शान्ति हेतु, दूध में डालकर आम्र- पत्तों से द्विजों को हवन करना चाहिये ।

वचाभिः पयः सिक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत् ।
मधुत्रितय होमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ॥२४ ॥

दुग्ध में बच को अभिषिक्त कर, हवन करने से क्षय रोग विनष्ट होता तथा दुग्ध, दधि एवं घृत इन तीनों का अग्नि में हवन करने से राजयक्ष्मा का विनाश होता है ।

निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् ।
राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छान्तिमाप्नुयात् ॥२५ ॥

दूध की खीर बनाकर सूर्य को अर्पण करे तथा हवन से शेष बची हुई खीर को राजयक्ष्मा के रोगी को सेवन कराएँ, तो रोग की शान्ति होती है ।

लताः पर्वसु विच्छिद्य सोमस्य जुहुयाद् द्विजः ।
सोमे सूर्येण संयुक्ते प्रयोक्ताः क्षयशान्तये ॥२६ ॥

अमावस्या के दिन सोमलता (छेउटा) की डाली से होम करने पर क्षय रोग का निवारण होता है ।

कुसुमैः शंखवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत् ।
अपस्मार विनाशः स्यादपामार्गस्य तण्डुलैः ॥२७ ॥

शंख वृक्ष (कोडिला) के पुष्पों से यदि हवन किया जाए, तो कुष्ठ रोग का विनाश होता है तथा अपामार्ग के बीजों से हवन करने पर अपस्मार (मृगी) रोग का विनाश होता है ।

क्षीर वृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति ।
औदुम्बर - समिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत् ॥२८ ॥

क्षीर वृक्ष की समिधाओं से हवन करने पर उन्माद रोग नहीं रहता तथा औदुम्बर (गूलर) की समिधाओं से हवन किया जाए, तो महा-प्रमेह विनष्ट होता है ।

प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेन वा ।
मधुत्रितय होमेन नयेच्छान्तिं मसूरिकाम् ॥२९ ॥

प्रमेह की शान्ति के लिये मधु अथवा शर्बत से भी हवन करना चाहिये और मसूरिका रोग, मधुत्रय (दुग्ध, घृत, दधि) से हवन करने पर नहीं रहता ।

कपिला सर्पिषा हुत्वा नयेच्छान्तिं मसूरिकाम् ।
उदुम्बर - वटाऽश्वत्थैर्गोगजाश्वामयं हरेत् ॥३० ॥

कपिला गौ के घी से हवन करके भी मसूरिका को दूर करना चाहिये । गाय के सभी रोगों की शान्ति के लिये गूलर, हाथी के रोग निवारण के लिये वट और घोड़े के रोग दूर करने के लिये पिप्पल की समिधाओं से हवन करना लाभदायक है ।

पिपीलि मधुवल्मीके गृहे जाते शतं शतम् ।
शमी समिद्भिरन्नेन सर्पिषा जुहुयाद् द्विजः ॥३१ ॥

चींटी तथा शहद की मक्खियों द्वारा घर में छत्ता रख लेने पर शमी (छोंकर) की समिधाओं से हवन करना उत्तम है। साथ ही अन्न और घी भी होना चाहिये।

अभ्रस्तनित भूकम्पो समिद्भिर्वनवेतसः।
तदुत्थं शान्तिमायाति हूयात्तत्र बलिं हरेत् ॥३२॥

बिजली की कड़क से पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न होती हो, तो वनवेत की लकड़ियों से हवन करना चाहिए। इससे उत्पन्न भय शान्त होता है।

सप्ताहं जुहुयादेवं राष्ट्रे राज्ये सुखं भवेत्।
यां दिशं शतजप्तेन लोष्ठेनाभिप्रताडयेत् ॥३३॥
ततोऽग्निमारुतारिभ्यो भयं तस्य विनश्यति।
मनसैव जपेदेनां बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥३४॥

किसी भी दिशा में यदि दिग्दाह हो, तो सात दिन पर्यन्त मन्त्र जपकर उस दिशा में जिधर दाह होता है, ढेला फेंकना चाहिये। इस प्रकार शान्ति उत्पन्न होती है। एक सप्ताह तक इस क्रिया को करने से राज्य और राष्ट्र में सुख-समृद्धि होती है।

बन्धन में ग्रसित मनुष्य गायत्री मन्त्र का मन में ही जाप करने पर बन्धन मुक्त हो जाता है।

भूत रोग विषादिभ्यः व्यथितं जप्त्वा विमोचयेत्।
भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाभिमंत्रितम् ॥३५॥

भूत रोग तथा विष आदि से व्यथित पुरुष को गायत्री मन्त्र जपना चाहिये।

(कुश से जल को स्पर्श करता हुआ गायत्री मन्त्र का जप करे। फिर इस जल को भूत, प्रेत तथा पिशाच आदि की पीड़ा से पीड़ित मनुष्य को पिला दिया जाय तो वह रोगमुक्त हो जाता है।)

अभिमन्त्र्य शतं भस्मन्यसेद्भूतादिशान्तये।
शिरसा धारयेद् भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ॥३६॥

गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म लगाने से भूत-प्रेत की शान्ति होती है। मन्त्र का उच्चारण करते हुए अभिमन्त्रित भस्म को पीड़ित व्यक्ति के मस्तक और सिर में लगाना चाहिये।

अथ पुष्टिं श्रियं लक्ष्मीं पुष्पैर्हुत्वाप्नुयाद् द्विजः।
श्री कामो जुहुयात् पद्मैः रक्तैः श्रियमवाप्नुयात् ॥३७॥

श्री और सौन्दर्य की कामना करने वाले पुरुष को रक्त कमल के फूलों से हवन करने पर श्री की प्राप्ति होती है।

(लक्ष्मी की आकांक्षा करने वाले पुरुष को गायत्री मन्त्रोच्चारण के साथ पुष्पों से हवन करना चाहिये।)

हुत्वा श्रियमवाप्नोति जाती पुष्पैर्नवैः शुभैः।
शालितण्डुल होमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ॥३८॥

जाती (चमेली, मालती) के पुष्पों से हवन किया जाए, तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसलिये लक्ष्मी की अभिलाषा वाले पुरुष को नवीन जाति के पुष्पों से हवन करना चाहिये। शालि चावलों से हवन करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

श्रियमाप्नोति परमां मूलस्य शकलैरपि।
समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा ॥३९॥

बिल्व वृक्ष के जड़ की समिधा, खीर तथा घी इनसे हवन करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है अथवा केवल

जड़ का प्रयोग करने के स्थान में बिल्व वृक्ष की लकड़ी, पत्ते, पुष्प को लेकर सबको सुखा दें और कूट कर सामग्री बना लें, तब घी और खीर मिलाकर हवन करें।

शतं-शतं च सप्ताहं हुत्वाश्रियमवाप्नुयात्।
लाजैस्तु मधुरोपेतैर्होमे कन्यामवाप्नुयात् ॥४० ॥

मधुत्रय मिलाकर लाजा से सात दिन तक सौ-सौ आहुतियाँ देकर हवन करने पर सुन्दर कन्या की प्राप्ति होती है।

अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वाञ्छितम्।
हुत्वा रक्तोत्पलैः हेमं सप्ताहं प्राप्नुयात्खलु ॥४१ ॥

इस विधि से होम करने पर कन्या अति सुन्दर और अभीष्ट वर प्राप्त करती है। सात दिन पर्यन्त लाल कमल के फूलों से हवन करने पर सुवर्ण की प्राप्ति होती है।

सूर्यबिम्बे जलं हुत्वा जलस्थं हेममाप्नुयात्।
अन्नं हुत्वाप्नुयादन्नं ब्रीहीन्ब्रीहिपतिर्भवेत् ॥४२ ॥

सूर्य के मण्डल में जल छोड़ने से जल में स्थित सुवर्ण की प्राप्ति होती है। अन्न का होम करने पर अन्न की प्राप्ति होती है।

करीषचूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमवाप्नुयात्।
प्रियंगु पायसाज्यैश्च भवेद्धोमादिष्ट सन्ततिः ॥४३ ॥

बछड़े के सूखे गोबर के होम करने से पशुओं की प्राप्ति होती है। काकुनि की खीर व घृत के होम से अभीष्ट प्रजा की प्राप्ति होती है ॥४३ ॥

निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम्।
भोजयेत्तदृतुस्नातां पुत्ररत्नमवाप्नुयात् ॥४४ ॥

सूर्य को होम पूर्वक पायस अन्न अर्पण करके, ऋतुस्नान की हुई स्त्री को भोजन कराने से पुत्र की प्राप्ति होती है।

स प्ररोहाभिरार्द्राभिर्हुत्वा आयुष्यमाप्नुयात्।
समिद्भिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वाऽऽयुष्यमवाप्नुयात् ॥४५ ॥

पलाश की गीली समिधा से होम करने पर आयु की वृद्धि होती है। क्षीर वृक्षों की समिधा से हवन किया जाए, तो भी आयु-वृद्धि होती है।

स प्ररोहाभिरार्द्राभिर्युक्ताभिर्मधुरत्रयैः।
ब्रीहीणां च शतं हुत्वा हेमं चायुरवाप्नुयात् ॥४६ ॥

पलाश समिधा के तथा यवों के होम करने से, मधुत्रय से और ब्रीहियों से सौ आहुतियाँ देने से सुवर्ण और आयु की प्राप्ति होती है।

सुवर्ण कमलं हुत्वा शतमायुरवाप्नुयात्।
दूर्वाभिः पयसा वापि मधुना सर्पिषापि वा ॥४७ ॥
शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
शमीसमिद्भिरन्नेन पयसा वा च सर्पिषा ॥४८ ॥

सुवर्ण कमल के होम से पुरुष शतजीवी होता है। दूर्वा, दुग्ध, मधु (शहद) और घी से सौ-सौ आहुतियाँ देने पर, अकाल मृत्यु का भय नहीं रहता। शमी (छोंकर) की समिधाओं से, दूध से तथा घी से हवन करने पर भी अल्पमृत्यु होने का डर नहीं रहता।

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
न्यग्रोध समिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः ॥४९ ॥

वट वृक्ष की समिधाओं से सौ-सौ बार आहुति देने से भी अल्पमृत्यु का भय नहीं रहता।

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
क्षीराहारो जपेन्मृत्योः सप्ताहाद्विजयी भवेत् ॥५० ॥

केवल एक सप्ताह तक दुग्धाहार करके सौ-सौ आहुतियाँ दी जायें तो पुरुष मृत्युजित् हो जाता है।

अनश्नन्वाग्यतो जप्त्वा त्रिरात्रं मुच्यते यमात्।
निमज्याप्सु जपेदेवं सद्यो मृत्योर्विमुच्यते ॥५१ ॥

तीन रात्रि बिना खाये रहकर, मन्त्र जप करने पर मृत्यु के भय से भी मुक्त हो जाता है। जल में निमग्न होकर गायत्री जाप करने से तत्क्षण ही मृत्यु से विमुक्ति हो जाती है।

जपेद् बिल्वं समाश्रित्य मासं राज्यमवाप्नुयात्।
बिल्वं हुत्वाप्नुयाद् राज्यं समूलं फलपल्लवम् ॥५२ ॥

एक मास तक बिल्व वृक्ष के नीचे आसन लगाकर जप करने से राज्य की प्राप्ति होती है। बिल्व वृक्ष की जड़, फल, फूल और पत्तों से एक साथ हवन करने पर भी राज्य मिलता है।

हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकण्टकम्।
यवागूं ग्राममाप्नोति हुत्वा शालिसमन्वितम् ॥५३ ॥ - दे० भा० ११/२४/५५

एक मास पर्यन्त यदि कमल से हवन किया जाए, तो राज्य की प्रासि होती है। शालि से युक्त यवागु (जौ की खिचड़ी) से हवन किया जाय तो ग्राम की प्रासि होती है।

अश्वत्थ समिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात्।
अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥५४ ॥ - दे० भा० ११/२४/५६

पीपल की समिधाओं से हवन करने पर युद्ध में विजय प्राप्त होती है। आक की समिधाओं से हवन करने पर सर्वत्र ही विजय होती है।

संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वेतसस्य च।
पायसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥५५ ॥ - ११/२४/५७

वेत वृक्ष के फूलों से अथवा पत्र मिलाकर खीर से हवन करने पर वृष्टि होती है।

नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात्।
जले भस्म शतं हुत्वा महावृष्टिं निवारयेत् ॥५६ ॥ - ११/२४/५८

नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर एक सप्ताह तक गायत्री जपने से वृष्टि होती है और जल में सौ बार भस्म का हवन करने से अतिवृष्टि का निवारण होता है।

पलाशीभिरवाप्नोति समिद्भिर्ब्रह्मवर्चसम्।
पलाशकुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्टमवाप्नुयात् ॥५७ ॥ - ११.२४.५९

पलाश की समिधाओं से हवन करने पर ब्रह्मतेज की अभिवृद्धि होती है और पलाश के कुसुमों से हवन-करने पर अपने सभी इष्टों की उपलब्धि होती है।

पयोहुत्वाप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात्।
पीत्वाभिमंत्र्य सुरसं ब्राह्मया मेधामवाप्नुयात् ॥५८ ॥

दूध का हवन करने से तथा घृत की आहुतियाँ देने से बुद्धि-वृद्धि होती है। मंत्रोच्चारण करते हुए ब्रह्मी के रस का पान करने से चिरग्राहिणी बुद्धि होती है।

पुष्प होमे भवेद्वासस्तन्तुभिस्तद्विधं पटम्।
लवणं मधुना युक्तं हुत्वेष्टं वशमानयेत् ॥५९॥

पुष्प का होम करने पर वस्त्र और डोडों के होम से भी उसी प्रकार का वस्त्र मिलता है। नमक मिले हुए शहद से होम करने पर इष्ट वश में हो जाता है।

नयेदिष्टं वशं हुत्वा लक्ष्मी पुष्पैर्मधुप्लुतैः।
नित्यमञ्जलिनात्मानमभिसिंचन् जले स्थितः ॥६०॥

लक्ष्मी पुष्पों से मिले हुए शहद का हवन करने पर इष्ट वश में होता है। जल में स्थित होकर अञ्जलि द्वारा अपना अभिषेक करने (अञ्जलि से जल लेकर अपने ऊपर छिड़कने) से भी उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति होती है।

मतिमारोग्यमायुष्यन्नित्यं स्वास्थ्यमवाप्नुयात्।
कुर्याद्विप्रोऽन्यमुद्दिश्य सोऽपि पुष्टिमवाप्नुयात् ॥६१॥

नियमित हवन करने से मति, नीरोगिता, चिरायु और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। यदि ब्राह्मण किसी अन्य पुरुष के लिये करे, तो भी वह पुष्टि को प्राप्त होता है।

सुचारु विधिना मासं सहस्त्रं प्रत्यहं जपेत्।
आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम् ॥६२॥

उचित रीति से प्रतिदिन एक सहस्त्र जप, एक मास तक करने से आयु की वृद्धि होती है, बल बढ़ता है तथा यह दीर्घायु, बल और उत्तम देश को प्राप्त होता है।

आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः।
भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियै मासत्रयं जपेत् ॥६३॥

आयु और आरोग्य के अभिलाषायुक्त द्विज को, दो मास तक इसका जप करना चाहिये। दो मास तक जप करने पर, आयु और आरोग्य दोनों ही उपलब्ध होते हैं और लक्ष्मी की कामना के लिये तीन मास तक जप करना आवश्यक है।

आयुः श्रीपुत्र दाराद्याश्चतुर्भिश्च यशो जपात्।
पुत्र दारायुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पंचभिः ॥६४॥

चार मास तक जप करने से दीर्घायु, श्री (लक्ष्मी), स्त्री और यश की प्राप्ति होती है। पुत्र, कलत्र, आयु और आरोग्य, लक्ष्मी तथा विद्या की प्राप्ति हेतु पाँच मास तक जप करना चाहिये।

एवमेवोक्त- कामार्थं जपेन्मासैः सुनिश्चितैः।
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुः स्थित्वा निराश्रयः ॥६५॥

इस प्रकार उपर्युक्त वस्तुओं की प्राप्ति के लिये निर्दिष्ट मासों तक जप करना आवश्यक है। एक पैर पर बिना किसी का आश्रय लिये खड़े रह कर तथा ऊपर को भुजायें लम्बी कर जप करना चाहिये।

मासं शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्त्रं सर्वमाप्नुयात् ॥६६॥

इस प्रकार एक मास तक ३०० मन्त्र प्रतिदिन जाप करने पर सब कार्यों की सिद्धि प्राप्त होती है। इसी प्रकार ग्यारह सौ नित्य जपने से सर्व कार्य सम्पन्न हो जाते हैं।

रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम्।
यदिच्छेत्तदवाप्नोति सर्वं स्वाभीष्टमाप्नुयात् ॥६७॥

प्राण-अपान वायु को रोककर एक मास तक प्रतिदिन तीन सौ मन्त्र जपने से इच्छित वस्तु की उपलब्धि होती है।

एकपादो जपेदूर्ध्व बाहू रुध्वानिलं वशी।
मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः ॥६८ ॥

आकाश की ओर भुजा उठाए हुए और एक पैर के ऊपर खड़ा होकर साँस को यथाशक्ति अवरोध कर एक मास तक १०० मन्त्र प्रतिदिन जपने से अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती है, ऐसा कौशिक का मत है।

एवं शतत्रयं जप्त्वा, सहस्त्रं सर्वमाप्नुयात्।
निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं शतमिष्टमवाप्नुयात् ॥६९ ॥

जल के भीतर डुबकी लगाकर एक मास तक ३०० मन्त्र प्रतिदिन जप करने से सभी अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्त्रं सर्वमाप्नुयात्।
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वा निराश्रयः ॥७० ॥

इसी प्रकार १३०० मन्त्र प्रतिदिन जप करने से सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। जपने के समय एक पैर पर खड़े होकर आकाश की ओर बाहु लम्बी किये और बिना किसी का आश्रय लिये खड़ा होना चाहिये।

नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सरादृषितामियात्।
गीरमोघा भवेदेवं जप्त्वा सम्वत्सरद्वयम् ॥७१ ॥

इसी प्रकार एक पैर पर खड़े होकर रात्रि में हविष्यान्न खाकर एक वर्ष तक जप करने से मनुष्य ऋषि हो जाता है। इसी प्रकार दो वर्ष तक जप करने से वाणी अमोघ होती है।

त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत् त्रैकालदर्शनम्।
आयाति भगवान्देवश्चतुः सम्वत्सरं जपेत् ॥७२ ॥

तीन वर्ष तक इसी विधि के अनुसार जप करने से मनुष्य त्रिकालदर्शी हो जाता है और यदि चार वर्ष तक इसका जप उक्त विधि से किया गया, तो भगवान् ही निकट आ जाते हैं।

पञ्चभिर्वत्सरैरेवमणिमादियुतो भवेत्।
एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात् ॥ ७३ ॥

पाँच वर्ष पर्यन्त जप करते रहने से अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति होती है और छः वर्ष तक एक पाद पर स्थिर होकर ऊर्ध्व बाहु किये जप करने से इच्छा- रूप (जैसा वेश बनाने की इच्छा हो, वैसा ही रूप धारण कर लेना) हो जाता है।

सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् ।
मनुत्व-सिद्धिर्नवभिरिन्द्रत्वं दशभिर्भवेत् ॥७४ ॥

सात वर्ष तक जप करने से अमरता प्राप्त होती है अर्थात् देव-योनि मिल जाती है। नौ वर्ष पर्यन्त जप करने से मनु की पदवी और दस वर्ष में इन्द्रासन ही मिल जाता है।

एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं तु वत्सरैः।
ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशवत्सरान् ॥७५ ॥

ऐसे एक आसन के सहारे ग्यारह वर्ष तक जप किया जाय, तो मनुष्य प्रजापति के भाव को प्राप्त कर लेता है और बारह वर्ष पश्चात् तो ब्रह्मपद को ही प्राप्त कर लेता है।

एतेनैव जिता लोकास्तपसा नारदादिभिः।
शाकमन्येऽपरे मूलं फलमन्ये पयोऽपरे ॥७६ ॥

इसी तप से नारदजी आदि ऋषियों ने सम्पूर्ण लोकों को जीत लिया था, जिसमें कुछ शाकाहारी थे, दूसरे कन्द भोजी, कुछ फल खाने वाले और कुछ दूध पर निर्भर रहते थे।

घृतमन्येऽपरे सोममपरे चरुवृत्तयः ।
ऋषयः भैक्ष्यमश्नन्ति केचिद् भैक्षाशिनोऽहनि ॥७७ ।

कुछ घृताहारी, दूसरे सोमपान करने वाले, कुछ चरु ग्रहण करने वाले और कुछ ऐसे थे जो भिक्षान्न पर ही निर्वाह करते थे ।

हविष्यमपरेऽश्नन्तः कुर्वन्त्येवं परंतपः ।
अथ शुद्ध्यै रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद् द्विजः ॥७८ ॥

कुछ लोग हविष्य को खाते हुए महान् जप करते थे । द्विज को पापों के निवारणार्थ तीन सहस्र जप करना चाहिये ।

मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः ।
जपेन्मासं त्रिसहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात् ॥७९ ॥

यदि किसी द्विज के द्वारा सुवर्ण चुरा लिया गया हो, तो इस पाप से मुक्त होने के लिये, एक मास पर्यन्त जप करना चाहिये । जिस द्विज ने मदिरा पान कर लिया हो, तो उसे पूरे एक मास पर्यन्त ३००० मन्त्र प्रतिदिन जप करना चाहिये ।

मासं जपेत् त्रिसाहस्रं शुचिः स्याद् गुरुतल्पगः ।
त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन् ॥८० ॥
ब्रह्महत्योद्भवात्पापान्मुक्तिः कौशिकभाषितम् ।
द्वादशाहं निमज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥८१ ।

गुरु शय्यागामी को शुद्ध होने के लिये एक मास तक ३००० मंत्र का जप प्रतिदिन करना चाहिये । जंगल में कुटी बनाकर रहकर और तीन सहस्र प्रतिदिन जप करने से ब्रह्महत्या करने वाला हत्या रूपी महान् पातक से विमुक्त हो जाता है, ऐसा विश्वामित्र ने कहा है । बारह दिन तक जल में डुबकी लगाकर सहस्र गायत्री का जप करे ।

मुक्ताः स्युरघव्यूहाच्च महापातकिनो द्विजाः ।
त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥८२ ॥

उपर्युक्त जप को शुद्ध होकर प्राणायाम करके ३००० मन्त्र एक मास तक जपने से महान् पातक से भी छूट जाता है ।

महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते महतो भयात् ।
प्राणायाम-सहस्रेण ब्रह्महापि विशुध्यति ॥८३ ॥

महापातकी ही क्यों न हो, वह महान् भय से मुक्त हो जाता है । एक सहस्र प्राणायाम करने से ब्रह्मघाती भी विशुद्ध हो जाता है ।

षट् कृत्वो ह्यभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः ।
प्राणायामो भवेदेष सर्वपाप-प्रणाशनः ॥८४ ॥

छः बार प्राणापान को ऊपर करके जो प्राणायाम किया जाता है, वह सब पापों का विनाश करता है ।

सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात् ।
द्वादशाहं त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधे द्विजः ॥८५ ॥

राजा एक मास तक जपता हुआ पवित्रता को प्राप्त होता है और गो-हत्या हो जाने पर बारह दिन तक ३००० जप प्रतिदिन करे ।

अगम्यगमने स्तेये हननेऽभक्ष्यभक्षणे ।
दश साहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधयेत् द्विजम् ॥८६ ॥

अगम्य स्थान में गमन करना, चोरी, मारना, अभक्ष्य वस्तु का भक्षण कर लेना, इन दोषों को मिटाने के निमित्त दस हजार गायत्री का जप करना चाहिये । इससे द्विज की शुद्धि होती है ।

प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्विषात् ।
सर्वेषामेव पापानां संकरे सति शुद्धये ॥८७ ॥

सम्पूर्ण पापों से एक साथ ही दूषित होने पर अथवा जब किसी पुरुष को एक साथ ही अनेक पापों ने दोषयुक्त बना दिया हो, तो सौ प्राणायाम कर इन पापों से मुक्त होना चाहिये ।

सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्य जापी वने वसन् ।
उपवाससमो जापस्त्रिसहस्रं तदित्यृचः ॥८८ ॥

वन में बसकर हजार जप करता हुआ एक मास तक ठहरे, इससे सभी कल्मष दूर होते हैं । तीन हजार जप करने से एक उपवास के समान पुण्य मिलता है ।

चतुर्विंशति साहस्रमभ्यस्ता कृच्छ्रसंज्ञिता ।
चतुष्षष्टिः सहस्राणि चान्द्रायणसमानि तु ॥८९ ॥

चौबीस सहस्र जप करने से एक कृच्छ्र के समान और चौंसठ हजार का फल एक चान्द्रायण व्रत के समान होता है ।

शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य सन्ध्ययोः ।
तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम् ॥९० ।

प्रातः और सायं- दोनों सन्ध्याओं में सौ-सौ बार जपने से सभी पाप छूट जाते हैं ।

निमज्याप्सु जपेन्नित्यं शतकृत्वस्तदित्यृचम् ।
ध्यायेद् देवीं सूर्यरूपां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९१ ॥

जल में निमग्न होकर एक शत, गायत्री नित्य जप करके सब पापों से मुक्त हों । जप करते समय सूर्य-रूपी गायत्री का ध्यान करते रहें ।

इति मे सम्यगाख्याताः, शान्ति-शुद्ध्यादि कल्पनाः ।
रहस्यातिरहस्याश्च गोपनीयास्त्वया सदा ॥९२ ॥

हे नारदजी ! यह हमने आपसे शान्ति शुद्ध्यादि-कल्पना रहस्य कहा है । यह रहस्य का भी रहस्य है, यह आपको सदैव गुप्त रखने योग्य है ।

इति संक्षेपतः प्रोक्तः सदाचारस्य संग्रहः ।
विधिनाचरणादस्य माया दुर्गा प्रसीदति ॥९३ ॥

यह सदाचार का संग्रह आपको संक्षेप से सुनाया । इसका विधिपूर्वक आचरण करने से माया, दुर्गा प्रसन्न होती हैं ।

नैमित्तिकं च नित्यं च काम्यं कर्म यथाविधि ।
आचरेन्मनुजः सोऽयं मुक्तिभुक्तिफलाप्तिभाक् ॥९४

नित्य, नैमित्तिक कर्म जो यथाविधि करता है, वह पुरुष भक्ति और मुक्ति दोनों का अधिकारी होता है ।

आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी ।
इत्युक्तं सर्वशास्त्रेषु सदाचार-फलं महत् ॥९५ ॥

आचार को प्रथम धर्म कहा है तथा धर्म की स्वामिनी देवी को कहा है । यही सम्पूर्ण शास्त्रों में बतलाया गया है कि सदाचार के समान कोई भी वस्तु महान् फलदायिनी नहीं है ।

आचारवान्सदा पूतः सदैवाचारवान्सुखी ।
आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद ।।९६ ।।

सदाचारी पुरुष सदा पवित्र और सदा सुखी होता है । हे नारद ! इसमें असत्य नहीं है कि सदाचारयुक्त पुरुष धन्य होता है ।

देवीप्रसाद-जनकं सदाचार - विधानकम् ।
श्रावयेत् शृणुयान्मर्त्यो महासम्पत्तिसौख्यभाक् ।।९७ ।।

जो देवी के प्रसादजनक सदाचार विधि को सुनता और सुनाता है, वह सब प्रकार से धनी और सुख का भागी होता है ।

जप्यं त्रिवर्ग संयुक्तं गृहस्थेन विशेषतः ।
मुनीनां ज्ञानसिद्ध्यर्थं यतीनां मोक्षसिद्धये ।।९८ ।।

विशेषतः जप करने वाले गृहस्थों को त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति होती है । मुनियों को ज्ञान-सिद्धि तथा यतियों को मोक्ष की सिद्धि होती है ।

त्रिरात्रोपोषितः सम्यग्घृतं हुत्वा सहस्रशः ।
सहस्रं लाभमाप्नोति हुत्वाग्नौ खदिरेन्धनम् ।।९९ ।।

तीन रात उपवास करके अच्छी प्रकार से हजार घी की आहुति, खदिर की समिधाओं से अग्नि में देने पर बहुसंख्यक धन-प्राप्ति का लाभ होता है ।

पलाशैर्हि समिद्भिश्च घृताक्तैस्तु हुताशने ।
सहस्रं लाभमाप्नोति राहुसूर्य-समागमे ।।१०० ।

घृतयुक्त पलाश की समिधायें सूर्यग्रहण के समय अग्नि में हवन करने से सहस्र धन की प्राप्ति होती है ।

हुत्वा तु खदिरं वह्नौ घृताक्तं रक्तचन्दनम् ।
सहस्रं हेममाप्नोति राहुचन्द्र-समागमे ।।१०१ ।।

खदिर तथा रक्त चन्दन को घृतयुक्त करके चन्द्रग्रहण के अवसर पर अग्नि में हवन करने से सहस्र स्वर्ण की प्राप्ति होती है ।

रक्तचन्दन-चूर्णं तु सघृतं हव्यवाहने ।
हुत्वा गोमयमाप्नोति सहस्रं गोमयं द्विजः ।।१०२ ।।

रक्त चन्दन को घी में भिगोकर अग्नि में हजार बार आहुति देने से घी, दूध आदि गोमय की कमी नहीं रहती ।

जाती-चम्पक-राजार्क-कुसुमानां सहस्रशः ।
हुत्वा वस्त्रमवाप्नोति घृताक्तानां हुताशने ।।१०३ ।।

जाती, चम्पक, राजार्क के फूलों को घृतयुक्त करके अग्नि में हवन करने से वस्त्र प्राप्त होते हैं ।

सूर्यमण्डल-विम्बे च हुत्वा तोयं सहस्रशः ।
सहस्रं प्राप्नुयाद्धेमं रौप्यमिन्दुमये हुते ।।१०४ ।।

जब सूर्य मण्डल का विम्ब मात्र झलक रहा हो अर्थात् सूर्योदय हो रहा हो, उस समय हजार बार तर्पण करने तथा सूर्योदय से पूर्व चन्द्रकाल में एक हजार आहुतियाँ देने से सोना, चाँदी की प्राप्ति होती है ।

अलक्ष्मीपाप-संयुक्तो मलव्याधि-समन्वितः ।
मुक्तः सहस्रजाप्येन स्नायाद्यस्तु जलेन वै ।।१०५ ।।

जल में स्नान करके एक हजार बार जप करने से अलक्ष्मी, पाप, मल, व्याधि नष्ट हो जाते हैं ।

गोघृतेन सहस्रेण लोध्रेण जुहुयाद्यदि।
चौराग्निमारुतोत्थानि भयानि न भवन्ति वै ॥१०६॥

लोध को गो-घृत में मिलाकर हजार बार होमने से चोर, अग्नि, वायु के उपद्रवों का भय नष्ट हो जाता है।

क्षीराहारो जपेल्लक्षमपमृत्युमपोहति।
घृताशी प्राप्नुयान्मेधां बहु विज्ञान संचयाम् ॥१०७॥

दूध पीकर एक लक्ष गायत्री का जप करने से अकाल मृत्यु का डर चला जाता है। घी खाने वाला मेधा प्राप्त करता है, जिससे बहुत प्रकार के विज्ञान का संचय होता है।

हुत्वा वेतसपत्राणि घृताक्तानि हुताशने।
लक्षाधिपस्य पदवीमाप्नोतीति न संशयः ॥१०८॥

वेतस पत्रों को घी में मिलाकर अग्नि में हवन करने से लक्षाधिपति की पदवी प्राप्त हो जाती है।

लाक्षा भस्म होमञ्च कृत्वा ह्युत्तिष्ठते जलात्।
आदित्याभिमुखं स्थित्वा नाभि मात्रजले शुचौ ॥१०९॥
गर्भपातादि प्रदराश्चान्ये स्त्रीणां महारुजः।
नाशमेष्यन्ति ते सर्वे मृतवत्सादि दुःखदाः ॥११०॥

जल में स्थिर होकर लाख की भस्म की आहुति दे तथा सूर्य के सम्मुख नाभिमात्र जल में शुद्ध होकर खड़ा रहे तो गर्भपात, प्रदर, मृत सन्तान की उत्पत्ति आदि स्त्री सम्बन्धी महारोग दूर हो जाते हैं।

तिलानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने।
सर्वकामसमृद्धात्मा परं स्थानमवाप्नुयात् ॥१११॥

घी मिलाकर तिलों से अग्नि में एक लाख बार हवन करने से सब कामनाओं की सिद्धि होती है तथा परम स्थान की प्राप्ति होती है।

यवानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने।
सर्वकामसमृद्धात्मा परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥११२॥

यवों में घी मिलाकर एक लाख बार अग्नि में आहुति देने से सब कर्मों की सिद्धि होती है तथा परासिद्धि प्राप्त होती है।

घृतस्याहुतिलक्षेणसर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
पञ्चगव्याशनो लक्षं जपेच्चाति स्मृतिर्भवेत् ॥११३॥

एक लाख बार घी की आहुति देने से सब कामों की सिद्धि होती है। पञ्चगव्य पीकर एक लाख जप करने से स्मृति की वृद्धि होती है।

अन्नादि-हवनान्नित्यमन्नादिश्च भवेत्सदा।
तदेव ह्यनले हुत्वा प्राप्नोति बहुसाधनम् ॥११४॥

इसी प्रकार अन्नादि से नित्य हवन करने से अन्नादि प्राप्त होता है और अग्नि में आहुति देने से बहुत-सा साधन-सामान प्राप्त होता है।

लवणं मधुसंयुक्तं हुत्वा सर्ववशी भवेत्।
हुत्वा तु करवीराणि रक्तानि ज्वालयेज्ज्वरम् ॥११५।

नमक और मधु मिलाकर हवन करने से सब वश में हो जाते हैं। ज्वर नष्ट करने के लिये लाल कनेर के फूलों से हवन करना चाहिये।

हुत्वा भल्लातकं-तैलं देशादेव प्रचालयेत्।
हुत्वा तु निम्ब-पत्राणि विद्वेषं शमयेन्नृणाम् ॥११६ ॥

भिलावे के तेल द्वारा हवन करने से उच्चाटन हो जाता है। नीम के पत्तों के हवन करने से विद्वेष दूर हो जाता है।

सुरक्तान्तण्डुलान्नित्यं घृताक्तान् च हुताशने।
हुत्वा बलमवाप्नोति शत्रुभिर्न स जीर्यते ॥११७ ॥

लाल चावलों को घी में मिलाकर अग्नि में हवन करने से बल की प्राप्ति होती है और शत्रुओं का क्षय होता है।

प्रत्यानयन-सिद्ध्यर्थं मधुसर्पिः समन्वितम्।
गवां क्षीरं प्रदीप्तेऽग्नौ जुह्वतस्तत्प्रशाम्यति ॥११८ ॥

मधु, घी संयुक्त करके किसी को वापस बुलाने के लिये हवन करना चाहिये। गाय के दूध का अग्नि में हवन करने से शान्ति का निवास हो जाता है।

ब्रह्मचारी जिताहारो यः सहस्त्रत्रयं जपेत्।
सम्वत्सरेण लभते धनैश्वर्यं न संशयः ॥११९ ॥

आहार जीतकर जो ब्रह्मचारी तीन हजार गायत्री जप करता है, वह वर्ष में धन, ऐश्वर्य आदि प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है।

शमीबिल्वपलाशानामर्कस्य तु विशेषतः।
पुष्पाणां हि समिद्भिश्च हुत्वा हेममवाप्नुयात् ॥१२० ॥

शमी, बिल्व, पलाश और खासतौर से अर्क या आक के पुष्पों की समिधा बनाकर जो हवन करते हैं, उन्हें स्वर्ण की प्राप्ति होती है।

आब्रह्म त्र्यम्बकाद्यन्तं यो हि प्रयतमानसः।
जपेल्लक्षं निराहारः गायत्री वरदा भवेत् ॥१२१ ॥

"आब्रह्म...से त्र्यम्बकं यजामहे"...तक एक लाख बार निराहार होकर जपने से गायत्री वरदा हो जाती है।

महारोगा विनश्यन्ति लक्ष जप्यानुभावतः।
स्नात्वा तथैव गायत्र्याः शतमन्तर्जले जपेत् ॥१२२ ॥

भावनापूर्वक एक लाख बार गायत्री जपने से महारोग नष्ट हो जाते हैं तथा स्नान करके जल के भीतर सौ बार जप करने से भी रोग दूर होते हैं।

स्वर्णहारी, तैलहारी, यस्तु विप्रः सुरां पिबेत्।
चन्दनद्वय-संयुक्तं कर्पूरं तण्डुलं यवम् ॥१२३ ॥
लवंगं सुफलं चाज्यं सितां चाम्रस्य दारुकम्।
जुहुयाद्विधिरुक्तोऽयं गायत्र्याः प्रीतिकारकः ॥१२४ ॥

स्वर्ण, तेल की चोरी करने तथा सुरा पीने का पाप नष्ट होने के लिये विप्र दोनों चन्दन, कपूर, चावल, यव, लवंग, नारियल, आज्य, मिश्री, आम की लकड़ी इन सबसे हवन करे। इस सामग्री से किया हुआ हवन गायत्री को प्रिय है।

क्षीरोदनं तिलान्दूर्वां क्षीरद्रुमसमिद्वरान्।
पृथक् सहस्त्रत्रितयं जुहुयान्मन्त्र-सिद्धये ॥१२५ ॥

प्रणवयुक्त २४ लाख गायत्री जप, जपसिद्धि के लिये पृथक् दूध, भात, तिल, दूर्वा, बरगद, गूलर आदि दूध वाले वृक्षों की समिधाओं से तीन हजार गायत्री का हवन करे।

तत्त्वसंख्या सहस्राणि मन्त्रविज्जुहुयात्तिलैः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुः स विन्दति ।।१२६ ।।

तिलों से २४ हजार आहुति देने वाला समस्त पापों से रहित हो दीर्घायु हो जाता है।

आयुषे साज्यहविषा केवलेनाथ सर्पिषा ।
दूर्वाक्षीरतिलैर्मन्त्री जुहुयात्त्रिसहस्रकम् ।।१२७ ।।

आयु की कामना से घृतयुक्त सामग्री अथवा केवल घृत से, खीर से, दूध और तिलों से तीन हजार आहुति दे।

अरुणाब्जैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयादयुतं ततः ।
महालक्ष्मीर्भवेत्तस्य षण्मासान्न संशयः ।।१२८ ।।

तदनन्तर लाल कमलों से, त्रिमधु-युक्त दश हजार आहुति दे, तो छः महीने में महान् धनवान् हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ।।१२९ ।।

जो मनुष्य प्रणव, व्याहृति तथा शिर सहित गायत्री मन्त्र का जप करते हैं, उनको कहीं पर भी भय नहीं होता है।

शतं जप्ता तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी।
सहस्त्रं जप्ता सा देवी सर्वकल्मषनाशिनी ।।१३० ।।

सौ बार गायत्री का जप करने से दिन भर का पाप नष्ट होता है और हजार बार जपने से अनेक पातकों से मुक्त हो जाता है।

दशसहस्त्र जप्तासा पातकेभ्यः समुद्धरेत्।
स्वर्णस्तेयकृद्यो विप्रो ब्राह्मणो गुरुतल्पगः ।।१३१ ।।

दस हजार बार गायत्री जपने से सोने की चोरी करने तथा गुरु की स्त्री से गमन करने के पापों से मुक्त हो जाता है।

सुरापश्च विशुध्येत लक्षजापात्र संशयः।
प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ।।१३२ ।।

स्नान-काल में तीन बार प्राणायाम कर यदि गायत्री का एक लाख जप करे, तो मदिरापान के दोष से छूट जाता है।

अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते।
प्राणायामैः षोडशभिर्व्याहृतिप्रणवान्वितैः ।।१३३ ।।

प्रणव, महाव्याहृतिपूर्वक यदि प्राणायाम सोलह बार करे तो तत्क्षण ही रात-दिन के पाप से छूट जाता है।

भ्रूणहत्यायुतं दोषं पुनाति सहस्त्रं जपात्।
हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ।।१३४ ।।

एक हजार नित्य गायत्री का जप, एक मास तक करने से भ्रूण हत्या के दोष को भी नाश कर देता है। विशेषकर गायत्री मन्त्र द्वारा हवन करने से समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला।
शान्तिकामस्तु जुहुयात् सावित्रीमक्षतैः शुचिः ॥१३५॥

गायत्री समस्त पापनाशिनी और वर देने वाली तथा भक्तों पर कृपा करने वाली है। अतः शान्ति की कामना करने वाला पुरुष पवित्र होकर चावलों से गायत्री मन्त्र द्वारा हवन करे।

हन्तुकामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा।
श्रीकामस्तु तथा पद्मैर्बिल्वैः काञ्चनकामुकः ॥१३६॥

अपमृत्यु को नाश करने की इच्छा वाला पुरुष घृत द्वारा, शोभा की इच्छा करने वाला पद्मों से और सोने की इच्छा करने वाला बेलपत्तों द्वारा गायत्री मन्त्र का हवन करे।

ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा।
घृताप्लुतैस्तिलैरग्नौ जुहुयात्सुसमाहितः ॥१३७॥

ब्रह्म-तेज की कामना करने वाला व्यक्ति सावधानीपूर्वक घृतयुक्त तिलों से और घी से हवन करे।

गायत्र्ययुत-होमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते।
पापात्मा लक्ष-होमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥१३८॥

दस हजार गायत्री के हवन करने से पापमुक्त हो जाता है और एक लाख बार हवन करने से पापी पुरुष बड़े पाप से छूट जाता है।

इष्ट लोकमवाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम्।
गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥१३९॥

गायत्री वेदों की माता एवं पाप नाश करने वाली है। अतः गायत्री की उपासना करने वाला व्यक्ति इच्छित लोकों को प्राप्त करता है।

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।
नोच्चैर्जपमतः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥१४०॥

उपांशु (जिसमें होठ मात्र हिलें) भाव से जपने पर सौ गुना फल प्राप्त होता है और मन में जपने से हजार गुना फल होता है। अतः गायत्री का जप विशेषतया उच्च स्वर में न करे।

सावित्रीजाप-निरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः।
गायत्रीजाप-निरतो मोक्षोपायं च विन्दति ॥१४१॥

गायत्री जपने वाला पुरुष स्वर्ग को प्राप्त करता है और मोक्ष को भी प्राप्त करता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः।
गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनी ॥१४२॥

इस कारण से समस्त प्रयत्नों द्वारा स्नान कर स्थिर चित्त हो सर्व पाप-नाश करने वाली गायत्री का जप करे।

एवं यः कुरुते राजा लक्षहोमं यतव्रतः।
न तस्य शत्रवः संख्ये अग्रे तिष्ठन्ति कर्हिचित् ॥१४३॥

जो राजा व्रतपूर्वक गायत्री का एक लक्ष होम करता है, उसके शत्रु युद्ध-भूमि में उसके आगे कदापि नहीं ठहरते।

नाकाल-मरणं देशे व्याधिर्वा जायते तथा।
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः ॥१४४॥

उसके देश में अकाल-मृत्यु तथा व्याधि का कभी भय नहीं रहता। अतिवर्षण, अवर्षण, मूषक, शलभ (टिड्डी आदि) पक्षियों से रक्षा भी होती है।

राक्षसाद्याः विनश्यन्ति सर्वास्तत्र तथेतयः ॥१४५ ॥
रसवन्ति च तोयानि राज्यं च निरुपद्रवम् ।
धर्मिष्ठा जायते चेष्टा भद्रं भवति सर्वतः ॥१४६ ॥

उसे सब प्रकार की ईतियों का और राक्षसों का भय नहीं रहता अर्थात् इन सबका विनाश हो जाता है, सबकी धर्मनिष्ठ चेष्टा होती है और सभी ओर कल्याण होता है ।

कोटि होमं तु यो राजा कारयेद्विधिपूर्वकम् ।
न तस्य मानसो दाह इह लोके परत्र च ॥
कोटि होमे तु वरयेत् ब्राह्मणान् विंशति नृपः ॥१४७ ॥

जो नृपति एक कोटि संख्या में सविधि होम करता है, उसका चित्त स्थिर और शान्त रहता है । उसे मानसिक दाह, इस लोक और परलोक में कहीं भी व्यथित नहीं करते । इस कोटि होम में राजा बीस ब्राह्मणों का वरण करे ।

शतं वाथ सहस्रं वा य इच्छेद् गतिमात्मनः ।
कोटि होमं स्वयं यस्तु कुरुते श्रद्धया द्विजः ॥१४८ ॥
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा तस्य पुण्यफलं महत् ।
यद् यदिच्छति कामानां तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥१४९ ॥

जो द्विज आत्मा की सद्‌गति के लिये सौ या एक सहस्र अथवा एक करोड़ होम स्वयं करता है, उसे और इस प्रकार श्रद्धान्वित होकर करने पर क्षत्रिय हो अथवा वैश्य उसे महान् पुण्य का फल प्राप्त होता है और वह जिन-जिन वस्तुओं की अभिलाषा करता है, उसे वह निस्संदेह मिलती है ।

सशरीरोऽपि चेद् गन्तुं दिवमिच्छेत्तदाप्नुयात् ।
सावित्री परमा देवी सावित्री परमात्परा ॥१५० ॥

सावित्रीदेवी- जो देवाधिदेव रूप हैं तथा पर से पर है, उनका आश्रय लेने पर मनुष्य की सदेह स्वर्ग जाने की अभिलाषा भी पूर्ण होती है ।

सर्वकामप्रदा चैव सावित्री कथिता पुनः ।
अभिचारेषु तां देवीं विपरीतां विचिन्तयेत् ॥१५१ ॥

सब कामों और मनोभिलाषाओं की प्रदायिनी सावित्री कही गयी है । इसके अभिचार में विपरीत चिन्तन करना चाहिये ।

कार्या व्याहृतयश्चात्र विपरीताक्षरास्तथा ।
विपरीताक्षरं कार्यं शिरश्च ऋषिसत्तम ! ॥१५२ ॥

यहाँ विपरीताक्षर व्याहृतियों का उच्चारण करना चाहिये । हे ऋषि श्रेष्ठ ! इसके सिर अक्षरों को भी विपरीत मानना चाहिये ।

आदौ शिरः प्रयोक्तव्यं प्रणवोऽन्ते च वै ऋषे !
भीतिस्थेनेव फट्कारं मध्ये नाम प्रकीर्तितम् ॥१५३ ॥

प्रारम्भ में शिर का प्रयोग करना चाहिये तथा प्रणव को अंत में उच्चारण करना चाहिये और फट्कार को मध्य में प्रयुक्त करे ।

गायत्रीं चिन्तयेत्तत्र दीप्तानलसमप्रभाम् ।
घातयन्तीं त्रिशूलेन केशेष्वाक्षिप्य वैरिणम् ॥१५४ ॥

प्रज्वलित अग्नि की आभा के समान आभा वाली गायत्री का चिन्तन करे और ऐसा ध्यान करे कि वह शत्रुओं के केशों को पकड़कर अपने त्रिशूल द्वारा उन पर घात कर रही है ।

एवं विधा च गायत्री जप्तव्या राजसत्तम !
होतव्या च यथा शक्त्या सर्वकामसमृद्धिदा ॥१५५ ॥

हे राजसत्तम ! सकल कामनाओं को देने वाली गायत्री को इस प्रकार जपना चाहिये और शक्ति के अनुसार होम करना चाहिये ।

निर्दहन्तीं त्रिशूलेन भृकुटी भूषिताननाम् ।
उच्चाटने तु तां देवीं वायुभूतां विचिन्तयेत् ॥१५६ ॥

अपने त्रिशूल से दहन करती हुई तथा चढ़ी हुई भृकुटी से सुशोभित मुख मण्डल वाली, उस वायुभूत देवी का उच्चाटन काल में चिन्तन करे ।

धावमानं तथा साध्यं तस्माद् देशात्तु दूरतः ।
अभिचारेषु होतव्या राजिका विषमिश्रिता: ॥१५७ ॥

धावमान तथा साध्य को उस देश से दूर से अभिचार में विष मिश्रित होम करना चाहिये ।

स्वरक्तसिक्तं होतव्यं कटुतैलमथापि वा ।
तत्राऽपि च विषं देयं होमकाले प्रयत्नतः ॥१५८ ॥

अपने रक्त को कड़वे तेल में मिलाकर तथा उसमें विष मिलाकर यत्नपूर्वक होम काल में देना चाहिये ।

क्रोधेन महताविष्टः परान्नाभिचरेद्बुधः ।
जुहुयात् यदि क्रोधेन ध्रुवं नश्येत् स एव तु ॥१५९ ॥

किन्तु क्रोधावेश में आकर शत्रुओं के वध करने की इस रीति का प्रयोग नहीं करना चाहिये, अन्यथा शत्रु के ऊपर प्रयुक्त न हुआ, तो प्रयोक्ता को निश्चय नष्ट कर डालता है ।

अनागसि न कर्त्तव्यो ह्यभिचारो मतो बुधैः ।
स्वल्पागसि न कर्त्तव्यो ह्यभिचारो महामुने ॥१६० ॥

बुद्धिमानों को इसका प्रयोग निरपराधी पर नहीं करना चाहिये । हे मुनीश्वर ! स्वल्प अपराध होने पर भी इसका उपयोग करना उचित नहीं है ।

महापराधं बलिनं देव-ब्राह्मण-कण्टकम् ।
अभिचारेण यो हन्यान्न स दोषेण लिप्यते ॥१६१ ॥

महान् अपराध करने वाले बलवान् को तथा देव और ब्राह्मण को कष्ट देने वाले को जो हनन करे, उसे दोष नहीं लगता ।

धर्मस्य दानकाले च स्वल्पागसि तथैव च ।
अभिचारं न कुर्वीत बहुपापं विचक्षणः ॥१६२ ॥

धर्म और दान करते समय तथा स्वल्प अपराध के समय, पण्डित को चाहिये कि बहुपाप-रूप अभिचार को कदापि न करे ।

बहूनां कण्टकात्मानं पापात्मानं सुदुर्म्मतिम् ।
हन्यात्कृतापराधान्तु तस्य पुण्य- फलं महत् ॥१६३ ॥

जो पापात्मा तथा दुर्मति अनेकों के मार्ग में कण्टक बना हुआ है, उस अपराधी के हनन करने वाले को महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है ।

ये भक्ताः पुण्डरीकाक्षे वेदयज्ञे द्विजे जने ।
न तानभिचरेत् जातु तत्र तद्विफलं भवेत् ॥१६४ ॥

जो पुरुष भगवान् के, वेद और यज्ञों के, द्विजों के भक्त हैं, उनके प्रति कभी अभिचार न करे । यदि ऐसा किया जाय, तो वह अभिचार निष्फल हो जाता है ।

नहि केशवभक्तानामभिचारेण कर्हिचित् ।
विनाशमभिपद्येत तस्मात्तन्न समाचरेत् ॥१६५ ॥

जो श्रीकृष्ण भगवान् के भक्त हैं, उनके प्रति अभिचार का प्रयोग कदापि न करें, क्योंकि इस प्रकार करने पर अपना ही विनाश हो जाता है ।

सेयं धात्री विधात्री च सावित्र्यघविनाशिनी ।
प्राणायामेन जाप्येन तथा चान्तर्ज्जलेन च ॥१६६ ॥
सव्याहृतीसप्रणवा जप्तव्या शिरसा सह ।
प्रणवेन तया न्यस्ता वाच्या व्याहृतयः पृथक् ॥१६७ ॥

पाप-समूहों का विनाश करने वाली उस धात्री सावित्री को प्राणायाम से, जप, अन्तर्जल से व्याहृति तथा प्रणव सहित सिर से जपना चाहिये । प्रणव के साथ न्यास करके व्याहृतियों का पृथक्-पृथक् उच्चारण करना चाहिये ।

सदाचारेण सिध्येच्च ऐहिकामुष्मिकं सुखम् ।
तदेव ते मया प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१६८ ॥

सदाचार से लौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्त होता है । यह मैंने आपसे कहा और क्या सुनने की इच्छा है ? वह मुझसे कहो ।

गायत्री तंत्र के अन्तर्गत कुछ थोड़े से प्रयोगों का संकेत ऊपर किया गया है । इन प्रयोगों के जो सुविस्तृत, विधि-विधान, कर्म-काण्ड एवं नियम-बन्धन हैं, उनका उल्लेख यहाँ न करना ही उचित है, क्योंकि तन्त्र के गुह्य विषय को सर्वसाधारण के सम्मुख प्रकट करने से सार्वजनिक सुव्यवस्था में बाधा उपस्थित होने की आशंका रहती है ।

गायत्री अभिचार

मनुष्य एक अच्छा-खासा बिजली घर है । उसमें इतनी उष्णता एवं विद्युत् शक्ति होती है कि यदि उस सबका ठीक प्रकार से उपयोग हो सके, तो एक द्रुत वेग से चलने वाली तूफान मेल रेलगाड़ी दौड़ सकती है । जो शब्द मुख से निकलते हैं, वे अपने साथ एक विद्युत् प्रवाह ले जाते हैं । फलस्वरूप उनके द्वारा एक सूक्ष्म जगत् में कम्पन उत्पन्न होती है और उन कम्पनों द्वारा अन्य वस्तुओं पर प्रभाव पड़ता है । देखा गया है कि कोई वक्ता अपनी वक्तृता के साथ-साथ ऐसी भाव-विद्युत् का सम्मिश्रण करते हैं कि सुनने वालों का हृदय हर्ष, विषाद, क्रोध, त्याग आदि से भर जाता है । वे अपने श्रोताओं को उँगली पर नचाते हैं । देखा गया है कि कई उग्र वक्ता भीड़ को उत्तेजित करके उनसे भयंकर कार्य करा डालते हैं । कभी किसी-किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के भाषण इतने महत्त्वपूर्ण होते हैं कि उससे समस्त संसार में हलचल मच जाती है ।

शब्द को शास्त्रों में बाण कहा गया है । धनुष से जब बाण छूटता है तो उसमें शक्ति होती है । यह शक्ति जहाँ चोट करती है , उसे तिलमिला देती है । शब्द भी ऐसा शक्ति सम्पन्न साधन है, जो प्रकृति के परमाणुओं में विविध प्रकार के विक्षोभ उत्पन्न करता है । जिस प्रकार प्रकृति में वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से हलचल पैदा की जाती है, उसी प्रकार मनुष्य शरीर में रहने वाले विद्युत् प्रवाह के आधार पर भी सृष्टि के परमाणुओं में गतिविधि पैदा की जा सकती है और वैसे ही परिणाम उपस्थित किये जा सकते हैं, जैसे कि वैज्ञानिक लोग मशीनों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं ।

आकाश के ऊँचे स्तर पर बर्फ का चूर्ण हवाई जहाजों से फैलाकर वैज्ञानिकों ने तुरंत वर्षा करने की विधि निकाली है । इसी कार्य को प्राचीनकाल में शब्द-विज्ञान द्वारा, मन्त्र-बल से किया जाता था । उस समय भी

उच्चकोटि के वैज्ञानिक मौजूद थे, पर उनका आधार वर्तमान आधार से भिन्न था। इसके लिये उन्हें मशीनों की जरूरत नहीं पड़ती थी, इतनी खर्चीली खटपट के बिना भी उनका काम चल जाता था। आज स्थूल से सूक्ष्म को प्रभावित करके वह शक्ति उत्पन्न की जाती है, जिससे आविष्कारों का प्रकटीकरण होता है। आज कोयला, तेल और पानी से शक्ति पैदा की जाती है। परमाणु का विस्फोट करके शक्ति उत्पन्न करने का अब नया प्रयोग सफल हुआ है। अमेरिका साइन्स एकेडमी के प्रधान डाक्टर 'एविड' का कहना है कि आगामी तीन सौ वर्षों के भीतर विज्ञान इतनी उन्नति कर लेगा कि बाहरी किसी वस्तु की सहायता के बिना मानव शरीर के अन्तर्गत रहने वाले तत्त्वों के आधार पर ही सूक्ष्म जगत् में हलचल पैदा की जा सकेगी और जो लाभ आजकल मशीनों द्वारा मिलते हैं, वे शब्द आदि के प्रयोग द्वारा ही प्राप्त किये जा सकेंगे।

डाक्टर एविड भविष्य में जिस वैज्ञानिक उन्नति की आशा करते हैं, भारतीय वैज्ञानिक किसी समय उसमें पारंगत हो चुके थे। शाप और वरदान देना इसी शब्द विज्ञान की चरम उन्नति थी। शब्द का आघात मारकर प्रकृति के अन्तराल में भरे हुए परमाणुओं को इस प्रकार आकर्षित-विकर्षित किया जाता है कि मनुष्य के सामने वैसे ही भले-बुरे परिणाम आ उपस्थित होते थे, जैसे आज विशेष प्रक्रियाओं द्वारा, मशीनों की गति-विधि द्वारा विशेष कार्य सिद्ध किये जाते हैं। प्राचीन काल में अपने आपको ही एक महा शक्तिशाली यन्त्र मानकर उसी के द्वारा ऐसी शक्ति उत्पन्न करते थे कि जिसके द्वारा अभीष्ट फलों को चमत्कारिक रीति से प्राप्त किया जा सकता था। वह प्रणाली साधना, योगाभ्यास, तपश्चर्या, तन्त्र आदि नामों से पुकारी जाती है। इन प्रणालियों के उपाय जप, होम, पुरश्चरण, अनुष्ठान, तप, व्रत, यज्ञ, पूजन, पाठ आदि होते थे। विविध प्रयोजनों के विविध कर्मकाण्ड थे। हवन में होमी जाने वाली सामग्रियाँ, मन्त्रों की ध्वनि, ध्यान का आकर्षण, स्तोत्र और प्रार्थनाओं द्वारा आकांक्षा प्रदीप्ति, विशेष प्रकार के आहार-विहार द्वारा मनःशक्तियों का विशेष प्रकार का निर्माण, तपश्चर्याओं द्वारा शरीर में विशेष प्रकार की उष्णता का उत्पन्न होना, देव पूजा द्वारा प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों को खींचकर अपने में धारण करना आदि अनेक विधियों से साधक अपने आपको एक ऐसा विद्युत् पुञ्ज बना लेता था कि उसका प्रयास जिस दिशा में चल पड़े, उस दिशा के प्रकृति के परमाणुओं पर उसका आधिपत्य हो जाता था और उस प्रक्रिया द्वारा अभीष्ट परिणाम प्राप्त होते थे।

भारतीय विज्ञान इसी प्रकार का था। उसमें मशीनों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, बल्कि अपने आपको महायन्त्र मानकर उसी को समय-समय पर इस योग्य बना लेते थे कि उसी से दुनिया की सारी मशीनों का काम चल जाता था। उस समय रेडियो ध्वनि विस्तारक या ध्वनि ग्राहक यन्त्रों की जरूरत नहीं पड़ती थी। तब विचार संचालन की विद्या जानने वाले बड़ी आसानी से इस लाभ को उठा लेते थे। अस्त्र-शस्त्रों के विषय में भी यही बात थी। आज बन्दूक की गोली को सीध में चलाये जाने की बात लोगों को मालूम है, पर किसी जमाने में गोली या बाण को मोड़कर गोलाई में चक्राकार चलाने का विज्ञान भी मालूम था। रामचन्द्र जी ने चक्राकार खड़े हुए सात ताड़ के वृक्षों को एक ही बाण से वेधा था। एकलव्य ने कुत्ते के होठों को बाणों से सी दिया था, पर कुत्ते के जबड़े में राई भर भी चोट नहीं आयी थी। शब्दवेधी बाण चलाने की विद्या तो पृथ्वीराज चौहान तक को विदित थी। आज तो उस विज्ञान का प्रायः लोप-सा हो गया है।

बिना मशीन के चलने वाले जिन अद्भुत दिव्य शस्त्रों का भारतीय इतिहास में वर्णन है, उनमें आग्नेयास्त्र भी एक था। मुँह में इससे आग लगाई जाती थी, जलन, आँधी या तूफान पैदा किया जाता था। व्यक्तिगत प्रयोगों में इससे किसी व्यक्ति विशेष पर प्रयोग करके उसकी जान तक ले ली जाती थी। अग्निकाण्ड कराये जाते थे। इसे तान्त्रिक काल में 'अगियाबैताल' कहा जाता था। इनका प्रयोग गायत्री मन्त्र द्वारा भी होता था, जिसका कुछ संकेत निम्न प्रमाणों में वर्णित है। उल्टी गायत्री को 'अनुलोम जप' कहते हैं, यही आग्नेयास्त्र है-

त् या द चो प्र नः यो यो धि। हि म धी यस् व दे र्गो भ यं ण रे र्व तु वि सत् त वः स्वः र्भु भू ॐ। यह मन्त्र आग्नेयास्त्र है। इस विद्या का कुछ परिचय इस प्रकार है-

आग्नेयास्त्रस्य जानाति विसर्गादानपद्धतिम् ।
यः पुमान् गुरुणा शिष्टस्तस्याधीनं जगत्रयम् ॥

जो पुरुष इस आग्नेयास्त्र के छोड़ने तथा खींचने की विधि को जानता है और जो गुरु द्वारा शिक्षित है, उसके अधिकार में त्रैलोक्य है ।

आग्नेयास्त्राधिकारी स्यात्सविधानमुदीर्यते ।
आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्तं विलोमं पठितं मनु ॥

और वह आग्नेयास्त्र का अधिकारी होता है । अब आग्नेयास्त्र की प्रयोग विधि कहते हैं । आग्नेयास्त्र प्रतिलोम और अनुलोम दो प्रकार से कहा गया है-

क्षीरद्रुमेन्धनाज्येन, हविष्यान्नैर्घृतान्वितैः ।
चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं चतुःशतसमन्वितम् ॥
चतुः सहस्त्र जुहुयादर्चिते हव्यवाहने ।
मण्डले सर्वतोभद्रे षट्कोणांकितकर्णिके ॥

दूध वाले वृक्षों की समिधाओं से घृतयुक्त जौ की सामग्री से चार हजार चार सौ चवालीस (४४४४) आहुति प्रदीप्त अग्नि में दे और सर्वतोभद्र यन्त्र बनाकर उसके अन्तर्गत छः कोण वाला यन्त्र बनाए ।

पूर्वोक्ता एव संपठ्याः, मन्त्राश्च परिकीर्तिताः ।
प्रतिलोमं कुर्यादस्य षडंगानि प्रकल्पयेत् ॥

प्रतिलोम कर्म में पूर्वोक्त ऋष्यादि तथा षडंगन्यास आदि को प्रतिलोम क्रम से (उलटा) करें ।

वर्णन्यासं पदन्यासं, विदध्यात्प्रतिलोमतः ।
ध्यानभेदान्विजानीयाद् गुर्वादेशान्न चान्यथा ॥

वर्णन्यास, पदन्यास आदि को भी प्रतिलोम क्रम से करे । ध्यान भेदों को गुरु की आज्ञा से करे, अन्यथा न करे ।

पूर्ववज्जपक्लृप्तिः स्याज्जुहुयात्पूर्वसंख्यया ।
पंचगव्य सुपक्वेन चरुणा तस्य सिद्धये ॥

पूर्वोक्त संख्यानुसार जप करे और पञ्चगव्य युक्त अच्छी प्रकार से पके चरु से जप सिद्धि के लिये पूर्वोक्त संख्यानुसार आहुति दे ।

अर्चनं पूर्ववत्कुर्याच्छक्तीनां प्रतिलोमतः ।
सर्वत्र दैशिकः कुर्यात् गायत्र्या द्विगुणं जपम् ॥

प्रतिलोमता से शक्तियों का पूजन पूर्ववत् करे और सर्वत्र आचार्य गायत्री का दूना जप करे ।

क्रूरकर्माणि कुर्वीत प्रतिलोमविधानतः ।
शांतिकं पौष्टिकं कर्म कर्तव्यमनुलोमतः ॥

प्रतिलोम के विधान को जपादि, क्रूर कर्मों की सिद्धि के लिये करे और शान्तिमय एवं पुष्टिदायक कर्मों की सिद्धि के लिये, अनुलोमन के विधान से करे ।

विलोमे प्रजपेदष्टौ, पादान्तु प्रतिलोमतः ।
शोधितो जायते पश्चात् मन्त्रोऽयं विधिनामुना ॥

विलोम, प्रयोग काल में मन्त्र के आठों पदों को प्रतिलोम क्रम से पढ़े और अनुलोम क्रम में अनुलोमतः आठों पदों से पढ़े, क्योंकि मन्त्र पढ़ने से मन की अस्थिरता आदि दोष नष्ट हो जाते हैं ।

उपर्युक्त विधि एक संकेत मात्र है । उसके साथ में एक विस्तृत कर्मकाण्ड एवं गुप्त साधना विधि है, उन सबका रहस्य गुप्त ही रखा जाता है, क्योंकि उन बातों का सार्वजनिक प्रकटीकरण करना सब प्रकार निषिद्ध है ।

मारण प्रयोग

तन्त्र ग्रन्थों में मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के कितने ही प्रयोग मिलते हैं । शत्रु नाश के लिये मारण प्रयोगों को काम में लाया जाता है । मारण कितने ही प्रकार का होता है । एक तो ऐसा है जिससे किसी मनुष्य की तुरन्त मृत्यु हो जाए । ऐसे प्रयोगों में "घात" या "कृत्या" प्रसिद्ध है । यह शक्तिशाली तान्त्रिक अग्नि अस्त्र है, जो प्रत्यक्षत: दिखाई नहीं पड़ता, तो भी बन्दूक की गोली की तरह निशाने पर पहुँचता है और शत्रु को गिरा देता है । दूसरे प्रकार के मारण, मन्द-मारण कहे जाते हैं । इनके प्रयोग से किसी व्यक्ति को रोगी बनाया जा सकता है । ज्वर, दस्त, दर्द, लकवा, उन्माद, मतिभ्रम आदि रोगों का आक्रमण किसी व्यक्ति पर उसी प्रकार हो सकता है, जिस प्रकार कीटाणु बमों से प्लेग, हैजा आदि महामारियों को फैलाया जा सकता है ।

इस प्रकार के प्रयोग नैतिक दृष्टि से उचित हैं या अनुचित यह प्रश्न दूसरा है, पर इतना निश्चित है कि यह असम्भव नहीं, सम्भव है । जिस प्रकार विष खिलाकर या शस्त्र चलाकर किसी मनुष्य को मार डाला जा सकता है, वैसे ही ऐसे अदृश्य उपकरण भी हो सकते हैं, जिनको प्रेरित करने से प्रकृति के घातक परमाणु एकत्रित होकर अभीष्ट लक्ष्य की ओर दौड़ पड़ते हैं और उस पर भयंकर आक्रमण करके ऊपर चढ़ बैठते हैं और परास्त करके प्राण संकट में डाल देते हैं । इसी प्रकार प्रकृति के गर्भ में विचरण करते हुए रोग विशेष के कीटाणुओं को किसी व्यक्ति विशेष की ओर विशेष रूप से प्रेरित किया जा सकता है ।

'मृत्यु किरण' आज का ऐसा ही वैज्ञानिक आविष्कार है । किसी प्राणी पर इन किरणों को डाला जाए, तो उसकी मृत्यु हो जाती है । प्रत्यक्ष देखने में उस व्यक्ति को किसी प्रकार का घाव आदि नहीं होता , पर अदृश्य मार्ग से उसके भीतर अवयवों पर ऐसा सूक्ष्म प्रभाव होता है कि उस प्रहार से उसका प्राणान्त हो जाता है । यदि वह आघात हलके दर्जे का हुआ, तो उससे मृत्यु तो नहीं होती, पर मृत्यु तुल्य कष्ट देने वाले या घुला-घुलाकर मार डालने वाले रोग पैदा हो जाते हैं ।

शाप देने की विद्या प्राचीनकाल में अनेक लोगों को ज्ञात थी । जिसे शाप दिया जाता था, उसका बड़ा अनिष्ट होता था । शाप देने वाला अपनी आत्मिक शक्तियों को एकत्रित करके एक विशेष विधि व्यवस्था के साथ जिसके ऊपर उनका प्रहार करता था, उसका वैसा ही अनिष्ट हो जाता था, जैसा कि शाप देने वाला चाहता था । तान्त्रिक अभिचारों द्वारा भी इस प्रकार से दूसरों का अनिष्ट हो सकता है । परन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि इस प्रकार के प्रयोगों के प्रयोगकर्त्ता की शक्ति भी कम नष्ट नहीं होती । बालक के प्रसव करने के उपरांत माता बिल्कुल निर्बल, नि:सत्त्व हो जाती है, किसी को काटने के बाद साँप निस्तेज, हतवीर्य और शक्ति रहित हो जाता है । मारण, उच्चाटन के अभिचार करने वाले लोगों की शक्तियाँ भी काफी परिमाण में व्यय हो जाती हैं और उसकी क्षतिपूर्ति के लिये उन्हें असाधारण प्रयोग करने होते हैं ।

जिस प्रकार मन्त्र द्वारा दूसरों का मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अनिष्ट हो सकता है, उसी प्रकार कोई कुशल तांत्रिक इस प्रकार के अभिचारों को रोक भी सकता है । यहाँ तक कि उस आक्रमण को इस प्रकार उलट सकता है कि वह प्रयोगकर्त्ता पर उलटा पड़े और उसी का अनिष्ट कर दे । घात, कृत्या, चोरी आदि को कोई अन्य तांत्रिक पलट दे, तो उसके प्रेरक प्रयोक्ता पर विपत्ति का पहाड़ टूटा हुआ ही समझिये ।

उपर्युक्त अनिष्टकर प्रयोग अक्सर होते हैं- तन्त्र-विद्या द्वारा हो सकते हैं । पर नीति, धर्म, मनुष्यता और ईश्वरीय विधान की सुस्थिरता की दृष्टि से ऐसे प्रयोगों का किया जाना नितान्त अनुचित, अवांछनीय है । यदि इस प्रकार की गुप्त हत्याओं का ताँता चल पड़े, तो उससे लोक व्यवस्था में भारी गड़बड़ी उपस्थित हो जाए और परस्पर के सद्भाव एवं विश्वास का नाश हो जाए । हर व्यक्ति दूसरों को आशंका, सन्देह एवं अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे । इसलिये तन्त्र विद्या के भारतीय ज्ञाताओं ने इन क्रियाओं को निषिद्ध घोषित करके उन विधियों

को गोपनीय रखा है । आजकल परमाणु बम बनाने के रहस्यों को बड़ी सावधानी से गुप्त रखा जा रहा है, ताकि उनकी जानकारी सर्वसुलभ हो जाने से कहीं उनका दुरुपयोग न होने लगे । उसी प्रकार इन अभिचारों को भी सर्वथा गोपनीय रखने का ही नियम बनाया गया है ।

शारदा तिलक तन्त्र के गायत्री-पटल में इस प्रकार के अभिचारों का वर्णन है । इसमें संकेत रूप से उन विस्तृत क्रियाओं का थोड़ा-थोड़ा आभास कराया गया है । वह संकेत सर्वथा अपूर्ण एवं असम्बद्ध है, तो भी उस सूत्र के आधार पर यह जाना जा सकता है कि कार्य को पूरा करने के लिये किस प्रणाली का अवलम्बन करना होगा, किन वस्तुओं की प्रधान रूप से आवश्यकता होगी । इन संकेतों के द्वारा मार्ग पर चलने वाले को किसी न किसी प्रकार उन गुप्त रहस्यों की जानकारी हो ही जायेगी ।

नीचे शारदा तिलक मन्त्र के कुछ ऐसे अभिचार सूत्र दिये गये हैं, जिनसे इस प्रकार की विधियों पर कुछ प्रकाश पड़ता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार गायत्री से सात्त्विक लाभ उठाये जाते हैं, उसी प्रकार उससे तामसिक कार्य भी किये जा सकते हैं । परन्तु ऐसा उपयोग करना किसी भी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता । इसलिये उन विधानों को गुप्त भी रखा जा रहा है । नीचे कुछ अभिचार संकेतों के श्लोक दिये जा रहे हैं ।

धत्तूर विषवृक्षार्कभूरुहोत्थान्समिद्वरान् ।
राजीतैलेन संलिप्तान् पृथक्सप्त सहस्त्रकम् ।।
जुहुयात संयतो मन्त्री, रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ।

धतूरा, कुचिला तथा राई के तेल से युक्त श्रेष्ठ समिधाओं से पृथक् सात हजार आहुति जितेन्द्रिय होकर दे, तो शत्रु यमपुर को जाए ।

सप्तरात्रं प्रजुहुयात् सर्षपैःस्नेहमिश्रितैः ।
आर्द्रवस्त्रो वृष्टिकाले मरीचैर्मनुनामुना ।।

सात रात तक सरसों के तेल से युक्त मिर्चों द्वारा हवन करे, गीला वस्त्र धारण कर वर्षाकाल में यह प्रयोग करे ।

निगृह्यते ज्वरेणारिः प्रलयाग्नि समेन सः ।
तालपत्रे समालिख्य, शत्रुनाम यथाविधि ।।
आग्नेयास्त्रेण संवेष्ट्य कुण्डमध्ये निखन्यते ।
जुहुयान्मरिचैः क्रुद्धो, ज्वराक्रान्तः स जायते ।।

ऐसा करने पर शत्रु प्रलयाग्नि के सदृश ज्वर से युक्त हो जाता है । ताड़ के पत्ते पर शत्रु के नाम को यथोक्त विधिपूर्वक लिखकर आग्नेयास्त्र से अभिमन्त्रित कर कुण्ड के मध्य गाड़ दे और क्रोधित होकर मिर्चों का हवन करे, तो वैरी ज्वर से युक्त हो जाता हैं ।

तदादाय क्षिपेत्तोये, शीतले स वशी भवेत् ।
पिष्टापामार्गबीजानि, मरीचं मधुसंयुतम् ।।
अत्युष्ण लवणे तोये, निक्षिप्य क्वाथयेत्ततः ।
ऋक्षवृक्ष प्रतिकृतौ हृदये वदने नसि ।।

पुनः कुण्ड में से उखाड़कर उसको शीतल जल में डाल दे और अपामार्ग (चिड़चिड़ा) के बीजों को पीस, शहद से युक्त मिर्चों को नमक के जल में डाल; अग्नि पर रखकर क्वाथ सदृश पकाए । पुनः ऋक्ष और वृक्ष से रचित प्रतिकृति के हृदय, वदन और नासा बनाए ।

किंचित्किंचित्क्षिपेत्तोये, दर्व्यासंचालयेत्तथा।
आग्नेयमुच्चरन्मन्त्रं, सोऽचिराज्ज्वरितो भवेत्॥

और साथ में थोड़ा-थोड़ा जल डालते हुए मन्त्र का उच्चारण कर दर्वी (करछुली) से चलाये, तो शीघ्र ही शत्रु ज्वरयुक्त हो जाए।

क्वथितेऽम्भसि तां क्षिप्त्वा हन्याच्छत्रून्प्रयत्नतः।
तीक्ष्ण स्नेहेन संलिप्तां, शत्रोः प्रतिकृतिं निशि॥
तापयेदेधिते वह्नौ प्रतिलोममनुं जपन्।
ज्वरेण बाध्यते सद्यो होमादस्य मृतिर्भवेत्॥

क्वाथ बन जाने पर उसको जल में डालकर कूटे। पुनः तेल से उस कुटे हुए क्वाथ को रात्रि में प्रतिलोमतापूर्वक मन्त्र जपता हुआ प्रज्वलित अग्नि में तपाये। इससे शीघ्र ही शत्रु ज्वर से आक्रान्त हो जाता है और होम से उसकी मृत्यु हो जाती है।

सामुद्रे सलिले हिंगु बीजजीरकलोलिते।
क्वथितेन पुत्तलिकां नक्षत्र तरुनिर्मिताम्॥
अधोवक्त्रां विनिःक्षिप्य, यष्ट्या विषद्रुमस्य वै।
तच्छिरः स्फोटनं कुर्वन् जपेन्मन्त्रं विलोमतः॥

नमक युक्त जल में हींग, जीरा मिलाकर क्वाथ बनाकर ऋक्ष-वृक्ष से उसकी मूर्ति बनाए और उसको अधोमुख पृथ्वी पर डालकर विष वृक्ष की लाठी से उसका सिर फोड़े और मन्त्र पढ़ता जाए।

सप्ताहान्मरणं याति शत्रुर्ज्वरविमोहितः।
आदित्य रथ नागेन्द्र ग्रस्तांघ्रिस्तद्विषा हतम्॥

इस प्रकार करने पर, शत्रु ज्वर से युक्त हो जाता है और उसकी सप्ताह में मृत्यु हो जाती है। उसको सर्प पैर में काट लेता है।

तत्तैलेन सुलिप्तांगं दग्धं रक्तमरीचिभिः।
अधोमुखं निज-रिपुं दग्ध्वा क्वथित-वारिणा॥
तर्पयेद्भानुमालोक्य शत्रुर्मृत्यु-मुखे भवेत्॥

दूसरी विधि यह है कि मूर्ति को तेल से चुपड़ कर मिर्चों के साथ जलाकर उसका नीचे को मुख कर उष्ण जल से सूर्य का तर्पण करे, तो शत्रु की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

प्रांगणे स्थण्डिलं कृत्वा, सुगन्धिकुसुमादिभिः।
देवीमभ्यर्चयेन्नित्यं, प्रागुक्तेनैव वर्त्मना॥
आहरेद्रात्रिषु बलिं, चरुणा सर्वसिद्धिदम्।
भूतरोग द्रोह भयं, प्रभवेन्नात्र संशयः॥

आँगन में वेदी बनाकर सुगन्धित पुष्प आदि से नित्य देवी की विधानपूर्वक अर्चना करे और रात्रि में समस्त सिद्धिदायक चरु द्वारा बलिदान दे, इस प्रकार करने पर रोग, भय, द्रोह तथा भूतादि का भय नहीं रहता।

यथावदग्निमाराध्य, गन्धैः पुष्पैः मनोरमैः।
स्थित्वा तस्याग्रतो मन्त्री जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥

मनोहर सुगन्धित पुष्पों द्वारा अग्नि की पूजा कर अग्नि के समक्ष अनन्य बुद्धि द्वारा मन्त्र जाप करे।

जपोऽयं सर्व सिद्ध्यै स्यान्नात्र कार्या विचारणा।
लवणैर्मधुरासिक्तैः जुहुयात्पश्चिमोन्मुखः॥

यह जप समस्त सिद्धि प्रदायक है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये। पश्चिम की ओर मुख करके नमकीन अन्न तथा मिष्टान्न द्वारा हवन करे।

मन्त्रार्थ संख्यया मंत्री, रिपुमात्मवशं नयेत्।
शालीन्प्रक्षाल्य संशोध्य, शुद्धान्कुर्वीत तण्डुलान् ॥
जपित्वा पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने।
संपचेज्जपन्मंत्रं च व्रीहीन्तत्र पुनः सुधीः ॥

चवालीस हजार मन्त्र जप करने पर, जपने वाला शत्रु को अपने वश में कर लेता है। शाठी चावलों को धोकर शुद्ध करे और शोधित चावलों को पंचगव्य में शुद्ध करके विद्वान् पुनः मन्त्र का जप करे।

अर्चयित्वा विशदधीर्देवीमग्नौ यथा पुरा।
जुहुयाच्चरुणानेन साज्येनाष्ट सहस्रकम् ॥

पुनः पूर्ववत् देवी को पूजकर अग्नि में घृतयुक्त इस चरु के द्वारा आठ हजार आहुति दे।

पात्रे सम्पातनं कुर्वन्साध्यं भक्षयेत्सुधीः।
शेषं तं निखनेद्वारि सम्पातं प्रांगणांतरे ॥

पुनः कुछ पात्र में रखकर स्वयं भक्षण करे और शेष आँगन में गाड़ दे अथवा द्वार पर फेंक दें।

कृत्यारोगा विनश्यन्ति सह भूत ग्रहामयैः।
परैरुत्पादिता कृत्या, पुनस्तानेव भक्षयेत् ॥

कृत्या से उत्पन्न रोग भूत ग्रहों के साथ-साथ नष्ट हो जाते हैं। दूसरों के द्वारा भेजी गयी कृत्या (घात) उन्हीं को नष्ट करती है।

चौबीस गायत्री

गायत्री के २४ अक्षर यथार्थ में २४ शक्ति-बीज हैं। पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश यह पाँच तत्त्व तो प्रधान हैं ही, इनके अतिरिक्त २४ तत्त्व हैं, जिनका वर्णन सांख्य दर्शन में किया गया है। सृष्टि के इन २४ तत्त्वों को गुम्फन करके एक सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्ति का आविर्भाव किया, जिसका नाम गायत्री रखा गया।

गायत्री के २४ अक्षर चौबीस मातृकाओं की महाशक्तियों के प्रतीक हैं। उनका पारस्परिक गुन्थन ऐसे वैज्ञानिक क्रम से हुआ है कि इस महामन्त्र का उच्चारण करने मात्र से शरीर के विभिन्न भागों में अवस्थित चौबीस बड़ी ही महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं।

मार्कण्डेय पुराण में शक्ति के अवतार की कथा इस प्रकार है कि सब देवताओं ने अपना-अपना तेज एकत्रित किया और वह एकत्रित तेज-केन्द्र 'शक्ति' के रूप में अवतीर्ण हुआ। देवता उन तत्त्व शक्तियों का नाम है, जो सृष्टि के निर्माण, पोषण एवं संहार के मूल कारण हैं। रसायन विज्ञान का नियम है, क्रियाशील पदार्थों के सम्मिलन से नये पदार्थ बनते हैं। रज और वीर्य के सजीव परमाणु जब मिलते हैं, तो एक-मूर्तिमान् गर्भ का आविर्भाव होता है। गन्धक और पारा मिलकर कजली बन जाती है, दूध और खटाई मिलकर दही बनता है। ऋण और धन परमाणु मिलकर बिजली की शक्तिशाली धारा के रूप में परिणत हो जाते हैं। २४ सूक्ष्म तत्त्वों के- २४ सूक्ष्म शक्तियों के सम्मिलन से एक ऐसी अद्‌भुत धारा उत्पन्न होती है, जिसकी सामर्थ्यों का वर्णन करना कठिन है। मार्कण्डेय पुराण का शक्ति अवतार और उस अवतार की आश्चर्यजनक क्रियाशीलता इसी तथ्य पर प्रकाश डालती है।

एक विशेष पर्वतीय प्रदेश की भूमि, वहाँ की वायु, वहाँ की वनस्पतियों व रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण के कारण गंगोत्री से आरंभ होने वाला जल एक विशेष प्रकार के अद्‌भुत गुणों वाला बन गया। इसी प्रकार चौबीस अक्षरों से, उपयोगी तत्त्वों का कारणवश सम्मिश्रण हो जाने से अन्तरिक्ष आकाश में एक विद्युन्मयी सूक्ष्म सरिता बह निकली। इस अध्यात्म गंगा का नाम 'गायत्री' रखा गया। जिस प्रकार गंगा नदी में स्नान करने से शारीरिक

व मानसिक स्वस्थता प्राप्त होती है, उसी प्रकार उस आकाशवाहिनी विद्युन्मयी गायत्री शक्ति की समीपता से आन्तरिक एवं बाह्य बल तथा वैभवों की उपलब्धि होती है।

सृष्टि के उत्पादक तत्त्व चैतन्य-रहित कहे जाते हैं, यह अचैतन्य उसका स्थूल रूप है। पर अचेतना के पीछे भी एक प्रेरणा रहती है, मोटर, जहाज, तार, बम, तोप आदि को चलाने वाला कोई न कोई होता है। ये इतने शक्तिशाली होते हुए भी कुछ कार्य स्वयं नहीं कर सकते। इन यन्त्रों को चलाने के लिये यह आवश्यक है कि कोई चैतन्य प्राणी इनका संचालन करे। इसी प्रकार तत्त्वों को क्रियाशील होने के लिये यह आवश्यक है कि उनके पीछे कोई चैतन्य शक्ति कार्य करती हो। अध्यात्म विद्या को भारतीय वैज्ञानिक सदा से यह मानते आये हैं कि प्रत्येक तत्त्व के पीछे एक चैतन्य शक्ति प्रेरक सत्ता के रूप में विद्यमान है। उस प्रेरक शक्ति से सम्बन्ध स्थापित करके उन पदार्थों का लाभ उठाया जा सकता है जिन पर उस शक्ति का आधिपत्य है। इन प्रेरक शक्तियों को भारतीय विज्ञानवेत्ताओं ने देवता नाम दिया है।

पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल आदि पूजा के लिये वेदोक्त और पुराणोक्त प्रक्रियायें मिलती हैं। क्या यह लोहा-लकड़ी, पानी, आग, हवा आदि की पूजा है ? क्या हमारे ऋषि-मुनि इतने मूर्ख थे, जो यह भी नहीं जानते थे कि इन निर्जीव वस्तुओं के पूजने से लाभ होना असम्भव है ? ऐसा सोचने से काम न चलेगा। भारतीय वैज्ञानिकों ने बहुत ऊँची शोध की थी। आज के भौतिक विज्ञानी जहाँ अपने विज्ञान की अन्तिम सीमा समझते हैं, वहाँ से भारतीय ऋषियों की शोधों का आरम्भ होता है, उनको मिट्टी पूजने वाला मूर्ख समझने की भूल हमें न करनी चाहिये। वस्तुस्थिति यह है कि एक प्रकार के गुण, शक्ति, स्वभाव, प्रवृत्ति एवं स्थिति के परमाणु समूह तत्त्वों में रहते हैं और तत्त्व के पीछे एक प्रेरक शक्ति काम करती है, जो ईश्वरीय अनुशासन के नाम से भी पुकारी जाती है। यह प्रेरक, नियामक, उत्पादक, संचालक एवं विध्वंसक सत्ता अपने क्षेत्र की अधिपति है। उसका आधिपत्य अपने क्षेत्र में अक्षुण्ण है। उसी का नाम देवता है।

इन देवताओं की अपनी-अपनी कार्य-प्रणाली, अपनी-अपनी मर्यादा होती है। जहाँ उनके पदार्थ एवं परमाणुओं सम्बंधी क्रियायें होती हैं, वहाँ गुण और स्वभाव सम्बन्धी शक्तियाँ भी हैं। जिस देवता से उपासना विधि द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, उसके गुण और स्वभाव के साथ भी सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार वह देव-उपासक, अपने उपास्य देव के गुण और स्वभाव को प्राप्त करता है। साथ ही जिन पदार्थों पर उस देव-शक्ति का आधिपत्य है, वे भी उसे किसी ने किसी मार्ग से अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगते हैं।

इन देव-शक्तियों तक पहुँचने के लिये, उन्हें पकड़ने के लिये, उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिये साधना-विज्ञान के आचार्यों ने समाधि अवस्था में पहुँचकर अपनी ध्यान चेतना को अन्तरिक्ष लोकों में फेंका। उनकी अन्तःचेतना ने देव शक्तियों से सम्बन्ध होते हुए जो अनुभव किये उन अनुभवों को योगीजनों ने देवता का रूप घोषित कर दिया। मनुष्य के मस्तिष्क का निर्माण इस प्रकार हुआ है कि उससे कोई भी वस्तु टकराये, तो उसका रूप अवश्य ध्यान में आएगा। कोई वस्तु साकार हो या निराकार पर यदि मस्तिष्क से उसके सम्बन्ध में कुछ सोचना पड़ा, तो वह उसका कोई न कोई रूप निर्धारित करेगा। बिना रूप की स्थापना हुए मस्तिष्क उसके सम्बंध में किसी प्रकार के विचार या धारणा करने में असमर्थ होता है। साकार वस्तुओं को देखने या सुनने के आधार पर उनका कोई रूप मस्तिष्क में बन जाता है। वह निराकार वस्तुओं का आकार अपनी कल्पना के आधार पर गढ़ता है। परन्तु वह कल्पना भी किसी न किसी आधार पर चलती है। देवताओं का आकार निर्धारित करने का कार्य योग के आचार्यों ने किया है। उनके मस्तिष्क ने अन्तरिक्ष लोक में फैली हुई देव शक्तियों से सम्बद्ध होते समय जो रूप बनते देखा उसे ही देव रूप माना।

यह देव रूप एक माध्यम है जिसको पकड़कर आसानी के साथ उन देव शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। देव शक्तियों से सम्बन्ध होने पर जो चित्र मन में आता है यदि आरम्भ में ही उस चित्र को मन में धारण कर लिया जाय तो उस शक्ति से सम्बद्ध होने का कार्य भी सुविधापूर्वक पूरा किया जा सकता है। देवताओं

के रूप का ध्यान करना इस दिशा में प्रधान साधन है। इसलिये आचार्यों ने प्रत्येक देवता का रूप अपनी अनुभव साधना के आधार पर निर्धारित कर दिया है।

यहाँ हमें भली-भाँति ध्यान रखना चाहिये कि यह देवता कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। एक ही परमात्मा की विविध शक्तियों का नाम ही देवता है। जैसे सूर्य की विविध गुणों वाली किरणें अल्ट्रा वायलेट, अल्फा, पारदर्शी, मृत्यु किरण आदि अनेक नामों से पुकारी जाती हैं, उसी प्रकार अनेक कार्य और गुणों के कारण ईश्वरीय शक्तियाँ भी देव नामों से पुकारी जाती हैं। सूर्य की प्रात:कालीन, मध्याह्न कालीन, संध्याकालीन किरणों के गुण भिन्न-भिन्न हैं। इसी प्रकार गर्मी, वर्षा और शीतकाल में किरणों के गुण में अन्तर पड़ जाता है। सूर्य एक ही है पर प्रदेश, ऋतु और काल के भेद से उसका गुण भिन्न-भिन्न हो जाता है। ईश्वर की शक्तियों में इसी प्रकार की विभिन्नताओं के होने के कारण उनके नाम विभिन्न प्रकार के रखे गये हैं।

गायत्री में २४ शक्तियाँ गुम्फित हैं। साधारणत: गायत्री की उपासना करने से उन २४ शक्तियों का यथोचित मात्रा में लाभ मिलता है। दूध में सभी पोषक तत्त्व होते हैं, दूध पीने वाले को उन सभी तत्त्वों का यथोचित मात्रा में लाभ मिल जाता है, परन्तु यदि किसी को किसी विशेष तत्त्व की आवश्यकता होती है तो वह उसके किसी विशेष भाग का ही खासतौर से सेवन करता है। किसी को दूध के चिकनाई वाले भाग की आवश्यकता होती है तो वह 'घी' निकाल कर उसका सेवन करता है और बाकी अंश को छोड़ देता है। किसी को छाछ की अधिक आवश्यकता है तो वह दूध के छाछ वाले अंश को लेकर अन्य भागों को छोड़ देता है। रोगियों को दूध फाड़ कर उसका पानी मात्र देते हैं। इसी प्रकार किसी विशेष शक्ति की आवश्यकता होती है, तो वह उसी की आराधना करता है। अपनी प्रमुख आवश्यकता की वस्तु के लिये अधिक श्रम करता है।

इस दृष्टि से काम करने के लिये पृथक्-पृथक् साधनायें बताई गयी हैं। इन पद्धतियों को 'चौबीस गायत्री साधना' कहते हैं। गायत्री के मन्त्र-ग्रन्थों में चौबीस देवताओं की चौबीस गायत्री लिखी हुई हैं। उनका संक्षिप्त-सा साधन-विधान भी है। उन सबका सूक्ष्म अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि विविध कामनाओं की पूर्ति के लिये सृष्टि के प्रधान चौबीस तत्त्वों की प्रेरक शक्तियों का उपयोग करने का विधि-विधान है।

भारतीय योग विज्ञान की क्रिया पद्धति यह है कि वह परमाणुओं एवं तत्त्वों का ऊहापोह उस तरह नहीं करती, जिस प्रकार वर्तमान काल के भौतिक विज्ञानी करते हैं। वैज्ञानिक अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिये तत्त्वों और परमाणुओं को पकड़ते हैं। इस पकड़ के लिये उन्हें बहुत श्रम और धन से बनने वाली, बार-बार टूटने-फूटने वाली मशीनों की आवश्यकता होती है। योग-विज्ञान इस सतह से कहीं ऊँची सतह पर काम करता है। वह तत्त्वों और परमाणुओं की पीठ पर काम करने वाली प्रेरक एवं चैतन्य देव-शक्ति को पकड़ता है और उससे अपना मनोरथ पूरा करता है। इस पकड़ के लिये उसे लोहे की मशीनों की आवश्यकता नहीं होती वरन् यह मानव शरीर, मस्तिष्क एवं अन्त:करण की अद्‌भुत अलौकिक, असाधारण एवं अनन्त शक्तिशाली मशीन का उपयोग करता है। ईश्वर ने जितनी सर्वांगपूर्ण मशीन "मनुष्य देह" बनाई है उतनी सम्पूर्ण सामर्थ्यों वाली, सम्पूर्ण प्रयोजनों में प्रयुक्त हो सकने वाली मशीनें आज तक किसी भी वैज्ञानिक द्वारा नहीं बनाई जा सकी हैं और न भविष्य में इस प्रकार की कोई सम्भावना ही है। भारतीय वैज्ञानिकों ने नई-नई मशीनें बनाने के झंझट से बचकर इस एक ही मशीन से सब सूक्ष्म प्रयोजनों को पूरा करने की क्रिया निकाली थी।

रेडियो यन्त्र की सुई घुमाने से उन विविध स्थानों की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं, जो आपस में बहुत दूर और बहुत भिन्न हैं। सुई के घुमाने से यन्त्र के भीतर ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि पहले उसके भीतर जो गतिविधि काम कर रही थी, वह बन्द हो जाती है और नये प्रकार की गतिविधि आरम्भ हो जाती है, जिससे पहले जिस स्टेशन की ध्वनियाँ सुनाई पड़ रही थीं, वे बन्द होकर नया स्टेशन सुनाई पड़ने लगता है। मनुष्य शरीर की स्थिति को भी साधनात्मक कर्मकाण्डों द्वारा इसी प्रकार परिवर्तित कर दिया जाता है कि वह कभी किसी देव-शक्ति के और कभी अन्य देव-शक्ति के अनुकूल बन जाती है। साधनाकाल में साधक के रहन- सहन, आहार- विहार, दिनचर्या, विचार, चिन्तन, धन, संयम, कर्मकाण्ड आदि के ऐसे प्रबंध एवं नियंत्रण कायम किये जाते हैं, जिनके

कारण उसकी मनोभूमि एक विशेष दिशा में काम करने योग्य बन जाती है । साधना काल के नियमोपनियमों, प्रतिबन्धों या नियन्त्रणों को कोई साधक पूरी तरह पालन करे, तो उसकी मशीन इतनी सूक्ष्म हो जाएगी कि इच्छित देव-शक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर सके । इसलिये अध्यात्म विद्या के पथ-प्रदर्शक अपने शिष्यों को साधना-काल में आवश्यक संयम-प्रतिबंधों का पालन करने के लिये विशेष रूप से सावधान करते रहते हैं ।

स्थूल शरीर में दोनों हाथ इस प्रकार के अवयव हैं, जिनकी सहायता से वस्तुओं को पकड़ा जाता है । सूक्ष्म शरीर के भी इसी प्रकार के दो हाथ हैं, जिनके द्वारा परमाणु तत्त्वों की ऊपरी सतह पर परब्रह्म-लोक में भ्रमण करने वाली देव-शक्तियों को पकड़ा जाता है । इन सूक्ष्म हाथों का नाम है- श्रद्धा और विश्वास । श्रद्धा और विश्वास के कारण मानव अन्तःकरण की बिखरी हुई शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं । इसी एकीकरण को जिस दिशा में प्रेरित किया जाता है, उसी में वह बड़ी द्रुत गति से दौड़ता है । थोड़ी-सी बारूद और शीशे की गोलियों की पुड़ियों (कारतूस) को बंदूक की नाल में भरते हैं, इस पुड़िया को चिन्गारी लगाकर एक बन्दूक की सहायता से एक विशेष दिशा में उड़ाते हैं । निशाना सीधा होने पर वह गोली अभीष्ट स्थान पर प्रहार करती है और लक्ष्य को वेध देती है । योग-साधना में भी यही होता है । आहार-विहार का, दिनचर्या का प्रतिबन्ध बन्दूक बनाना है, उसमें श्रद्धा और विश्वास का होना गोली व बारूद डाला जाना है । साधन-विधि उसमें चिन्गारी लगाना है । इस प्रकार जो लक्ष्य वेध किया जाता है, वह मनोवांछित परिणाम उपस्थित करता है । चन्द्रलोक और मंगल ग्रह की यात्रा करने की तैयारी में जो वैज्ञानिक लगे हुए हैं, वे ऐसी तोप तैयार कर रहे हैं, जो अत्यन्त दूरी पर निशाना फेंक सके । उस तोप में ऐसा गोला रखा जायेगा, जिसमें यात्री लोग बैठ सकें । यह गोला चन्द्र या मंगल तक उन्हें पहुँचा देगा ऐसी उनकी मान्यता है । वह प्रयोग कहाँ तक सफल होगा यह तो भविष्य ही बतायेगा, पर भूतकाल में यह भली प्रकार साबित हो चुका है कि योग साधना रूपी लक्ष्य वेध उपर्युक्त विधि-विधान के आधार पर देव शक्तियों के साथ टकराता है, उन्हें पकड़ता है और उन्हें मनुष्य के लाभ के लिये उसी प्रकार प्रस्तुत करता है, जिस प्रकार आज के वैज्ञानिकों ने बिजली, भाप आदि की शक्तियों को मनुष्य की सुख-साधना के लिये लगा दिया है । योग साधक अपनी देह की शक्ति को सुसंचालित करके देवशक्तियों तक पहुँचते हैं और उनसे वे लाभ, वरदान प्राप्त करते हैं, जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है । हमारे इतिहास, पुराण पग-पग पर इस महा सत्य की साक्षी देते हैं ।

विज्ञान का मार्ग एक होते हुए भी उसके साधन- मार्गों में अन्तर होता है तथा हो सकता है । रेडियो का विज्ञान एक है, पर रेडियो यन्त्रों की बनावट, हर बनाने वाला अलग-अलग रखता है । घड़ियों और मोटर के पुर्जों में भी इसी प्रकार का हेर-फेर हुआ करता है । इस प्रकार के अन्तर होते हुए भी इन विविध आकृति के यन्त्रों से लाभ एक-सा ही मिलता है । योग-साधना के अनेक मार्ग हैं, उनमें से एक मार्ग 'गायत्री-मार्ग' भी है । गायत्री की साधना-पद्धति द्वारा भी उन सूक्ष्म शक्तियों से साधक अपने को सम्बद्ध कर सकता है और अभीष्ट लाभ उठा सकता है ।

गायत्री के तन्त्र-ग्रन्थों में २४ गायत्रियों का वर्णन है । चौबीस देवताओं के लिये एक-एक गायत्री है । इस प्रकार २४ गायत्रियों द्वारा २४ देवताओं से सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।

गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों में से प्रत्येक के देवता क्रमशः (१) गणेश (२) नृसिंह (३) विष्णु (४) शिव (५) कृष्ण (६) राधा (७) लक्ष्मी (८) अग्नि (९) इन्द्र (१०) सरस्वती (११) दुर्गा (१२) हनुमान् (१३) पृथ्वी (१४) सूर्य (१५) राम (१६) सीता (१७) चन्द्रमा (१८) यम (१९) ब्रह्मा (२०) वरुण (२१) नारायण (२२) हयग्रीव (२३) हंस (२४) तुलसी हैं । यद्यपि इनमें से कई नामों के मनुष्य अवतार, ग्रह, नक्षत्र, तत्त्व, पक्षी, वृक्ष आदि भी हुए और चरित्र भी उपलब्ध होते हैं, पर यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि ऊपर जिन नामों का उल्लेख है उनका प्रयोग तन्त्र विज्ञान में विशुद्ध देव-शक्तियों की छाया लेकर मनुष्य, ग्रह, तत्त्व, पक्षी, वृक्ष आदि जो हुए हैं, वे इन शक्तियों के या तो स्थूल प्रतीक हैं या आलंकारिक विवेचनाहंस पक्षी, तुलसी का पौधा, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, अग्नि, वरुण आदि तत्त्व; राम, कृष्ण, सीता, राधा, हनुमान् आदि अवतारी पुरुष उन देव शक्तियों के स्थूल प्रस्फुरण हैं । वस्तुतः वे शक्तियाँ

अत्यंत सूक्ष्म और ईश्वरीय सूर्य की किरणें हैं। २४ गायत्री द्वारा उन २४ किरणों से ही सान्निध्य स्थापित किया जाता है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि देव-शक्तियाँ स्वचैतन्य हैं और अपनी मर्यादा में परमाणुओं, तत्त्वों, पदार्थों पर शासन करती हैं। इसलिये वे भौतिक और आत्मिक दोनों ही सत्ताओं से सम्पन्न हैं। देव-उपासना से मनुष्य को उस प्रकार के गुण प्राप्त होते हैं। साथ ही उनके शासन में रहने वाले पदार्थ भी उसी ओर खिंच-खिंच कर जमा हो जाते हैं। मधु- मक्खियों के छत्ते में एक शासक मक्खी होती है, वह जिधर चलती है, उधर ही छत्ते की अन्य मक्खियाँ चल देती हैं। जहाँ चुम्बक होता है, वहाँ लोहे के कण स्वयमेव खिंच आते हैं। शक्ति अपने आधार को अपनी ओर खींचती रहती है। जिस मनुष्य ने देव शक्ति की जितनी धारणा अपनी मनोभूमि में कर ली है, उसी अनुपात से उस शक्ति से सम्बंधित परिस्थितियाँ एवं वस्तुयें उसकी ओर खिंचती चली आयेंगी और वह उपासना का समुचित लाभ प्राप्त करेगा।

गायत्री के चौबीस देवताओं की चैतन्य शक्तियाँ क्या हैं ? और उन शक्तियों के द्वारा क्या-क्या लाभ मिल सकते हैं ? इसका विवरण नीचे दिया जाता है-

१- गणेश-सफलता शक्ति। फल-कठिन कामों में सफलता, विघ्नों का नाश, बुद्धि-वृद्धि।

२- नृसिंह- पराक्रम शक्ति। फल-पुरुषार्थ, पराक्रम, वीरता, शत्रुनाश, आतंक, आक्रमण से रक्षा।

३- विष्णु- पालन-शक्ति। फल-प्राणियों का पालन, आश्रितों की रक्षा, योग्यताओं की वृद्धि, रक्षा।

४- शिव- कल्याण-शक्ति। फल- अनिष्ट का विनाश, कल्याण की वृद्धि, निश्चयता, आत्मपरायणता।

५- कृष्ण- योग-शक्ति। फल- क्रियाशीलता, आत्म-निष्ठा, अनासक्ति, कर्मयोग, सौन्दर्य, सरसता।

६- राधा- प्रेम-शक्ति। फल-प्रेम-दृष्टि, द्वेष-भाव की समाप्ति।

७- लक्ष्मी- धन-शक्ति। फल-धन, पद, यश और भोग्य पदार्थों की प्राप्ति।

८- अग्नि- तेज-शक्ति। फल-उष्णता, प्रकाश, शक्ति और सामर्थ्य की वृद्धि, प्रभावशाली, प्रतिभाशाली, तेजस्वी होना।

९- इन्द्र- रक्षा-शक्ति। फल-रोग, हिंसक, चोर, शत्रु, भूत-प्रेत, अनिष्ट आदि के आक्रमणों से रक्षा।

१०- सरस्वती- बुद्धि- शक्ति। फल-मेधा की वृद्धि, बुद्धि की पवित्रता, चतुरता, दूरदर्शिता, विवेकशीलता।

११- दुर्गा- दमन-शक्ति। फल- विघ्नों पर विजय, दुष्टों का दमन, शत्रुओं का संहार, दर्प की प्रचण्डता।

१२- हनुमान्- निष्ठा-शक्ति। फल-कर्त्तव्य परायणता, निष्ठावान्, विश्वासी, ब्रह्मचारी एवं निर्भय होना।

१३- पृथ्वी- धारण-शक्ति। फल- गम्भीरता, क्षमाशीलता, सहिष्णुता, दृढ़ता, धैर्य, भार-वहन करने की क्षमता।

१४- सूर्य- प्राण-शक्ति। फल- नीरोगिता, दीर्घ जीवन, विकास, वृद्धि, उष्णता, विकारों का शोधन।

१५- राम- मर्यादा-शक्ति। फल- तितिक्षा, कष्ट में विचलित न होना, धर्म, मर्यादा, सौम्यता, संयम, मैत्री।

१६- सीता- तप-शक्ति। फल-निर्विकार, पवित्रता, मधुरता, सात्त्विकता, शील, नम्रता।

१७- चन्द्र- शान्ति-शक्ति। फल-उद्विग्नताओं की शान्ति, शोक, क्रोध, चिन्ता, प्रतिहिंसा आदि विक्षोभों का शमन, काम, लोभ, मोह एवं तृष्णा का निवारण, निराशा के स्थान पर आशा का संचार।

१८- यम- काल-शक्ति। फल-समय का सदुपयोग, मृत्यु से निर्भयता, निरालस्यता, स्फूर्ति, जागरूकता।

१९- ब्रह्मा- उत्पादक-शक्ति। फल-उत्पादन शक्ति की वृद्धि। वस्तुओं का उत्पादन बढ़ना, सन्तान बढ़ना, पशु, कृषि, वृक्ष, वनस्पति आदि में उत्पादन की मात्रा बढ़ना।

तृष्णा का निवारण, निराशा के स्थान पर आशा का संचार।

१८- यम- काल-शक्ति। फल-समय का सदुपयोग, मृत्यु से निर्भयता, निरालस्यता, स्फूर्ति, जागरूकता।

१९- ब्रह्मा- उत्पादक-शक्ति। फल-उत्पादन शक्ति की वृद्धि। वस्तुओं का उत्पादन बढ़ना, सन्तान बढ़ना, पशु, कृषि, वृक्ष, वनस्पति आदि में उत्पादन की मात्रा बढ़ना।

२०- वरुण- रस-शक्ति । फल-भावुकता, सरलता, कलाप्रियता, कवित्व, आर्द्रता, दया, दूसरों के लिये द्रवित होना, कोमलता, प्रसन्नता, माधुर्य, सौन्दर्य ।

२१-नारायण- आदर्श-शक्ति । फल महत्त्वाकांक्षा, श्रेष्ठता, उच्च आकांक्षा, दिव्य गुण, दिव्य स्वभाव, उज्ज्वल चरित्र, पथ-प्रदर्शक कार्य-शैली ।

२२- हयग्रीव- साहस-शक्ति । फल-उत्साह, साहस, वीरता, शूरता, निर्भयता, कठिनाइयों से लड़ने की अभिलाषा, पुरुषार्थ ।

२३- हंस- विवेक-शक्ति ।फल-उज्ज्वल कीर्ति, आत्म-सन्तोष, सत्-असत् निर्णय, दूरदर्शिता, सत् संगति, उत्तम आहार-विहार ।

२४- तुलसी- सेवा-शक्ति । फल-लोक सेवा में प्रवृत्ति, सत्य प्रधानता, पतिव्रत, पत्नीव्रत, आत्म-शान्ति, परदुःख- निवारण ।

जिसे अपने में जिस शक्ति की, जिस गुण, कर्म, स्वभाव की कमी या विकृति दिखाई पड़ती हो, उसे उस शक्ति वाले देवता की उपासना विशेष रूप से करनी चाहिये । जिस देवता की जो गायत्री है, उसका दशांश जप गायत्री साधना के साथ-साथ करना चाहिये । जैसे कोई व्यक्ति संतानहीन है, सन्तान की कामना करनी चाहिये । यदि गायत्री कीं दस मालायें नित्य जपी जायें, तो एक माला ब्रह्म गायत्री की भी जपनी चाहिये । केवल मात्र ब्रह्म गायत्री को भी जपने से काम न चलेगा, क्योंकि ब्रह्म गायत्री की स्वतंत्र सत्ता उतनी बलवती नहीं है । देव गायत्रियाँ, उस महान् वेद-माता गायत्री की छोटी-छोटी शाखायें तभी तक हरी-भरी रहती हैं, जब तक वे मूल वृक्ष के साथ जुड़ी हुई हैं । वृक्ष से अलग कट जाने पर शाखा निष्प्राण हो जाती है, उसी प्रकार अकेली देवी गायत्री भी निष्प्राण होती है उनका जप महागायत्री के साथ ही करना चाहिये ।

आरम्भ में देव-गायत्री का जप करना चाहिये । साथ ही उस देवता का ध्यान करते जाना चाहिये और ऐसी भावना करनी चाहिये कि वह देवता हमारे अभीष्ट परिणाम को प्रदान करेंगे । नीचे चौबीसों देवताओं की गायत्रियाँ दी जाती हैं, इनके जप से उन देवताओं के साथ विशेष रूप से सम्बन्ध स्थापित होता है और उनसे सम्बन्ध रखने वाले गुण, पदार्थ एवं अवसर साधक प्राप्त कर सकते हैं ।

१-गणेश गायत्री-ॐ **एक दंष्ट्राय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो बुद्धिः प्रचोदयात् ।**

२-नृसिंह गायत्री-ॐ **उग्रनृसिंहाय विद्महे, वज्र नखाय धीमहि । तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात् ।**

३- विष्णु गायत्री-ॐ **नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।**

४- शिव गायत्री-ॐ **पञ्चवक्त्राय विद्महे, महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।**

५- कृष्ण गायत्री- ॐ **देवकी नन्दनाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि । तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ।**

६- राधा गायत्री- ॐ **वृषभानुजायै विद्महे, कृष्ण प्रियायै धीमहि । तन्नो राधा प्रचोदयात् ।**

७- लक्ष्मी गायत्री- ॐ **महालक्ष्म्यै विद्महे, विष्णु प्रियायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।**

८- अग्नि गायत्री- ॐ **महाज्वालाय विद्महे, अग्निदेवाय धीमहि । तन्नो अग्निः प्रचोदयात् ।**

९- इन्द्र गायत्री- ॐ **सहस्त्रनेत्राय विद्महे, वज्र हस्ताय धीमहि । तन्न इन्द्रः प्रचोदयात् ।**

१०- सरस्वती गायत्री- ॐ **सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्मपुत्र्यै धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ।**

११- दुर्गा गायत्री- ॐ **गिरिजायै विद्महे, शिव प्रियायै धीमहि । तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ।**

१२- हनुमान् गायत्री- ॐ **अञ्जनीसुताय विद्महे, वायुपुत्राय धीमहि । तन्नो मारुतिः प्रचोदयात् ।**

१३- पृथ्वी गायत्री- ॐ **पृथ्वी देव्यै विद्महे, सहस्त्र मूर्त्यै धीमहि । तन्नः पृथ्वी प्रचोदयात् ।**

१४- सूर्य गायत्री- ॐ **भास्कराय विद्महे, दिवाकराय धीमहि । तन्नः सूर्य्यः प्रचोदयात् ।**

१५- राम गायत्री- ॐ **दाशरथये विद्महे, सीता वल्लभाय धीमहि । तन्नो रामः प्रचोदयात् ।**

१६- सीता गायत्री- ॐ **जनकनन्दिन्यै विद्महे, भूमिजायै धीमहि । तन्नः सीता प्रचोदयात् ।**

१७- चन्द्र गायत्री- ॐ क्षीर पुत्राय विद्महे, अमृत-तत्त्वाय धीमहि । तन्नः चन्द्रः प्रचोदयात् ।
१८- यम गायत्री- ॐ सूर्य पुत्राय विद्महे, महाकालाय धीमहि । तन्नो यमः प्रचोदयात् ।
१९- ब्रह्मा गायत्री- ॐ चतुर्मुखाय विद्महे, हंसारूढाय धीमहि । तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात् ।
२०- वरुण गायत्री- ॐ जलबिम्बाय विद्महे, नील-पुरुषाय धीमहि । तन्नो वरुणः प्रचोदयात् ।
२१- नारायण गायत्री- ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।
२२- हयग्रीव गायत्री- ॐ वाणीश्वराय विद्महे, हयग्रीवाय धीमहि । तन्नो हयग्रीवः प्रचोदयात् ।
२३- हंस गायत्री- ॐ परमहंसाय विद्महे, महाहंसाय धीमहि । तन्नो हंसः प्रचोदयात् ।
२४- तुलसी गायत्री- ॐ श्री तुलस्यै विद्महे, विष्णु प्रियायै धीमहि । तन्नो वृन्दा प्रचोदयात् ।

इन देव गायत्रियों के साथ व्याहृतियाँ लगाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये वेदोक्त नहीं तन्त्रोक्त हैं । यों तो उपर्युक्त देव-शक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के स्वतंत्र एवं विशिष्ट विज्ञान हैं, जो साधना ग्रन्थों में सविस्तार वर्णित हैं । उन साधनाओं से सम्पूर्ण प्रगति उसी दिशा में होती है । यहाँ उस विस्तृत विज्ञान का वर्णन करना आवश्यक नहीं । यहाँ तो इन देव-शक्तियों एवं गायत्रियों का वर्णन इसलिये किया गया है कि वेदमाता की सर्व फलदायिनी साधना में भी किसी विशेष तत्त्व को बढ़ाकर किसी विशेष उद्देश्य के लिये अतिरिक्त प्रयत्न भी साथ में जोड़ा जा सकता है ।

गायत्री पुरश्चरण

पुरः कहते हैं पूर्व को (अर्थात् आगे की ओर) और चरण कहते हैं चलने को । चलने से पूर्व की जो स्थिति है, तैयारी है, उसे पुरश्चरण कहा जाता है, चलने के तीन भाग हैं (१) गति, (२) आगति, (३) स्थिति । गति कहते हैं बढ़ने को, आगति कहते हैं लौटने को और स्थिति कहते हैं- ठहरने को । पुरश्चरण में यह तीनों ही क्रियायें होती हैं । किसी विशेष अभीष्ट को प्राप्त करने के लिये जो साधना की जाती है, तो उसके साथ-साथ उन दोषों को लौटाया भी जाता है, जो प्रगति के मार्ग में विशेष रूप से बाधक होते हैं । इस गति-आगति से पूर्व शक्ति को प्रस्फुटित करने के लिये जिस स्थिति को अपनाना होता है, वही पुरश्चरण है ।

सिंह जब शिकार पर आक्रमण करता है, तो एक क्षण ठहरकर हमला करता है । धनुष पर बाण को चढ़ा कर जब छोड़ा जाता है, तो यत्किंचित् रुककर तब बाण छोड़ा जाता है । बन्दूक का घोड़ा दबाने से पहले जरा-सी देर शरीर को साध कर स्थिर कर लिया जाता है ताकि निशाना ठीक बैठे । इसी प्रकार अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पर्याप्त मात्रा में आत्मिक बल एकत्रित करने के लिये कुछ समय आन्तरिक शक्तियों को फुलाया और विकसित किया जाता है, इसी प्रक्रिया का नाम पुरश्चरण है ।

सवा लक्ष या न्यूनाधिक मन्त्रों का अनुष्ठान एक सर्वसुलभ, सर्व-जनोपयोगी साधना है । पुरश्चरण किसी कार्य विशेष के लिये किया जाता है । इसका विधान बहुत विस्तृत है । यह पुरोहित की अध्यक्षता में किया जाता है । अनुष्ठान को अकेला मनुष्य बिना किसी सहायता के कर सकता है । पुरश्चरण के लिये अनेक कर्मकाण्डी पण्डितों का सहयोग आवश्यक होता है । किसी विशेष पाप के प्रायश्चित्त के लिये, किसी विशेष लाभ की प्राप्ति के लिये पुरश्चरण किये जाते हैं । इससे अपने अन्दर ऐसी शक्ति का उद्‌भव होता है, जिससे अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त करना सरल हो जाता है ।

गायत्री पुरश्चरण किस मुहूर्त में करना चाहिये और किस आहार- विहार के साथ करना चाहिये, इसका वर्णन इसी प्रकरण में अन्यत्र दिया हुआ है । समय और नियम का पालन करते हुए इस पुरश्चरण की महासाधना को किसी विज्ञ कर्मकाण्डी पुरोहित की अध्यक्षता में आरंभ करना चाहिये ।

उत्तम स्थान चुनकर वहाँ पूजा की वेदी बनानी चाहिये । (आटा, रोली, हल्दी, मेंहदी, पीली मिट्टी, पेवड़ी आदि) मांगलिक वस्तुओं की सहायता से चौक पूरे । बीच में हवन की वेदी बनावे, वेदी भूमि से चार अंगुल ऊँची

एवं चौबीस-चौबीस अंगुल लम्बी-चौड़ी होनी चाहिये । ईशान कोण में कलश स्थापित करे । एक चौकी पर देव-स्थापन एवं गायत्री मन्त्र की स्थापना करे । चौकी के निकट घी का दीपक जलता रहना चाहिये । गायत्री-पूजा का विधान आगे दिया हुआ है, उस पूजा को करने के उपरान्त अन्य कार्य आरम्भ करे ।

जप से दशांश होम, होम से दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराने का पुरश्चरण का नियम है । इस नियम को ध्यान में रखते हुए पहले यह निश्चय करना चाहिये कि हमें कितने जप का पुरश्चरण करना है, क्योंकि उनका आर्थिक स्थिति से सम्बन्ध है । सवा लक्ष मन्त्रों का पुरश्चरण करना हो तो १२,५०० आहुतियों का हवन करना होगा । १२५० तर्पण होगा । १२५ मार्जन करने होंगे और १२ से अधिक ब्राह्मण भोजन करना होगा । इससे व्यय का अन्दाजा लगा लेना चाहिये । जप-तप की संख्या न्यूनाधिक की जा सकती है ।

पुरश्चरण का कार्य-विभाजन इस प्रकार है- (१) नित्य कर्म-स्थान आदि । (२) सन्ध्या (३) गायत्री- पूजन- जिसके प्रधान अंग पूजा, कवच, न्यास, ध्यान एवं स्तोत्र हैं । (४) शापमोचन (५) हवन (६) तर्पण (७) मार्जन (८) मुद्रा (९) विसर्जन (१०) ब्राह्मण भोजन । यह क्रम नित्य चलना चाहिये ।

इतने बड़े कार्यक्रम के साथ अधिक जप अपने आप नहीं किया जा सकता । इसलिये ब्राह्मणों को वरण करके उनके लिये केवल जप नियत कर दिया जाता है । पुरोहित, यजमान से पूजन, ध्यान, होम-तर्पण आदि कराता है । होम-तर्पण के लिये भी कई व्यक्तियों की सहायता ली जा सकती है, जिससे समय की बचत हो सके । पुरश्चरण सवा लक्ष, चौबीस लक्ष, एक करोड़, सवा करोड़ अथवा न्यून से न्यून चौबीस हजार होता है । प्रायः २४ दिन में उसे पूरा करना पड़ता है । इन सब बातों को ध्यान में रखकर जप करने वाले तथा हवन-तर्पण में सहयोग देने वाले ब्राह्मणों की नियुक्ति करनी होती है । नियुक्त ब्राह्मणों का भोजन, उनके लिये नये वस्त्र, पात्र तथा दक्षिणा की समुचित व्यवस्था की जाती है ।

पुरश्चरण पूरा हो जाने पर ब्रह्म- भोज, प्रीति-भोज, बड़ा यज्ञ, कथा-कीर्तन, प्रसाद-वितरण आदि का समारोह उत्सव मनाना चाहिये और मंगल- कामना के साथ पूजा-सामग्री को किसी शुद्ध स्थान पर विसर्जित करते हुए कार्यक्रम समाप्त करना चाहिये ।

अब पुरश्चरण के दस अंगों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया जाता है ।

नित्य कर्म

प्रतिदिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा त्यागकर उठे । आँख खुलते ही ईश्वर का ध्यान करें और मल-मूत्र का विसर्जन करके स्नान करे । शुद्ध धुले हुए वस्त्र धारण करे । आहार-विहार को ठीक रखे । बुरे कर्मों से बचे । बुरे विचारों से दूर रहे । ब्रह्मचर्य से रहे । पुरश्चरण के लिये जिन नियमों का पालन करना चाहिये, उनका उल्लेख नीचे किया जाता है ।

पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च ।
होमो ब्राह्मण भुक्तिश्च पुरश्चरणं तदुच्यते ।। - कुलार्णव तंत्र

नित्यप्रति त्रिकाल पूजन, जप, तर्पण, होम तथा ब्राह्मण भोजन कराना पुरश्चरण कहलाता है ।

पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले जलाशये ।
गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसी वने ।।
पुण्य क्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तैकाग्र्यस्थलेऽपि च ।
पुरश्चरणकृन्मंत्री सिध्यत्येव न संशयः ।। - विश्वामित्र कल्प

पहाड़ की चोटी पर, नदी किनारे, बिल्ववृक्ष के नीचे नदी या तालाब पर, गौशाला में, देव मन्दिर में, पीपल के नीचे, बगीची में, तुलसी-वन में, तीर्थ-स्थान में, गुरु के निकट या जहाँ चित्त की एकाग्रता बढ़ती हो उस स्थान पर मन्त्र जानने वाले को पुरश्चरण करना चाहिये, वहाँ सिद्धि मिलती है , इसमें सन्देह नहीं ।

क्षीराहारी फलाशी वा शाकाशी वा हविष्यभुक् ।
भिक्षाशी वा जपेद्यत्तत्कृच्छ्र चान्द्रसमं भवेत् ।।

दूध पीने वाला, फल खाने वाला, शाक खाने वाला, हविष्यान्न खाने वाला या भिक्षान्न खाने वाला यदि जप करे, तो वह कृच्छ्र के समान होता है अर्थात् फिर उसे जप करने में पूर्ण कृच्छ्र करने की आवश्यकता नहीं होती है ।

लवणं क्षारमम्लं च गृञ्जनादि निषेधितम् ।
ताम्बूलं च द्विभुक्तिश्च दुष्टावासः प्रमत्तता ।।

नमक, क्षार, खटाई, प्याज आदि निषिद्ध भोजन, पान , दो बार का भोजन तथा दुष्ट-वास और प्रमाद यह छोड़ देने चाहिये ।

श्रुतिस्मृति-विरोधं च जपं रात्रौ विवर्जयेत् ।

श्रुतिस्मृति का विरोध तथा रात्रि का जप वर्जित है ।

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनचर्य्या तथैव च ।
नित्यं त्रिषवणं स्नानं क्षौरकर्म विवर्जनम् ।।
नित्य-पूजा नित्यदानमानन्द-स्तुति-कीर्त्तनम् ।
नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ।।
जप-निष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ।

पृथ्वी-शयन, ब्रह्मचर्य-व्रत, मौन, त्रिकाल सन्ध्या, स्नान, बाल न बनवाना, नित्य-पूजन, दान, स्तुति, कीर्तन, नैमित्तिक अर्चन, गुरु एवं देवता का विश्वास तथा जप में निष्ठा- ये बारह मन्त्र सिद्ध करने वाले के लिये आवश्यक कार्य हैं ।

ज्येष्ठाषाढौ भाद्रपदं पौषं तु मलमासकम् ।
अंगारशनिवारौ तु व्यतिपातञ्च वैधृतिम् ।।
अष्टमीं नवमीं षष्ठीं चतुर्थीं च त्रयोदशीम् ।
चतुर्दशीममावस्यां प्रदोषंच तथा निशा ।।

ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, पौष तथा अधिक मास, मंगल व शनिवार, व्यतिपात तथा वैधृति योग, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावस्या , प्रदोष, रात्रिकाल ये पुरश्चरण के लिये वर्जित हैं ।

यमाग्नि रुद्र सार्पेन्द्रि वसु श्रवण जन्मभम् ।
मेष कर्क तुला कुम्भमकरं चैव वर्जयेत् ।।
सर्वाण्येतानि वर्ज्यानि पुरश्चरण कर्मणि ।

भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण और जन्म नक्षत्र तथा मेष, कर्क, तुला, कुम्भ, मकर लग्नों के समय पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिये ।

गुरु शुक्रोदये शुद्धे लग्ने सद्वारशोधिते ।
चन्द्रतारानुकूल्ये च शुक्ल पक्षे विशेषतः ।।
पुरश्चरणकं कुर्यान्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।

गुरु, शुक्र के उदय होने पर, शुद्ध लग्न में अच्छे वार में अनुकूल चन्द्र तथा तारा में, विशेष रूप से शुक्ल पक्ष में पुरश्चरण करने में मन्त्र की सिद्धि होती है ।

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मुक्तिः श्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।
स्यात्पौष्टिकं च कौशेयं शान्तिकं वेत्रविष्टरम् ।।

वंशासने व्याधिनाशः कम्बले दुःख-मोचनम्।
सर्वाभावेत्वासनार्थं कुशविष्टरमुत्तमम्॥

काले मृग का चर्म ज्ञान सिद्धि के लिये, मोक्ष तथा श्री के लिये व्याघ्र का चर्म, पुष्टि कार्य के लिये रेशम, शान्ति कार्य के लिये वेत, व्याधिनाश के लिये बाँस, दुःख मोचन के लिये कम्बल का आसन लेना चाहिये।

आरम्भदिनमारभ्य समाप्तिदिवसावधि।
नन्यूनं नातिरिक्तं च जपं कुर्याद् दिने-दिने॥
नैरंतर्येण कुर्वीत न स्ववृत्तौ च लिंपयेत्।
प्रातरारभ्य विधिवज्जपेन्मध्यंदिनावधि॥
मनः संहरणं शौचं ध्यानं मन्त्रार्थचिन्तनम्।

प्रारम्भिक दिन से लेकर अन्तिम दिन तक एक-सा ही, एक ही संख्या में जप करे, न कम करे न अधिक। निरन्तर ऐसा करता ही रहे, अपनी वृत्ति के चक्कर में लिप्त न हो जाए। प्रातः से लेकर मध्याह्न तक विधिवत् जप करता रहे। मन से पवित्र रहे और मन्त्रार्थ का चिन्तन करता रहे।

होमस्य तु दशांशेन तर्पणं समुदीरितम्।
तर्पणस्य दशांशेन चाभिषेकस्ततः परम्।
अभिषेक दशांशेन कुर्यात् ब्राह्मण भोजनम्।

होम का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश अभिषेक तथा अभिषेक का दशांश ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये।

२-सन्ध्या

पुरश्चरण आरम्भ करते हुए सबसे पूर्व सन्ध्या करनी चाहिये। सन्ध्या की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। यजुर्वेदीय, ऋग्वेदीय, सामवेदीय सन्ध्यायें प्रसिद्ध हैं। दाक्षिणात्यों की सन्ध्यायें, उत्तर में जो सन्ध्या आजकल प्रचलित है वह और धार्मिक जनता में जो सन्ध्या आजकल प्रचलित है, वह श्रुति और स्मृति दोनों के मिश्रित मन्त्रों वाली हैं। आर्यसमाजी सन्ध्या अलग है। इनमें से किसी भी सन्ध्या को अपनाया जा सकता है। हमारे मत से गायत्री ब्रह्म सन्ध्या सर्वोत्तम है, जिसका वर्णन 'गायत्री महाविज्ञान' पुस्तक के प्रथम भाग में हम भली-भाँति कर चुके हैं।

३-गायत्री पूजन

एक चौकी पर गायत्री की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। यह प्रतिमा, गायत्री मन्त्र के अक्षरों में या देवी के चित्र या मूर्ति रूप में हो सकती है। उसका धूप, दीप, चन्दन, गन्ध, अक्षत, नैवेद्य, ताम्बूल, पूगीफल, दूर्वा, पुष्प, अर्घ्य, नमस्कार आदि से पूजन करना चाहिये। मानसी पूजा में ध्यानावस्थित होकर भावना रूप में ही यह सब पूजा पदार्थ गायत्री माता के सम्मुख उपस्थित करके उनका पूजन किया जाता है।

पूजा से पूर्व गायत्री का आह्वान करना चाहिये और विश्वास करना चाहिये कि विश्वव्यापी गायत्री शक्ति का एक विशिष्ट भाग यहाँ पूजा को स्वीकार करने के लिये पधारा हुआ है। आह्वान मन्त्र यह है-

आयातु वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातः ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते॥

पूजा के उपरान्त ध्यान, कवच, न्यास एवं स्तोत्र के द्वारा गायत्री की धारणा तथा प्रतिष्ठा करनी चाहिये। यह पञ्चोपचार पूजा कहलाती है। पाँचों का आगे वर्णन किया जाता है।

४-ध्यान

ध्यान का अभिप्राय है- किसी वस्तु को श्रद्धा और रुचिपूर्वक, सम्मान सहित मनोभूमि में धारण करना । इस प्रकार जिस मूर्ति को मन में धारण किया जाता है वह एक प्रकार से अपना आदर्श बन जाती है और उसी के अनुरूप अपने गुण, कर्म, स्वभाव बनने लगते हैं ।

गायत्री का ध्यान करते समय उस महाशक्ति की विशेषताओं एवं महत्ताओं का ध्यान आता है, वह एक प्रकार से अपना आदर्श बनाती है और उसमें वे विशेषतायें स्वयमेव बढ़ने लगती हैं । शक्ति का उपासक दिन-दिन शक्तिमान् बनेगा ।

गायत्री के दो प्रकार के ध्यान नीचे दिये गये हैं, वर्णपरक और शक्तिपरक । इनका यथारुचि ध्यान करें ।

॥ वर्णानां ध्यानम् ॥

तत्कारं चम्पकापीतं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
शतपत्रासनारूढं ध्यायेत् सुस्थानसंस्थितम् ॥

चम्पक पुष्प जैसा पीत, ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मक, कमलासन रूप, सुन्दर स्थान पर स्थित (तत्) कार का ध्यान करे ।

सकारं चिन्तयेद्देवमतसी पुष्पसन्निभम् ।
पद्म मध्यस्थितं सौम्यमुपपातक नाशनम् ॥

अलसी के पुष्प के सदृश आभा वाले पद्म के बीच में स्थित सौम्य तथा उपपातकों के विनाश कर्त्ता 'स' कार का ध्यान करना चाहिये ।

विकारं कपिलं नित्यं कमलासनसंस्थितम् ।
ध्यायेच्छान्तो द्विजः श्रेष्ठो महापातकनाशनम् ॥

कमलासन पर स्थित विद्रुम के समान महापापों को विनाश करने वाले 'वि' कार का द्विज शान्त चित्त से ध्यान करे ।

तुकारं चिन्तयेत्प्राज्ञ इन्द्रनील सम प्रभम् ।
निर्दहेत् सर्वपापानि ग्रहरोगसमुद्भवम् ॥

इन्द्रमणि के समान प्रभा वाले, ग्रह रोगों से समुत्पन्न समस्त पापों का दहन करने वाले 'तु' कार का विद्वान् ध्यान करें ।

वकारं वह्नि दीप्ताभं चिन्तयेच्च विचक्षणः ।
भ्रूणहत्या कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

प्रज्वलिताग्नि के समान आभा वाले 'व' कार का पण्डित लोग ध्यान करें, इसके चिन्तन से भ्रूण हत्या से लगा हुआ पाप शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है ।

रेकारं विमलं ध्यायेत् शुद्ध स्फटिक सन्निभम् ।
पापं नश्यति तत्क्षिप्रमगम्यागमनोद्भवम् ॥

शुद्ध स्फटिक के तुल्य निर्मल 'रे' कार का ध्यान करने से अगम्य स्थान में जाने से लगा हुआ पाप दूर होता है ।

णिकारं चिन्तयेद्योगी शुद्ध स्फटिक सन्निभम् ।
अभक्ष्य-भक्षणं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

शुद्ध स्फटिक के सदृश 'णि' कार का योगी पुरुष ध्यान करें, क्योंकि इसका ध्यान करने से अभक्ष्य वस्तु खा लेने से लगा पाप शीघ्र ही विनष्ट होता है ।

यकारं तारकावर्णमिन्दु शेषविभूषितम्।
योगिनां वरदं ध्यायेत् ब्रह्म-हत्याविनाशनम्॥

तारों के वर्ण वाले चन्द्र से विभूषित 'य' कार का ध्यान करना चाहिये, क्योंकि इस महान् वर के प्रदान करने वाले 'य' कार से ब्रह्म-हत्या सम्बन्धी पाप नष्ट होता है।

भकारं कृष्ण वर्णं तु नील मेघ समप्रभम्।
ध्यात्वा पुरुषहत्यादि पापं नाशयति द्विजः॥

नील मेघ की आभा के समान, कृष्ण, कान्त 'भ' कार का ध्यान करने से द्विज पुरुष की हत्या आदि पापों का नाश करता है।

गो कारं रक्त वर्णं च कमलासन संस्थितम्।
गोहत्यादि कृतं पापं ध्यात्वा नश्यति तत्क्षणात्॥

रक्तवर्ण, कमलासन पर बैठे हुए, 'गो' कार का ध्यान करने से गोहत्या आदि महापापों का शीघ्र ही विनाश होता है।

देकारं रक्त संकाशं कमलासनसंस्थितम्।
चिन्तयेत्सततं योगी स्त्री-हत्या गहनं परम्॥

रक्त वर्ण वाले कमलासन पर स्थित 'दे' कार का ध्यान स्त्री-हत्या आदि पापों से मुक्ति देता है, योगी पुरुष निरन्तर उसका चिन्तन करें।

वकारं चिन्तयेच्छुद्धं जातीपुष्पसमप्रभम्।
गुरु हत्या कृतं पापं ध्यानात् नश्यति तत्क्षणात्॥

जाती फूल के समान आभा वाले 'व' कार का ध्यान करे। इसके ध्यान करने से गुरु हत्या का पाप शीघ्र ही विनष्ट होता है।

स्यकारं तं तथा भानुं सुवर्ण सदृश प्रभम्।
मनसा चिन्तितं पापं ध्यात्वा दूरमपाहरेत्॥

सुवर्ण के समान आभा वाले 'स्य' कार का मन से चिन्तन कर पापों को दूर करना चाहिये।

धीकारं चिन्तयेच्छुक्लं कुन्दपुष्पसमप्रभम्।
पितृ मातृवधात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥

कुन्द पुष्प के समान आभा वाले शुक्लवर्ण 'धी' कार के चिन्तन करने से माता-पिता के वध करने के लगे हुए पाप से मुक्त हो जाता है।

मकारं पद्म रागाभं चिन्तयेद्दीप्ततेजसम्।
पूर्वजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥

पद्म के रंग के समान आभा वाले, दीप्त तेज के समान 'म' कार का ध्यान करने से पूर्व जन्म के पापों का अविलम्ब नाश होता है।

हिकारं शंख वर्णन्तु पूर्ण चन्द्र समप्रभम्।
अशेष पाप दहनं ध्यायेन्नित्यं विचक्षणः॥

पूर्ण चन्द्र के समान कान्ति वाले, शंख के से वर्ण वाले सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाले 'हि' कार का ध्यान करे।

धिकारं पाण्डवं ध्यायेत् पद्मस्योपरि संस्थितम्।
प्रतिग्रहकृतं पापं स्मरणादेव नश्यति ॥

पद्म के ऊपर स्थित पाण्डुवर्ण 'धि' कार का ध्यान करना चाहिये। प्रतिग्रह पाप स्मरण मात्र से ही दूर हो जाते हैं।

यो कारं रक्तवर्णं तु इन्द्रगोपसमप्रभम्।
ध्यात्वा प्राणि-वधं पापं निर्दहेन्मुनि पुंगवः ॥

रक्त वर्ण गोप के समान प्रभा वाले 'यो' कार का ध्यान कर श्रेष्ठ मुनि लोग, प्राणी वध के पाप से मुक्त होते हैं।

द्वितीयश्चैव यः प्रोक्तो यो कारो रक्त सन्निभः।
निर्दहेत् सर्व पापानि पुनः पापं न लिप्यते ॥

द्वितीय 'यो' कार, जो रक्त वर्ण का कहा जाता है उसका ध्यान करने पर, सब पापों को विनष्ट कर देता है तथा पुनः पापों में प्रलिप्त नहीं होना पड़ता।

नः कारन्तु मुखं पूर्वमादित्योदयसन्निभम्।
सकृद् ध्यात्वा द्विजः श्रेष्ठः स गच्छेत्परमं पदम् ॥

उदय होते हुए सूर्य की आभा वाले 'नः' कार का ध्यान पूर्व की ओर मुख करके करने से श्रेष्ठ द्विज परम पद को प्राप्त होता है।

नीलोत्पलदलश्यामं प्र-कारं दक्षिणायनम्।
सकृद् ध्यात्वा द्विजः श्रेष्ठः संगच्छेदीश्वरं पदम् ॥

नीलकमल के समान श्याम वर्ण 'प्र' कार का ध्यान करके श्रेष्ठ ब्राह्मण ईश्वर पद को प्राप्त करे।

सौम्यं गोरोचनापीतं चोकारं चतुराननम्।
सकृद् ध्यात्वा द्विजः श्रेष्ठः संगच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥

सौम्य गोरोचन जैसे पीले वर्ण वाले 'चो' कार का एक बार ध्यान कर, श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णु पद को प्राप्त होता है।

शुक्लवर्णेन्दुसंकाशं दकारं पश्चिमाननम्।
सकृद् ध्यात्वा द्विजः श्रेष्ठः संगच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ॥

शुक्लचन्द्र के समान पश्चिम मुखी 'द' कार का ध्यान कर श्रेष्ठ द्विज, ब्रह्मा पद को प्राप्त करता है।

यात्कारं तु शिवं प्रोक्तं चतुर्वदनसमप्रभम्।
प्रत्यक्ष फलदो ब्रह्म विष्णुरुद्र इति स्मृतिः ॥

'यात्' कार को तो शिव अर्थात् कल्याणकारी कहा है। यह ब्रह्मा के समान आभा वाला प्रत्यक्ष शुभ फल देने वाला है।

न भवेत्सूतकं तस्य मृतकं च न विद्यते।
यस्त्वेवं न विजानाति गायत्रीं च तथाविधाम् ॥

जो इस प्रकार गायत्री को सविधि जानता है, उसको न तो कभी सूतक ही होता है और न कभी मृत्यु ही होती है।

कथितं सूतकं तस्य मृतकं च मयानघ।
न च तीर्थ-फलं प्रोक्तं तथैव सूतके सति ॥

हे पाप रहित ! मैंने उसके सूतक मृतक वर्णन किये। उनके होने पर उसे न दान का फल प्राप्त है और न उसे तीर्थ में जाने का फल लाभ होता है।

गायत्री शक्ति ध्यान

वर्णास्त्र कुण्डिका हस्तां शुद्ध निर्मल ज्योतिषीम्।
सर्व तत्त्वमयीं वन्दे गायत्रीं वेदमातरम्॥

वर्णास्त्र युक्त कुण्डिका सहित हाथ वाली शुद्ध निर्मल ज्योति स्वरूपिणी, सब तत्त्वों से युक्त वेदमाता गायत्री की वन्दना करता हूँ।

मुक्ता-विद्रुमहेम-नील-धवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैः
युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयांकुशकशां शूलं कपालं तथा,
शंखं चक्रमथारविंदयुगलं हस्तैर्वहंतीं भजे॥

मोती, विद्रुम, सुवर्ण, नील तथा श्वेत आभायुक्त तीन नेत्र वाले मुख युक्त, चन्द्र जटित रत्नों के मुकुट को धारण करने वाली, तत्त्वार्थ प्रकाशन करने वाली, अभय वरदान प्रदान करने वाली, त्रिशूल, कपाल, शंख तथा चक्र और कमल हाथों में धारण करती हुई गायत्री देवी का ध्यान करता हूँ।

पञ्चवक्त्रां दशभुजां सूर्य कोटि समप्रभाम्।
सावित्रीं ब्रह्मवरदां चन्द्रकोटि सुशीतलाम्॥
त्रिनेत्रां सितवक्त्रां च मुक्ताहार विराजिताम्।
वराभयांकुशकशां हेम पात्राक्षमालिकाम्॥
शंखचक्राब्ज युगलं कराभ्यां दधतीं पराम्।
सितपंकज संस्थां च हंसारूढां सुखस्मिताम्॥
ध्यात्वैवं मानसाम्भोजे गायत्री-कवचं पठेत्।

पाँच मुँह, दश भुजा वाली, करोड़ों सूर्य के समान प्रभावती, सावित्री, ब्रह्मवरदा, करोड़ों चन्द्र के समान शीतल, तीन नेत्र वाली, शीतल वाणी वाली, मोतियों का हार धारण करने वाली, वर, अभय, अंकुश, हेमपात्र, अक्षमाला, शंख, चक्र हाथों में धारण करने वाली, श्वेत कमल पर स्थित, हंसारूढ़, मन्द-मन्द मुस्कराती हुई गायत्री का हृदय-कमल पर ध्यान करके तब गायत्री कवच का पाठ करना चाहिये।

कवच

कवच का अर्थ है आच्छादन। किसी से अपने को ढक लिया जाए, तो उसे कवच पहनना कहेंगे। लड़ाई के समय प्राचीनकाल में योद्धा लोग एक विशेष प्रकार के चमड़े और लोहे से बने हुए वस्त्र पहनते थे, जिससे दूसरों के द्वारा किया हुआ प्रहार उन वस्त्रों पर ही रह जाता था। उन वस्त्रों को कवच कहते थे। कवच का काम रक्षा करना है। रक्षा करने वाली वस्तु को कवच कहा जा सकता है।

जिस प्रकार पदार्थों से बने हुए कवच के द्वारा शरीर की रक्षा की जाती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न ऐसे दैवी कवच भी होते हैं, जिसका आवरण ओढ़ लेने पर हमारी रक्षा हो सकती है। मन्त्र शक्ति, कर्मकाण्ड और श्रद्धा का सम्मिश्रित आध्यात्मिक कवच इस प्रकार का है कि उससे अपने आपको आच्छादित कर लेने पर शरीर और मन पर आक्रमण करने वाले अनिष्टों को सफलता नहीं मिलती है।

नीचे दो कवच दिये हैं। एक में गायत्री के अक्षरों को 'शक्ति बीज' मानकर उनके द्वारा अपनी रक्षा का आच्छादन बुना जाता है। दूसरे कवच में गायत्री को शक्ति मानकर उसके विविध रूपों द्वारा अपने चारों ओर एक घेरा स्थापित किया जाता है। सुविधा और रुचि के अनुसार इनमें से किसी एक को या दोनों को ही काम में लाया जा सकता है।

शान्त चित्त होकर कवच का पाठ करते हुए ध्यान करना चाहिये कि मेरे अमुक अंग पर अमुक शक्ति का आच्छादन (कवच) चढ़ गया है। अब वहाँ कोई अनिष्ट उसी प्रकार आक्रमण नहीं कर सकता, जिस प्रकार योद्धा के शरीर पर धारण किये हुए कवच को शत्रु नहीं तोड़ सकते। अब मेरे अंग-प्रत्यंगों पर चढ़े हुए आध्यात्मिक कवच का भेदन करके कोई विकार मुझे शारीरिक, मानसिक अथवा किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचा सकते। इस भावना के साथ धारण किया हुआ कवच सचमुच ही एक बड़ा महत्त्वपूर्ण रक्षा-कार्य पूरा करता है।

अक्षर शक्ति कवच

तत्पदं पातु मे पादौ जंघे मे सवितुः पदम्।
वरेण्यं कटि देशन्तु नाभिं भर्गस्तथैव च॥

'तत्' ये मेरे पैरों की रक्षा करे। 'सवितुः' यह पद मेरी जंघाओं की रक्षा करे। 'वरेण्यं' पद मेरे कटि प्रदेश की रक्षा करे। 'भर्ग' पद मेरी नाभि की रक्षा करे।

देवस्य मे तु हृदयं धीमहीति गलं तथा।
धियो मे पातु जिह्वायां यः पदं पातु लोचने॥

'देवस्य' पद मेरे हृदय की तथा 'धीमहि' मेरे गले की रक्षा करे। 'धियो' मेरी जीभ की तथा 'यः' पद मेरे दोनों चक्षुओं की रक्षा करे।

ललाटे नः पदं पातु मूर्द्धानं मे प्रचोदयात्।

'नः' पद मेरे ललाट की और 'प्रचोदयात्' मेरे शिर की रक्षा करे।

तद्वर्णः पातु मूर्द्धानं सकारः पातु भालकम्।

'तत्' वर्ण मूर्धा की, 'स' कार भाल की रक्षा करे।

चक्षुषी मे विकारस्तु श्रोत्रे रक्षेत्तुकारकः।
नासापुटे वकारो मे रेकारस्तु मुखे तथा।

'वि' मेरे नेत्रों की और 'तु' कार कर्णों की रक्षा करे, 'व' कार नासापुट की और 'रे' कार कपाल की रक्षा करे।

णिकारस्त्वधरोष्ठे च यकारस्तूर्ध्व ओष्ठके।
आस्य मध्ये भकारस्तु गोकारस्तु कपोलयोः॥

'णि' कार नीचे के ओष्ठ की, 'य' कार उपरोष्ठ की, मुख के मध्य में 'भ' कार और 'गो' कार दोनों कपोलों की रक्षा करे।

देकारः कण्ठ देशे च वकारः स्कन्ध देशयोः।
स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वाम हस्तकम्॥

'दे' कार कण्ठ प्रदेश की, 'व' कार दोनों कन्धों में, 'स्य' कार दायें हाथ की तथा 'धी' यह बायें हाथ की रक्षा करे।

मकारो हृदयं रक्षेद्धिकारो जठरं तथा।
धिकारो नाभिदेशं तु यो कारस्तु कटि द्वयम्॥

'म' कार हृदय की रक्षा करे, 'हि' कार पेट की और 'यो' कार कटि द्वय की रक्षा करे।

गुह्यं रक्षतु यो कार ऊरू मे नः पदाक्षरम्।
प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जंघ देशयोः॥

'यो' कार गुह्य प्रदेश की रक्षा करे, दोनों ऊरुओं में 'न' पद रक्षा करे। 'प्र' कार दोनों घुटनों की रक्षा करे। 'चो' कार जंघा प्रदेश की रक्षा करे।

दकारो गुल्फदेशे तु याकारः पादयुग्मकम्।
तकार व्यंजनं चैव सर्वांग मे सदाऽवतु॥

'द' कार गुल्फ की रक्षा करे, 'य' कार दोनों पैरों की रक्षा करे। तकार व्यंजन मेरे समस्त अंगों की रक्षा करे॥

न्यास

न्यास का अर्थ है- स्थापना। किसी स्थान में किसी वस्तु की स्थापना करना न्यास करना कहलाता है। साधना पर स्थित होकर दाहिने हाथ का अँगूठा मध्यमा तथा अनामिका को मिलाकर विविध अंगों का स्पर्श करते हैं और उन अंगों में गायत्री-शक्तियों की स्थापना की भावना करते जाते हैं।

इस प्रकार की भावना से साधक अपने अंग-प्रत्यंगों में एक दैवी शक्ति का अनुभव करता है। यह भावना अपने श्रद्धा-विश्वास के कारण सचमुच दृढ़ता और पुष्टि प्रदान करती है।

न्यास शक्ति

सावित्री मे शिरः पातु शिखायाममृतेश्वरी।
ललाटं ब्रह्मदैवत्या भ्रुवौ मे पातु वैष्णवी॥

सावित्री शिर की रक्षा करें, अमृतेश्वरी शिखा की, ब्रह्म देवी ललाट की तथा वैष्णवी भ्रू की रक्षा करें।

कर्णौ मे पातु रुद्राणी सूर्या सावित्रिकाम्बके।
गायत्री वदनं पातु शारदा दशनच्छदौ॥

रुद्राणी कान की, सूर्य में रहकर सभी प्राणियों का सृजन करने वाली भगवती सावित्री दोनों नेत्रों की, गायत्री मुख की तथा शारदा ओठों की रक्षा करें।

द्विजान्यज्ञप्रिया पातु रसनां तु सरस्वती।
सांख्यायनी नासिकां मे कपोलौ चन्द्रहासिनी॥

द्विजों की यज्ञ-प्रिया जीभ की सरस्वती नासिका की सांख्यायनी तथा कपाल की चन्द्रहासिनी रक्षा करें।

चिबुकं वेद गर्भा च कण्ठं पात्वघनाशिनी।
स्तनौ मे पातु इन्द्राणी हृदयं ब्रह्मवादिनी॥

ठोड़ी में वेदगर्भा, अघनाशिनी कण्ठ की, इन्द्राणी स्तनों की, ब्रह्मवादिनी हृदय की रक्षा करें।

उदरं विश्व भोक्त्री च नाभिं पातु सुरप्रिया।
जघनं नारसिंही च पृष्ठं ब्रह्मांडधारिणी॥

विश्वभोक्त्री उदर की, सुरप्रिया नाभि की, नारसिंही जघन की तथा ब्रह्माण्डधारिणी पीठ की रक्षा करें।

पार्श्वौ मे पातु पद्माक्षी गुह्यं गोगोप्त्रिकाऽवतु।
ऊर्वोरोंकाररूपा च जान्वोः सन्ध्यात्मिकाऽवतु॥

पद्माक्षी पार्श्व की, गोप्त्रिका गुह्य की, ओंकार रूपा ऊरु की तथा सन्ध्यात्मिका जानु की रक्षा करें।

जंघयोः पातु अक्षोभ्या गुल्फयोर्ब्रह्मशीर्षका।
सूर्या पदद्वयं पातु चन्द्रा पादांगुलीषु च॥

अक्षोभ्या जंघा की, ब्रह्मशीर्षका गुल्फ की, सूर्या दोनों पैरों की अँगुलियों की रक्षा करें।

सर्वांगं वेदजननी पातु मे सर्वदाऽनघा।
इत्येतत्कवचं ब्रह्मन् गायत्र्याः सर्व-पावनम्।
पुण्यं पवित्रं पापघ्नं सर्व- रोग- निवारणम्॥

वेद जननी सब शरीर की, सर्वदा मेरी रक्षा करें । यह सर्वपावन ब्रह्म गायत्री का कवच है, जो पुण्यकारी, पवित्रकारी, पापनाशक तथा सर्वरोग निवारक है ।

त्रिसंध्यं यः पठेद्विद्वान् सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स भवेद्वेदवित्तमः ॥

त्रिसन्ध्या पाठ करने से विद्वान् सब कामनाओं को प्राप्त करता है, वह सब शास्त्रों का जानकार हो जाता है । वेदज्ञ हो जाता है ।

सर्व यज्ञ फलं प्राप्य ब्रह्मान्ते समवाप्नुयात् ।
प्राप्नोति जपमात्रेण पुरुषार्थांश्चतुर्विधान् ॥

सब यज्ञों का फल उसे मिलता है । अन्त में ब्रह्म की प्राप्ति होती है और जप मात्र से ही वह चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करता है ।

प्रार्थना और स्तुति से, उस शक्ति की महत्ता पर अपना ध्यान केन्द्रित होता है । महिमा में जिन विशेषताओं का वर्णन होता है, उनका प्रायः अपने में अभाव रहने से मन उस ओर आकर्षित होता है और उधर रुचि एवं श्रद्धा उत्पन्न होती है । जैसे किसी निर्धन और भुखमरे व्यक्ति के सामने किसी के बड़े भारी ऐश्वर्य का वर्णन किया जाए और स्वादिष्ट बढ़िया भोजनों का रोचक वर्णन किया जाए, तो वह उस ओर लालायित होता है और उस स्थिति को या उन स्वादिष्ट पदार्थों को प्राप्त करने के लिये उसके मन की लालसायें प्रदीप्त हो जाती हैं । यह लालसाओं का प्रदीप्त होना किसी कार्य में तत्परतापूर्वक लगने का प्रधान हेतु होता है । स्तोत्र पाठ से साधक में श्रद्धा भक्ति की जागृति होती है ।

गायत्री स्तोत्र

सुकल्याणीं वाणीं सुरमुनिवरैः पूजितपदाम् ।
शिवामाद्यां वन्द्यां त्रिभुवनमयीं वेदजननीम् ॥
परां शक्तिं स्रष्टुं विविधविध रूपां गुणमयीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ॥१ ॥
विशुद्धां सत्त्वस्थामखिल दुरवस्थादिहरणीम् ।
निराकारां सारां सुविमल तपो मूर्तिमतुलाम् ॥
जगज्ज्येष्ठां श्रेष्ठामसुरसुरपूज्यां श्रुतिनुताम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ॥२ ॥
तपो निष्ठाभीष्टांस्वजनमनसन्तापशमनीम् ।
दयामूर्तिं स्फूर्तिं यतितति प्रसादैकसुलभाम् ॥
वरेण्यां पुण्यां तां निखिल भव बन्धापहरणीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ॥३ ॥
सदाराध्यां साध्यां सुमति मति विस्तारकरणीम् ।
विशोकामालोकां हृदयगत मोहान्धहरणीम् ।
परां दिव्यां भव्यामगमभवसिन्ध्वेक तरणीम् ।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम् ॥४ ॥

अजां द्वैतां त्रैतां विविधगुणरूपां सुविमलाम्।
तमो हन्त्रीं-तन्त्रीं श्रुति मधुरनादां रसमयीम्॥
महामान्यां धन्यां सततकरुणाशील विभवाम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम्॥५॥
जगद्धात्रीं पात्रीं सकल भव संहारकरणीम्।
सुवीरां धीरां तां सुविमल तपो राशि सरणीम्॥
अनेकामेकां वै त्रिजगसदधिष्ठानपदवीम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम्॥६॥
प्रबुद्धां बुद्धां तां स्वजनमति जाड्यापहरणाम्।
हिरण्यां गुण्यां तां सुकविजन गीतां सुनिपुणीम्॥
सुविद्यां निरवद्याममल गुणगाथां भगवतीम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम्॥७॥
अनन्तां शान्तां यां भजति बुध वृन्दः श्रुतिमयीम्।
सुगेयां ध्येयां यां स्मरति हृदि नित्यं सुरपतिः॥
सदा भक्त्या शक्त्या प्रणतमतिभिः प्रीतिवशगाम्।
भजेऽम्बां गायत्रीं परमसुभगानन्दजननीम्॥८॥
शुद्ध चित्तः पठेद्यस्तु गायत्र्या अष्टकं शुभम्।
अहो भाग्यो भवेल्लोके तस्मिन् माता प्रसीदति॥९॥

गायत्री वाणी का कल्याण करने वाली है। सुर, मुनि द्वारा इसकी पूजा की जाती है। इसे शिवा कहते हैं। यह आद्या है, त्रिभुवन में वन्दनीय है, वेद-जननी है, पराशक्ति है, गुणमयी है तथा विविध रूप धारण करके प्रादुर्भूत होती है। इस माता गायत्री का, जो सौभाग्य और आनन्द का सृजन करती है, हम भजन करते हैं॥१॥

गायत्री विशुद्ध तत्त्व वाली, सत्त्वमयी तथा समस्त दुःख, दोष एवं दुरवस्था हरने वाली है। यह निराकार है, सारभूत है और अतुल तप की मूर्ति एवं विमल है। यह संसार में सबसे महान् है, ज्येष्ठ है। देवता तथा असुरों से पूजित है। उस सौभाग्य एवं आनन्द की जननी माता गायत्री का हम भजन करते हैं॥२॥

गायत्री का तपोनिष्ठ रहना भी अभीष्ट है। यह स्वजनों के मानसिक संतापों का शमन करने वाली है। यह स्फूर्तिमयी है, दया मूर्ति है और उसकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेना अत्यंत सुलभ है। वह संसार के समस्त बन्धनों का हरण करने वाली है एवं वरण करने योग्य है। उस परम सौभाग्य एवं आनन्द की जननी माता गायत्री का हम भजन करते हैं॥३॥

गायत्री निरन्तर आराधना करने योग्य है और उसकी आराधना करना अत्यंत साध्य है। वह सुमति का विस्तार करने वाली है। वह प्रकाशमय है, शोकरहित है और हृदय में रहने वाले मोहान्धकार को दूर करने वाली है। वह परा है, दिव्य है, अगम संसार सागर से तरने के लिये नौका के समान है, उस परम सौभाग्य और आनन्द की जननी माता गायत्री का हम भजन करते हैं।

गायत्री अजन्मा है, द्वैता है, त्रिगुण एवं सुविमल रूपमयी है। तम को दूर करती है। विश्व की संचालिका है। वाणी सुनने में मधुर एवं रसमयी है। वह महामान्य है, धन्य है और उनका वैभव निरंतर करुणाशील है। उस परम सौभाग्य एवं आनन्द की जननी माता गायत्री का हम भजन करते हैं॥५॥

गायत्री संसार की माता है और सकल संसार की संहार करने की भी उनमें शक्ति है। वह वीर है, धीर है

और उसका जीवन पवित्र तपोमय है । वह एक होते हुए भी अनेक रूपों में है । उसकी पदवी संसार की अधिष्ठात्री की है । उस परम सौभाग्य एवं आनन्द की जननी माता गायत्री का हम भजन करते हैं ॥६ ॥

गायत्री प्रबुद्ध है, बोधमयी है, स्वजनों की जड़ता को नाश करने वाली है, हिरण्यमयी है, गुणमयी है, जिनकी निपुणता सुकवि जनों द्वारा गाई जाने वाली है । निरवद्य है, उनके रूपों में गुणों की गाथा अकथनीय है । वे भगवती अम्बा गायत्री उस परम सौभाग्य एवं आनंद की जननी है, मैं उनका भजन करता हूँ ॥७ ॥

गायत्री अनन्त है, इसका भजन करके पण्डित लोग वेदमय हो जाते हैं इसका गान, ध्यान तथा स्मरण इन्द्र नित्यप्रति हृदय से करता है । सदा भक्तिपूर्वक, शक्ति के साथ, आत्म-निवेदन पूर्वक, प्रेमयुक्त आनंद एवं सौभाग्य की जननी माता गायत्री की मैं उपासना करता हूँ ॥८ ॥

इस शुभ गायत्री अष्टक को जो लोग शुद्ध चित्त होकर पढ़ते हैं, वे इस संसार में भाग्यवान् हो जाते हैं और माता की उन पर पूर्ण कृपा रहती है ॥९ ॥

४-शापमोचन

गायत्री को शाप लगने के बारे में दो कथायें पुराणों में मिलती हैं । एक है कि ब्रह्माजी की प्रथम पत्नी सावित्री अपने पति की आज्ञा न मानकर यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुई , तब उन्होंने दूसरी पत्नी गायत्री को साथ लेकर यज्ञ-कर्म पूरा किया । इस पर सावित्री बहुत कुपित हुईं और उन्होंने गायत्री को शाप दिया कि तुम्हारी शक्ति नष्ट हो जायेगी । इस शाप से सर्वत्र बड़ी चिन्ता फैली । देवताओं ने अनुनय-विनय कर प्रार्थना की कि गायत्री को शाप से मुक्त कर दिया जाए, अन्यथा ब्रह्मशक्ति की बड़ी भारी क्षति होगी । तब सावित्री ने एक मन्त्र बताया, जिसके पढ़ने से गायत्री शाप मुक्त हो जाती है और जो उसका प्रयोग नहीं करता, उसके लिये गायत्री शाप युक्त रहती है ।

दूसरा उपाख्यान इस प्रकार मिलता है कि किसी समय ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र ने अपनी-अपनी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने की शक्ति प्राप्त करने के लिये गायत्री-उपासना की थी, परन्तु गायत्री ने इनकी इच्छा पूर्ण न की । तब उन तीनों ने क्रुद्ध होकर गायत्री को शाप दिया कि तुम्हारी शक्ति नष्ट हो जाए । शाप के फलस्वरूप गायत्री शक्तिहीन हो गयीं । तब देवताओं की प्रार्थना करने पर उन तीनों ने शाप-मुक्ति का यह उपाय बताया कि जो मनुष्य शापमोचन मन्त्र के साथ जप करेगा, उसके लिये गायत्री शक्ति वाली होगी ।

शापोद्धार के मन्त्र

ॐ अस्य गायत्री शापविमोचन मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दो वरुणो देवता ब्रह्मशापविमोचने विनियोगः ।

इस गायत्री शाप विमोचन, मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं तथा ब्रह्म-शाप के मोचन में इसका प्रयोग होता है ।

ॐ यद् ब्रह्मेति ब्रह्मविदो विदुस्त्वां पश्यन्ति धीराः ।
सुमनसो त्वं गायत्रि ब्रह्मशापाद्विमुक्ता भव ॥

हे गायत्रि ! ब्रह्मवेत्ता जिसको ब्रह्मनाम से कहते हैं, धीर पुरुष अपने अन्तःकरण में आपको उसी रूप में देखते हैं, आप ब्रह्म-शाप से विमुक्त हों ।

ॐ अस्य गायत्री वशिष्ठशापविमोचन मन्त्रस्य वशिष्ठ ऋषिः, अनुऽष्टुप् छन्दो, वशिष्ठ देवता, वशिष्ठ शाप विमोचने विनियोगः ॥

गायत्री के वशिष्ठ-शाप विमोचन मन्त्र के वशिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, वशिष्ठ देवता हैं तथा वशिष्ठ के शाप विमोचन में विनियोग है ।

ॐ अर्क ज्योतिरहं ब्रह्म ब्रह्म ज्योतिरहं शिवः ।
शिव ज्योतिरहं विष्णुः विष्णुर्ज्योतिः शिवः परः ।
गायत्रि त्वं वशिष्ठशापाद्विमुक्ता भव ।।

मैं सूर्य की ज्योति ब्रह्मा हूँ । मैं ब्रह्मा की ज्योति शिव हूँ । मैं शिव की ज्योति विष्णु हूँ । मैं विष्णु की ज्योति शिव हूँ । हे गायत्रि ! आप वशिष्ठ के शाप से विमुक्त हों ।

ॐ अस्य गायत्री विश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, आद्या देवता विश्वामित्र शापविमोचने विनियोगः ।।

विश्वामित्र शाप विमोचन मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और आद्य देवता हैं तथा विश्वामित्र के शाप विमोचन में इनका प्रयोग होता है ।

ॐ अहो देवि महादेवि सन्ध्ये विद्ये सरस्वति ।
अजरे अमरे चैव ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते ।
गायत्रि त्वं विश्वामित्रशापाद्विमुक्ता भव ।।

हे देवि ! हे महादेवि ! हे ज्ञानरूपे ! हे सन्ध्या रूपे ! हे सरस्वति ! हे जरारहिते ! हे मरणरहिते ! आपको नमस्कार है । हे गायत्रि ! आप विश्वामित्र के शाप से मुक्त हों ।

५-हवन

गायत्री- हवन की विधि गायत्री महाविज्ञान के प्रथम भाग में बताई जा चुकी है कि हवन किस प्रकार करना चाहिये तथा किस उद्देश्य के लिये किन-किन सामग्रियों का हवन करना चाहिये, कुण्ड या वेदी कैसे बनानी चाहिये, उन सब बातों को बार-बार दुहराने से कोई लाभ नहीं । पाठक उसे देखकर हवन का सारा परिचय प्राप्त कर लें । आहुति मन्त्र के लिये गायत्री ही एक मात्र मन्त्र है, उसके अन्त में 'स्वाहा' शब्द जोड़कर आहुति देनी चाहिये ।

६-तर्पण

तर्पण के लिये नदी या सरोवर में खड़े होकर, कुश हाथ में लेकर, यज्ञोपवीत को अँगूठे और तर्जनी के बीच में होते हुए हाथ में अटका हुआ निकालकर, अंजलि में जल भरकर अर्घ्य की भाँति उँगलियों के छोरों की ओर जल विसर्जित करे । तर्पण के समय दोनों हाथों की अनामिका उँगलियों में कुश की बनी हुई अँगूठी पहने । शिखा में, दोनों पैरों के नीचे, यज्ञोपवीत में तथा धोती की अण्टी में कुश के टुकड़े लगा लेने चाहिये ।

तर्पण मन्त्र-

ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषमृग्यजुः साममंडलान्तर्गत सवितारमावाहयामीत्यावाह्य तर्पणं कुर्यात् ।

ॐ भूः पुरुषमृग्वेदं तर्पयामि ।
ॐ भुवः पुरुषं यजुर्वेदं तर्पयामि ।
ॐ स्वः पुरुषं सामवेदं तर्पयामि ।
ॐ महः पुरुषमथर्ववेदं तर्पयामि ।
ॐ जनः पुरुषमितिहासपुराणं तर्पयामि ।
ॐ तपः पुरुषं सर्वागमं तर्पयामि ।
ॐ सत्यं पुरुषं सर्वलोकं तर्पयामि ।
ॐ भूर्भुवः स्वः (पुरुषं) ऋग्यजुः साममण्डलान्तर्गतं तर्पयामि ।
ॐ भूरेकं पादं गायत्रीं तर्पयामि ।

ॐ भुवर्द्विपादं गायत्रीं तर्पयामि।
ॐ स्वस्त्रिपादं गायत्रीं तर्पयामि।
ॐ भूर्भुवः स्वश्चतुष्पादं गायत्रीं तर्पयामि।
ॐ उषसं तर्पयामि।
ॐ गायत्रीं तर्पयामि।
ॐ सावित्रीं तर्पयामि।
ॐ सरस्वतीं तर्पयामि।
ॐ वेदमातरं तर्पयामि।
ॐ पृथिवीं तर्पयामि।
ॐ जयां तर्पयामि।
ॐ कौशिकीं तर्पयामि।
ॐ सांकृतीं तर्पयामि।
ॐ सर्वापराजितां तर्पयामि।
ॐ सहस्त्रमूर्तिं तर्पयामि।
ॐ अनन्तमूर्तिं तर्पयामि।
एभिर्मन्त्रैश्च यो नित्यं चतुर्विंशतिभिर्द्विजः।
सुतर्पयति गायत्रीं स सन्ध्याफलमाप्नुयात्॥

७-मार्जन

कुश की एक छोटी-सी कूँची बना लेनी चाहिये। इसका पूजन करके उसमें पवित्रीकरण की शक्ति की श्रद्धा करनी चाहिये। तदनन्तर इस कूँची को ताम्रपात्र में रखे हुए जल में डुबो-डुबोकर बार-बार ऊपर छिड़कना चाहिये, यही मार्जन है। मार्जन की विधि और नौ मन्त्र नीचे दिये जाते हैं। कोई-कोई आचार्य इन नौ मन्त्रों की जगह गायत्री मन्त्र से ही मार्जन का काम लेते हैं।

संकल्प्य मार्जनं कुर्यादापोहिष्ठा कुशोदकैः।
पादे पादे क्षिपेन्मूर्ध्नि प्रतिप्रणवसंयुताम्॥१॥

संकल्प तथा मार्जन करे। मार्जन प्रणवयुक्त आपोहिष्ठा इत्यादि मन्त्र द्वारा कुशोदक से करे, प्रत्येक पाद पर, मूर्धा पर जल निक्षेप करे।

आत्मानं प्रणवेनैव परिसिंच्य जलेन सः।
कुर्यात्सप्रणवैः पादैर्मार्जनं तु कुशोदकैः॥
ततो हि पाणिस्थ जलं सकुशं प्रक्षिपेदधः॥२॥

प्रणव से आत्म-कमल पर परिसिंचन करे, फिर कुश सहित जल को नीचे फेंक दें।

स्पृष्ट्वा हस्तेन वामेन तटं नद्यादिकेषु च।
पाणिना दक्षिणेनैव मार्जयेत् सकुशेन तु॥३॥

नदी आदि के तट को बायें हाथ से स्पर्श करे, दाहिने हाथ में कुश को लेकर मार्जन करे।

पाणिस्थितोदकेनैव वामहस्तोदकेन वा।
गृहे तु मार्जनं कुर्यान्नान्यथेत्यब्रवीन्मनुः॥४॥

दायें हाथ पर रखा हुआ जल हो या बायें पर, मनु कहते हैं कि घर में उससे मार्जन करे।

आपोहिष्ठेति त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषि आपो देवता गायत्री छन्दः मार्जने विनियोगः।

आपोहिष्ठा मंत्र की तीन ऋचाओं के सिन्धु द्वीप हैं, आपः गायत्री है, मार्जन उसका विनियोग है।

ॐ आपोहिष्ठामयो भुवः।१।
ॐ तान ऊर्जे दधातन।२।
ॐ महेरणाय चक्षसे।३।
ॐ यो वः शिवतमो रसः।४।
ॐ तस्यभाजयतेह नः।५।
ॐ उशतीरिव मातरः।६।
ॐ तस्माऽअरंगमामवः।७।
ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ।८।
ॐ आपोजनयथा च नः।९।

दर्भान्विसृज्य कुशपाणिर्मार्जयेत्। प्रणव युक्तसमस्तया व्याहृत्या गायत्र्या आपोहिष्ठेति नवपादैः शन्नोदेवीरिति सप्तभिर्मार्जयेत्।

दर्भ को फेंककर जिस हाथ में कुश है, उसे धो डाले। सबके साथ प्रणव लगाकर व्याहृति के साथ गायत्री से आपोहिष्ठा के नव पदों से सात बार मार्जन करे।

नवपादमतिक्रम्य अथर्चा वसुसंख्यया।
ऋतं च प्रणवेनैव मार्जनं समुदाहृतम्॥

नव पाद को छोड़कर- लाँघकर- आठ बार प्रणव सहित 'ऋतं च' मन्त्र से मार्जन करे।

भुवि मूर्ध्नि तथाऽऽकाश आकाशे भुवि मस्तके।
मस्तके भुवि मूर्ध्निस्यान्मार्जनं समुदाहृतम्॥

भू, मूर्धा तथा आकाश, आकाश; भू और मस्तक; मस्तक, भू और मूर्धा पर क्रमशः मार्जन करे।

८- मुद्रा

गायत्री जप की चौबीस मुद्राएँ हैं। हाथ को विशेष आकृति में मोड़ने पर विविध प्रकार की मुद्रायें बनती हैं। मुद्रायें गायत्री प्रतिमा या मन्त्र के सामने एकान्त में दिखाई जाती हैं। किसी के सामने इनका प्रदर्शन नहीं किया जाता। जब दिखाते हैं तब या तो उपस्थित लोगों को हटा देते हैं या किसी वस्त्र का पर्दा कर देते हैं, ताकि उन्हें कोई देख न सके। नीचे चौबीस मुद्राओं का वर्णन किया जाता है।

गायत्री की २४ मुद्रायें

अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णा मुद्राः क्रमेण तु।
सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा॥१॥

अब क्रमशः वर्णों में मुद्राओं का वर्णन करते हैं। सुमुख, सम्पुट वितत, विस्तृत।

द्विमुखं त्रिमुखं चैवं चतुः पञ्चमुखं तथा।
षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा॥२॥

द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकाञ्जलि।

शकटं यम पाशं च ग्रन्थितं सन्मुखोन्मुखम् ।
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यकूर्मवराहकम् ।।३ ।।

शकट, यमपाश, ग्रन्थित, सन्मुखोन्मुख, प्रलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराहक ।

सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं, मुद्‌गरं, पल्लवं तथा ।
एताः मुद्राः चतुर्विंशज्जपादौ परिकीर्तिताः ।।४ ।।

सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्‌गर, पल्लव- ये २४ मुद्रायें जप के आदि में करने के लिये कही गयी हैं ।

चतुर्विंशतिरिमा मुद्रा गायत्र्याः सुप्रतिष्ठिताः ।
एता मुद्राः न जानाति गायत्री निष्फला भवेत् ।।५ ।।

उपर्युक्त चौबीस मुद्रायें गायत्री में सुप्रसिद्ध हैं । इन मुद्राओं को न जानने वाले की गायत्री निष्फल हो जाती है ।
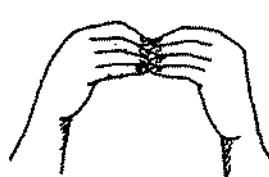
१. सुमुखम् २. सम्पुटम् ३. विततम्
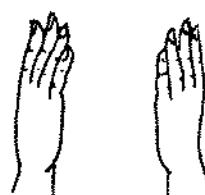
४. विस्तृतम् ५. द्विमुखम् ६. त्रिमुखम्
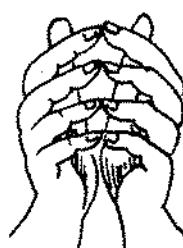
७. चतुर्मुखम् ८. पञ्चमुखम्
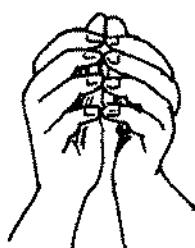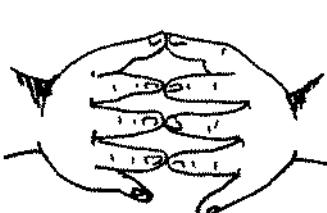
९. षण्मुखम् १०. अधोमुखम्
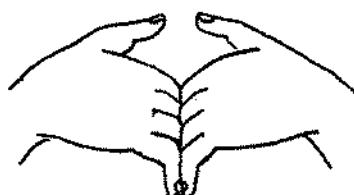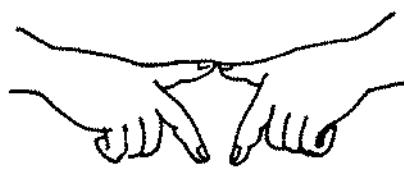
११. व्यापकाञ्जलिकम्
१२. शकटम्
१३. यमपाशम्
१४. ग्रन्थितम्
१५. उन्मुखोन्मुखम्
१६. प्रलम्बम्
१७. मुष्टिकम्
१८. मत्स्यः
१९. कूर्मः
२०. वराहकम्
२१. सिंहाक्रान्तम्
२२. महाक्रान्तम्
२३. मुद्गरम्
२४. पल्लवम् ।
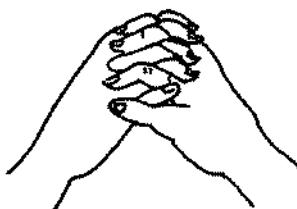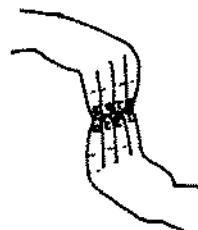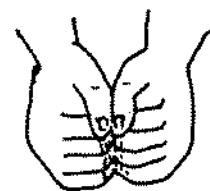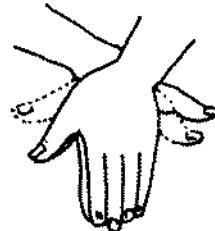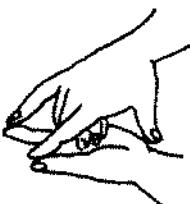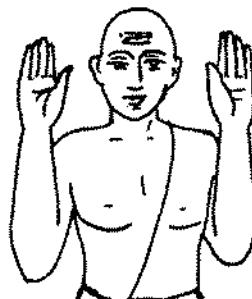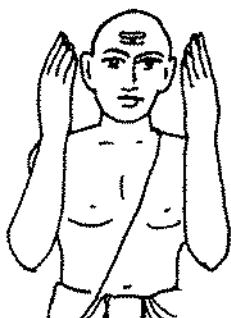
९-विसर्जन

पूजा के समय गायत्री का आह्वान किया जाता है। प्रतिदिन पुरश्चरण पूरा करते हुए गायत्री का विसर्जन करना चाहिये। विसर्जन का मन्त्र नीचे है-

गायत्री का आवाहन मन्त्र-

आयातु वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातः ब्रह्मयोनेनमोऽस्तु ते।

गायत्री का विसर्जन मन्त्र -

उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वत मूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥

१०-अर्घ्य-दान

पुरश्चरण से बचे हुए जल से सूर्य के सामने अर्घ्य देना चाहिये। यह जल पवित्र भूमि में छोड़ा जाना चाहिये अथवा किसी चौड़े मुँह के पात्र में अर्घ्य से गिरे हुए जल को लेकर उसे गौओं को पिला देना चाहिये। अर्घ्य की विधि-

मुक्त हस्तेन दातव्यं मुद्रां तत्र न कारयेत्।
तर्जन्यंगुष्ठयोगं तु राक्षसी मुद्रिका स्मृता॥

अर्घ्य देते समय तर्जनी अँगुली की जड़ में अँगूठा मिला हुआ न होना चाहिये। अतः अँगूठे को तर्जनी से बिना मिलाये ही अर्घ्य देना चाहिये। अँगूठे का तर्जनी के साथ योग हो जाने पर राक्षसी मुद्रा हो जाती है।

गायत्र्या त्रिरर्घ्यं सूर्याय दद्यात्।

गायत्री मन्त्र से तीन बार अर्घ्य सूर्य को दे। पश्चात् नीचे लिखे हुए मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य दे। मन्त्र -

सूर्यदेव सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

हे सहस्त्ररश्मि सूर्य ! तेज की राशि ! जगत्पति ! मेरे ऊपर आप कृपा करें तथा भक्ति से दिये हुए मेरे अर्घ्य को ग्रहण करें।

११-क्षमा प्रार्थना

प्रत्येक साधना के अन्त में इस क्षमा प्रार्थना स्तोत्र का पाठ करना चाहिये। इससे जाने या अनजाने में हुई भूलों का दुष्परिणाम शांत हो जाता है।

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो,
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति-कथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनम्,
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेश-हरणम्।

न तो मैं मन्त्र, यन्त्र जानता हूँ और न स्तुति ही जानता हूँ। आवाहन, ध्यान, स्तुति-कथा भी नहीं जानता हूँ, पूजा और मुद्रा भी नहीं जानता, लेकिन इतना जानता हूँ कि तुम्हारी शरण क्लेश हरने वाली है।

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया,
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्याच्युतिरभूत्।
तदेतत्क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे,
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥

हे शिवे ! सकल उद्धारिणी जननी ! विधि के अज्ञान से, धन की कमी से, आलस्य और सामर्थ्यहीनता के कारण आपकी चरण सेवा करने में जो भूल रह गयी हो, उसको क्षमा करना, क्योंकि पुत्र-कुपुत्र हो सकता है, लेकिन माता-कुमाता नहीं होती।

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः,
परं तेषां मध्ये विरल तरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे,
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥

हे माँ ! पृथ्वी पर तेरे बहुत से पुत्र हैं, जो सरल हैं, पर उनके बीच में तेरा पुत्र अकेला मैं ही टेढ़ा हो गया हूँ। फिर भी हे माँ ! तेरे लिये त्याग उचित नहीं है ; क्योंकि पुत्र कुपुत्र हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं होती है।

जगन्मातर्मातस्तव चरण सेवा न रचिता,
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे,
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥

हे जगत् की माता ! मैंने तेरे चरण की सेवा नहीं की। हे देवि ! तूने मुझे पर्याप्त द्रव्य भी नहीं दिया, जिससे दान ही करता; परंतु तू मेरे ऊपर खूब स्नेह करती है। पुत्र-कुपुत्र हो जाता है, परन्तु माता-कुमाता नहीं होती है।

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा,
निरातंको रंको विहरति चिरं कोटि कनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं,
जनः को जानीते जननि जपनीयं जप विधौ॥

हे माँ ! तुम्हारी स्तुति करने से नीच और चाण्डाल भी मीठी और मधुर वाणी बोलने वाले महाकवि हो जाते हैं और रंक भी दुःख की अग्नि से बचकर करोड़ों स्वर्ण मुहरों से युक्त धनिक बन जाते हैं। तुम्हारा शब्द कान में पड़ते ही मनुष्य श्रेष्ठ बल प्राप्त करता है। हे माता ! तुम्हारी स्तुति करने के ढंग को कौन जानता है ?

जगदम्ब ! विचित्रमत्र किं, परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराध परंपरावृतं, नहि माता समुपेक्षते सुतम्॥

हे जगदम्बे ! यदि तुम्हारी मेरे ऊपर कृपा हो, तो इसमें क्या विचित्रता है ? अपराधों की चाहे कितनी ही परम्परा क्यों न हो, लेकिन माँ अपने पुत्र की कभी उपेक्षा नहीं करती।

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा नहि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथा योग्यं तथा कुरु॥

मेरे समान तो कोई पातकी नहीं है तथा तुम्हारे समान पाप नाश करने वाली कोई नहीं है, ऐसा जानकर हे महादेवि ! जैसा तुम्हें उचित लगे, वैसा करो।

१२-ब्राह्मण भोजन

पुरश्चरण में प्रतिदिन ब्राह्मण भोजन कराने का विधान है। जो लोग पुरश्चरण कार्य में नियोजित हैं, उनकी भोजन व्यवस्था का भार तो, यजमान को उठाना ही होता है, इसके अतिरिक्त चिड़ियों को दाना, चींटियों को चावल का चूर्ण और शक्कर मिलाकर, गौओं को आटे की लोई खिलानी चाहिये। उपस्थित लोगों को पंचामृत-दूध, दही, घृत, मधु-शर्करा, जल एवं तुलसी-पत्र का सम्मिश्रण पञ्चामृत अथवा कोई अन्य मधुर वस्तु प्रसाद रूप में वितरित करनी चाहिये।

समाप्ति के साथ-साथ कीर्तन, सामूहिक प्रार्थना एवं आरती का सम्मिलित रूप से मधुर गायन करना चाहिये और अभिवादन एवं आशीर्वाद की भावनाओं के साथ सब लोगों को कार्य समाप्त करना चाहिये।

प्रत्येक शुभ कार्य के अन्त में दान का विधान है। कहा गया है कि बिना दक्षिणा का यज्ञ निष्फल होता है। ज्ञान-प्रसार करने वाली संस्थाओं, लोक सेवी ब्रह्मपरायण सत्पुरुषों एवं दीन-दुःखियों को, पण्डितों को यथाशक्ति प्रत्येक शुभ कार्य के अन्त में दान देना आवश्यक है। यह दान, भोजन, धन, वस्त्र, पुस्तकें या अन्य उपयोग की वस्तुओं के रूप में किया जा सकता है।

गायत्री लहरी

अमन्दानंदेनामरवरगृहे वास निरतां-
नरं गायन्तं या भुवि भवभयात्त्रायत इह।
सुरेशैः सम्पूज्यां मुनिगणनुतां तां सुखकरीं
नमामो गायत्रीं निखिलमनुजाघौघशमनीम् ॥१॥

अर्थ- आनन्दपूर्वक देवलोक में निवास करने वाली, अपने भक्त की सांसारिक भयों से रक्षा करने वाली, देवताओं द्वारा पूजित, प्राणिमात्र के पापों का विनाश करने वाली गायत्री माता को हम भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं।

अवामा संयुक्तं सकलमनुजैर्जाप्यमभितो-
ह्यपायात्पायाद्भूरथ भुवि भुवः स्वः पदमिति।
पदं तन्मे पादाववतु सवितुश्चैव जघने-
वरेण्यं श्रोणिं मे सततमवतान्नाभिमपि च ॥२॥
पदं भर्गो देवस्य मम हृदयं धीमहि तथा-
गलंपायान्नित्यं धिय इह पदं चैव रसनाम्।
तथा नेत्रे योऽव्यादलकमवतान्नः पदमिति-
शिरोदेशं पायान्मम तु परितश्चान्तिमपदम् ॥३॥

अर्थ- ओंकार और अनुस्वार से युक्त प्रत्येक प्राणी द्वारा जपने योग्य ॐ भूर्भुवः स्वः ये पद सम्पूर्ण पापों से मेरी रक्षा करें तथा तत् पद पैरों की, सवितुः जांघों की, वरेण्यं कटि की, भर्गो पद नाभि की, देवस्य पद हृदय की धीमहि, गले की, धियः जिह्वा की, यः नयनों की और नः ललाट की एवं अन्तिम पद प्रचोदयात् मेरे सिर की सर्व प्रकार से रक्षा करे। इन दोनों श्लोकों में पूरा गायत्री मन्त्र है और उसके द्वारा अपने सर्वांग संरक्षण की प्रार्थना की गयी है। इसे युग्मक कहते हैं।

अये दिव्ये देवि त्रिदशनिवहैर्वंदितपदे,
न शेकुस्त्वां स्तोतुं भगवति महान्तोऽपि मुनयः।
कथंकारं तर्हिस्तुतिततिरियं मे शुभतरा-
तथा पूर्णा भूयात् त्रुटिपरियुता भावरहिता ॥४॥

अर्थ- हे देवताओं द्वारा पूजनीय चरणों वाली गायत्री माता ! तेरी स्तुति करने में बड़े-बड़े मुनि भी समर्थ नहीं हैं। तब मेरी यह दोषों से युक्त तथा भाव से रहित स्तुति उपयुक्त कैसे हो सकती है ? तथापि मैं स्तुति करता हूँ, सो स्वीकृत करो।

भजन्तं निर्व्याजं तव सुखदमन्त्रं विजयिनं,
जनं यावज्जीवं जपति जननि त्वं सुखयसि।
न वा कामं काचित् कलुषकणिकाऽपि स्पृशति तं,
ससारं संसारम् सरति सहसा तस्य सततम् ॥५॥

हे माता ! तेरे सुखद और विजयी मन्त्र को जो जन जपता है, उसको तुम सुखी बनाती हो और उसको पाप की कणिका स्पर्श नहीं करती एवं उसका सांसारिक वातावरण आनन्दयुक्त हो जाता है ।

दधानां ह्याधानं सितकुवलयास्फालनरुचां,
स्वयं विभ्राजन्तीं त्रिभुवनजनाह्लादनकरीम् ।
अलं चालं चालं मम चकितचित्तं सुचपलं,
चलच्चन्द्रास्ये त्वद्वदनरुचमाचामय चिरम् ॥६ ॥

हे चंचल चन्द्र के समान मुख वाली ! श्वेत कमल की कमनीय कान्ति-समूह को धारण करने वाली, संसार के प्राणियों को सुख देने वाली दाँतों की ज्योति का मेरे चलायमान चंचल चित्त को शीघ्र पान कराओ ।

ललामे भाले ते बहुतर विशालेऽति विमले,
कला चञ्चच्चांद्री रुचिरतिलकावेन्दुकलया ।
नितान्तं गोमाया निविड तमसो नाश व्यसना,
तमो मे गाढं हि हृदयसदनस्थं ग्लपयतु ॥७ ॥

हे भगवति ! आपके विशाल भाल पटल पर, जो चन्द्रमा की कला अथवा चन्द्राकार तिलक शोभायमान हो रहा है, उसकी कान्ति जो भूतल के अन्धकार का नाश करने वाली है, वह मेरे हृदय-सदन के अन्धकार को दूर करे ।

अये मातः किन्ते चरण-शरणं संश्रयवतां-
जनानामन्तस्थो वृजिन हुतभुक् प्रज्वलति यः ।
तदस्याशु सम्यक् प्रशमनहितायैव विधृतं-
करे पात्रं पुण्यं सलिलभरितं काष्ठरचितम् ॥८ ॥

हे माता गायत्री ! आपके चरणों की शरण ग्रहण करने वाले प्राणियों के हृदय में, पाप रूपी जो आग लगी है, उसको शीघ्र शान्त करने के लिये आपने अपने कर-कमल में, जल-पूरित काष्ठनिर्मित कमण्डलु धारण किया है क्या ?

अथाहोस्विन्मातः सरिदधिपतेः सारमखिलं,
सुधारूपं कूपं लघुतरमनूपं कलयति ।
स्वभक्तेभ्यो नित्यं वितरसि जनोद्धारिणि शुभे,
विहीने दीने मय्यपि कृपय किंचित् करुणया ॥९ ॥

अथवा हे माता ! समुद्र के सारभूत अमृत को ही अपने कमण्डलु रूपी छोटे से कूप में भरकर, अपने प्रिय भक्तों को वितरित करती हो । हे प्राणिमात्र के उद्धार करने वाली शुभे ! दीन-हीन मुझ पर भी कुछ कृपा कीजिये ।

सदैव त्वत्पाणौ विधृतमरविन्दं द्युतिकरं,
त्विदं दर्शं दर्शं रविशशिसमं नेत्रयुगलम् ।
विचिंत्य स्वां वृत्तिं भ्रमविषमजालेऽस्ति पतित-
मिदं मन्ये नोचेत् कथमिति भवेदर्ध-विकचम् ॥१० ॥

हे माता! तुम्हारे हाथ में जो कमल शोभायमान हो रहा है, वह आपके सूर्य और चन्द्र के समान नेत्र युगल को देखकर भ्रम में पड़ गया है और अपनी वृत्ति का विचार कर सूर्योदय समझ खिलना चाहता है और चन्द्रमा को देख मुकुलित होना चाहता है, ऐसा मैं मानता हूँ । नहीं तो वह कमल दिन-रात अधखिला क्यों रहता है ?

स्वयं मातः किम्वा त्वमसि जलजानामपि खनि-
र्यतस्ते सर्वांगं कमलमयमेवास्ति किमु नो।
तथा भीत्या तस्माच्छरणमुपयातः कमलराट्-
प्रयुञ्जानोऽश्रान्तं भवति तदिहैवासनविधौ ॥११ ॥

अथवा हे माता ! तुम स्वयं कमलों की खान हो क्या, क्योंकि आपका सम्पूर्ण अंग ही क्या कमलमय नहीं है ? अतएव जो कमलों का राजा है, वह आपके शरण में डर कर आया है और वही निरन्तर आपके आसन के प्रयोग में आता है।

दिवौकोभिर्वन्द्ये विकसित सरोजाक्षि सुखदे,
कृपादृष्टेर्वृष्टिः सुनिपतति यस्योपरि तव।
तदीया वाञ्छा किं द्रुतमनु विधेयास्ति सकला,
अतोमंतोस्तंतून् मम सपदि छित्वाऽम्ब सुखय ॥१२ ॥

हे देवताओं द्वारा पूजनीये ! विकसित कमल के समान नेत्र वाली सुखदायिनी, आपकी कृपा दृष्टि की वर्षा जिस पर होती है, उसकी सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण कर देती हो, अतएव मेरे भी अपराध शूलों का छेदन कर सुख प्रदान करो।

करेऽक्षाणां माला प्रविलसति या तेऽतिविमले,
किमर्थं सा कान् वा गणयसि जनान् भक्ति निरतान्।
जपन्ती कं मन्त्रं प्रशमयसि दुःखं जनिजुषा,
मये का वा वांछा तव वरिवृति त्वत्र वरदे ॥१३ ॥

हे माता ! तेरे एक हाथ में जो अक्षमाला विराजित है वह किस लिये है ? किन भक्तों को उसके द्वारा गिनती हो ? अथवा किस मन्त्र को जपकर प्राणियों के दुःखों का शमन करती हो ? हे वरदायिनी, अथवा और मन्त्र जपकर क्या करना चाहती हो ?

न मन्ये धन्येऽहं त्ववितथमिदं लोकगदितं,
ममात्रोक्तिर्मत्वा कमलमिव फुल्लं तव करम्।
विजृम्भा संयुक्त द्युतिमयमिदं कोकनदमि-
त्यरं जानानेयं मधुकरततिः संविलसति ॥१४ ॥

हे धन्ये ! यह जो लोकोक्ति ऊपर कही गयी है, इसे मैं तो उपयुक्त नहीं मानता। इस विषय में मेरी उक्ति ही युक्त है कि आपके हाथों को विकसित कमल मानकर यह भ्रमरों की पंक्ति मँडरा रही है।

महामोहाम्भोधौ मम निपतिता जीवनतरि-
र्निरालम्बा दोला चलित दुरवस्थामधिगता।
जलावर्त व्यालो ग्रसितुमभितो वांछति च तां
करालम्बं दत्त्वा भगवति द्रुतं तारय शिवे ॥१५ ॥

हे भगवति ! कल्याणमयी इस संसार रूपी विशाल समुद्र में, मेरी जीवन नौका पड़ी हुई है और वह बिना सहायता के बुरी अवस्था को प्राप्त हो गयी है। उसको भँवर रूप सर्प डसने की इच्छा कर रहा है। अतएव हे माता ! उसे शीघ्र तिराओ तथा अपने कर कमल का सहारा दो।

दधानासित्वं यत् स्ववपुषि पयोधारि-युगल-
मिति श्रुत्वा लोकैर्मम मनसि चिन्ता समभवत्।
कथं स्यात् सा तस्मादलक लतिका मस्तक भुवि,
शिरोद्यां ह्द्येयं जलदपटली खेलति किल ॥१६ ॥

हे माता ! आप दो पयोधरों को धारण करती हो, ऐसा लोगों के द्वारा सुनकर मेरे मन में चिन्ता उत्पन्न हुई कि यह मस्तक रूपी भूमि पर केशपाशमयी लता कैसी हो सकती है। यह तो निश्चय ही मस्तकाकाश पर मेघमण्डली क्रीड़ा कर रही है ॥१६ ॥

तथा तत्रैवोपस्थितिमपि निशीथिन्यधिपते:
प्रपश्यामि श्यामे सह सहचरैस्तारक गणै:।
अहोरात्रः क्रीडा परवशमितास्तेऽपि चकिता
श्चिरं चिक्रीडन्ते तदपि महदाश्चर्य-चरितम् ॥१७ ॥

तथा साथ ही हे माता ! उस समस्त आकाश में चन्द्र को अपने सहचर तारागणों के साथ ही मैं देख रहा हूँ, रात-दिन क्रीड़ा में रत होकर आश्चर्ययुक्त क्रीड़ा नित्य करते ही रहते हैं। यह भी आश्चर्यमय चरित्र है, क्योंकि सूर्योदय होने पर दिन में चन्द्र-तारे अदृश्य हो जाते हैं, किन्तु यहाँ नहीं होते।

यदाहुस्तं मुक्ता पटल जटितं रत्न मुकुटं,
न धत्ते तेषां सा वचनरचना साधुपदवीम्।
निशैषा केशास्तु नहि विगत वेशा ध्रुवमिति,
प्रसन्नाऽध्यासन्ना विधुपरिषदेषा विलसति ॥१८ ॥

कुछ लोगों का कहना है कि यह तो अनेक मणि-माणिक्यों में जड़ा हुआ मुकुट है, किन्तु मेरी सम्मति से यह बात उनकी ठीक नहीं जँचती। यह तो निशा ही है, विगत वेश, केश नहीं है, ऐसा निश्चय करके ही यह प्रसन्नतापूर्वक चन्द्रमा की सभा शोभित हो रही है।

त्रिबीजे हे देवि त्रि प्रणवसहिते त्र्यक्षरयुते,
त्रिमात्रा राजन्ते भुवनविभवे ह्योमितिपदे।
त्रिकालं संसेव्ये त्रिगुणवति च त्रिस्वरमयि,
त्रिलोकेशै: पूज्ये त्रिभुवनभयात्राहि सततम् ॥१९ ॥

हे तीन बीज वाली, तीन ओंकारयुक्त मन्त्र वाली, तीन अक्षर वाली ! 'ओं' इस एक मात्र सारभूत मन्त्र में तीन मात्रा शोभित हैं। हे तीनों काल में सेवनीय, तीन गुण वाली, तीन स्वर वाली, तीन लोक के ईश देवताओं द्वारा पूजनीय माता हमारी सांसारिक भय से रक्षा करो।

न चन्द्रो नैवेमे नभसि, वितता तारकगणा:,
त्विषां राशी रम्या तव चरणयोरम्बुनिचये।
पतित्वा कल्लोलै: सह परिचयाद्विस्तृतिमिता,
प्रभा सैवाऽनन्ता गगनमुकुरे दीव्यति सदा ॥२० ॥

आकाश में ये चन्द्रमा और तारागण नहीं हैं; किन्तु आपके चरणों की छाया जल में गिर कर तरंगों के साथ परिचय होने से विस्तार को प्राप्त हो गयी और वही आभा आकाश रूपी काँच में देदीप्यमान हो रही है।

त्वमेव ब्रह्माणी त्वमसि कमला त्वं नगसुता,
त्रिसन्ध्यं सेवन्ते चरणयुगलं ये तव जनाः ।
जगज्जाले तेषां निपतित जनानामिह शुभे,
समुद्धारार्थं किं मतिमति ! मतिस्ते न भवति ॥२१ ॥

तू ही ब्रह्माणी, कमला एवं रुद्राणी है । तीनों काल में जो आपके चरण की सेवा करते हैं, उन जगजाल में फँसे हुए प्राणियों के उद्धार के लिये हे मतिमती ! आपकी मति नहीं होती है क्या ?अर्थात् अवश्य होती है ।

अनेकैः पापौघैर्लुलित वपुषं शोक सहितं,
लुठन्तं दीनं मां विमल पदयो रेणुषु तव ।
गलद्वाष्पं शश्वद् जननि सहसाश्वासनवचो,
ब्रुवाणोत्तिष्ठ त्वं अमृतकणिकां पास्यसि कदा ॥२२ ॥

अनेक पापों के समुदाय से जर्जर शरीर वाले, शोकयुक्त मुझ दीन को आपके पाँवों की धूल में लोटते हुए अश्रुपूर्ण नेत्र वाले मुझ पापी को आश्वासन के वचन कहती हुई- हे बेटा ! उठ, ऐसे वचनों के अमृत कण का कब पान कराओगी ?

न वा मादृक् पापी नहि तव समा पापहरणी,
न दुर्बुद्धिर्मादृक् न च तव समा धी वितरिणी ।
न मादृग् गर्विष्ठो नहि तव समा गर्वहरणी,
हृदि स्मृत्वा ह्येवं मामयि ! कुरु यथेच्छा तव यथा ॥२३ ॥

मेरे जैसा पापी नहीं और आप जैसी पाप हरणी नहीं, मेरे जैसा मूर्ख नहीं और आप जैसी बुद्धिदायी नहीं । मेरे जैसा अभिमानी नहीं और आप जैसी गर्वहारिणी नहीं । अतएव हे माता ! यह सब विचार कर चाहे जैसा करो ॥२३ ॥

दरीधर्ति स्वांतेऽक्षर वर चतुर्विंशतिमितं,
त्वदन्तर्मन्त्रं यत्त्वयि निहित चेतो हि मनुजः ।
समन्ताद् भास्वन्तं भवति भुवि संजीवनवनं,
भवाम्भोधेः पारं व्रजति स नितान्तं सुखयुतः ॥२४ ॥

जो मनुष्य आपके २४ अक्षर वाले मन्त्र को हृदय में धारण करता है वह सुखी है । वह संसार समुद्र से पार हो जाता है और उसका जीवन-वन हरा-भरा हो जाता है ॥२४ ॥

भगवति ! लहरीयं रुद्रदेव प्रणीता
तव चरण सरोजे स्थाप्यते भक्तिभावैः ।
कुमतितिमिरपंकस्यांकमग्नं सशंकं,
अयि ! खलु कुरु दत्त्वा वीतशंकं स्वमंकम् ॥२५ ॥

हे भगवति ! यह लहरी रुद्रदेव द्वारा रचित तेरे चरण कमलों में स्थापित की जाती है । कुमति रूपी अन्धकार के कीचड़ की गोद में मग्न, शंकित मुझको अपनी गोद की शरण दे निर्भय करिये ॥२५ ॥

॥ इति श्री रुद्रदेव विरचित गायत्री लहरी समाप्ता ॥

॥ वन्दे वेद मातरम् ॥

श्री गायत्री चालीसा

दोहा

ह्रीं, श्रीं, क्लीं, मेधा, प्रभा, जीवन ज्योति प्रचण्ड।
शान्ति, क्रान्ति, जागृति, प्रगति, रचना शक्ति अखण्ड॥
जगत जननि, मंगल करनि, गायत्री सुख धाम।
प्रणवों सावित्री, स्वधा, स्वाहा पूरन काम॥

भूर्भुवः स्वः ॐ युत जननी। गायत्री नित कलिमल दहनी॥
अक्षर चौबिस परम पुनीता। इनमें बसें शास्त्र श्रुति गीता॥
शाश्वत सतोगुणी सतरूपा। सत्य सनातन सुधा अनूपा॥
हंसारूढ़ सितम्बर धारी। स्वर्ण कांति शुचि गगन बिहारी॥
पुस्तक पुष्प कमण्डलु माला। शुभ्र वर्ण तनु नयन विशाला॥
ध्यान धरत पुलकित हिय होई। सुख उपजत, दुःखदुरमतिखोई॥
कामधेनु तुम सुर तरु छाया। निराकार की अद्‌भुत माया॥
तुम्हरी शरण गहै जो कोई। तरै सकल संकट सों सोई॥
सरस्वती लक्ष्मी तुम काली। दिपै तुम्हारी ज्योति निराली॥
तुम्हरी महिमा पार न पावैं। जो शारद शत मुख गुन गावैं॥
चार वेद की मातु पुनीता। तुम ब्रह्माणी गौरी सीता॥
महामन्त्र जितने जग माहीं। कोऊ गायत्री सम नाहीं॥
सुमिरत हिय में ज्ञान प्रकासै। आलस पाप अविद्या नासै॥
सृष्टि बीज जग जननि भवानी। कालरात्रि वरदा कल्याणी॥
ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र सुर जेते। तुम सों पावें सुरता तेते॥
तुम भक्तन की भक्त तुम्हारे। जननिहिं पुत्र प्राण ते प्यारे॥
महिमा अपरम्पार तुम्हारी। जै जै जै त्रिपदा भय हारी॥
पूरित सकल ज्ञान विज्ञाना। तुम सम अधिक न जग में आना॥
तुमहिं जानि कछु रहै न शेषा। तुमहिं पाय कछु रहै न क्लेशा॥
जानत तुमहिं तुमहि ह्वै जाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥
तुम्हरी शक्ति दिपै सब ठाईं। माता तुम सब ठौर समाईं॥
ग्रह नक्षत्र ब्रह्माण्ड घनेरे। सब गतिवान तुम्हारे प्रेरे॥
सकल सृष्टि की प्राण विधाता। पालक, पोषक, नाशक, त्राता॥
मातेश्वरी दया व्रतधारी। तुम सन तरे पातकी भारी॥
जापर कृपा तुम्हारी होई। तापर कृपा करें सब कोई॥
मंद बुद्धि ते बुधि बल पावें। रोगी रोग रहित ह्वै जावें॥
दारिद मिटै कटै सब पीरा। नाशै दुःख हरै भव भीरा॥
गृह कलेश चित चिन्ता भारी। नासै गायत्री भय हारी॥
सन्तति हीन सुसन्तति पावें। सुख सम्पत्ति युत मोद मनावें॥

भूत पिशाच सबै भय खावें। यम के दूत निकट नहिं आवें ॥
जो सधवा सुमिरें चित लाई। अछत सुहाग सदा सुखदाई ॥
घर वर सुखप्रद लहैं कुमारी। विधवा रहें सत्य व्रत धारी ॥
जयति जयति जगदम्ब भवानी। तुम सम और दयालु न दानी ॥
जो सद्गुरु सों दीक्षा पावें। सो साधन को सफल बनावें ॥
सुमिरन करें सुरुचि बड़भागी। लहैं मनोरथ गृही विरागी ॥
अष्ट सिद्धि नवनिधि की दाता। सब समर्थ गायत्री माता ॥
ऋषि, मुनि, यती, तपस्वी, योगी। आरत, अर्थी, चिन्तित भोगी ॥
जो जो शरण तुम्हारी आवैं। सो सो मन वांछित फल पावैं ॥
बल, बुद्धि, विद्या, शील सुभाऊ। धन, वैभव, यश, तेज उछाऊ ॥
सकल बढ़ें उपजें सुख नाना। जो यह पाठ करै धरि ध्याना ॥

यह चालीसा भक्ति युत, पाठ करै जो कोय।
तापर कृपा प्रसन्नता, गायत्री की होय ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

॥ आरती ॥

जयति जय गायत्री माता, जयति जय गायत्री माता।
आदि शक्ति तुम अलख निरंजन जग पालन कर्त्री।
दुःख शोक भय क्लेश कलह दारिद्र्य दैन्य हर्त्री ॥
ब्रह्म रूपिणी, प्रणत पालिनी, जगतधातृ अम्बे।
भवभयहारी, जनहितकारी, सुखदा जगदम्बे ॥
भय हारिणि भव तारिणि अनघे, अज आनन्द राशी।
अविकारी, अघहरी, अविचलित, अमले, अविनाशी ॥
कामधेनु सतचित आनन्दा जय गंगा गीता।
सविता की शाश्वती शक्ति तुम सावित्री सीता ॥
ऋग्, यजु, साम, अथर्व प्रणयिनी, प्रणव महामहिमे।
कुण्डलिनी सहस्रार, सुषुम्ना शोभा गुण गरिमे ॥
स्वाहा, स्वधा, शची, ब्रह्माणी, राधा, रुद्राणी।
जय सतरूपा वाणी, विद्या, कमला कल्याणी ॥
जननी हम हैं दीन हीन, दुःख दारिद के घेरे।
यदपि कुटिल कपटी कपूत, तऊ बालक हैं तेरे ॥
स्नेह सनी करुणामयि माता, चरण शरण दीजै।
बिलख रहे हम शिशु सुत तेरे, दया दृष्टि कीजै ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ, दुर्भाव, द्वेष हरिये।
शुद्ध बुद्धि निष्पाप हृदय, मन को पवित्र करिये ॥
तुम समर्थ सब भाँति तारिणी, तुष्टि पुष्टि त्राता।
सत मारग पर हमें चलाओ जो है सुखदाता ॥
जयति जय गायत्री माता। जयति जय गायत्री माता ॥

गायत्री सहस्रनाम का विज्ञान

गायत्री ईश्वरीय दिव्य शक्तियों का एक पुञ्ज है। उस पुञ्ज में कितनी शक्तियाँ निहित हैं, इसकी कोई संख्या नहीं बतायी जा सकती। उसके गर्भ में शक्तियों का भण्डार है। शास्त्रों में 'सहस्र' शब्द 'अनन्त के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यों मोटे अर्थ में तो सहस्र, एक हजार को कहते हैं, पर अन्यत्र अनन्त संख्या के लिये भी सहस्र शब्द प्रयुक्त होता है। ईश्वर की प्रार्थना है 'सहस्र शीर्षा' आदि।

इस प्रार्थना में ईश्वर को सहस्र मस्तक और सहस्र हाथ, पाँव, नेत्र आदि वाला बताया है। यहाँ उस सहस्र का तात्पर्य अनन्त दल हैं न कि एक हजार। ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनसे सहस्र का अर्थ अनन्त सिद्ध होता है। गायत्री की अनन्त शक्तियों में से मनुष्य को बहुत थोड़ी शक्तियों का अभी तक पता चला है और जिन शक्तियों का पता चला है उनमें से बहुत थोड़ी उपयोग में आई हैं। जो शक्तियाँ अब तक जानी जा चुकी हैं, समझी जा सकती हैं, उनकी संख्या लगभग एक हजार है।

इन हजार शक्तियों के नाम उनके गुणों के अनुसार रखे गये हैं। उन हजार नामों का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में 'गायत्री सहस्रनाम' करके मिलता है।

इन शक्तियों का जानना, समझना और पाठ करना इसलिये आवश्यक है कि हमें पता चलता रहता है कि इस शक्ति के पुञ्ज के अन्दर क्या-क्या विशेषतायें छिपी हुई हैं और गायत्री की प्राप्ति के साथ-साथ हम किन-किन विशेषताओं को अपने में धारण करते हैं। यह पता चल जाने पर ही उनका उपयोग और प्रयोग हो सकता है। जब तक किसी वस्तु का गुण और महत्त्व न मालूम हो, उसकी शक्ति का परिचय न हो, तब तक उस वस्तु से लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

गायत्री में क्या-क्या शक्तियाँ हैं और उन शक्तियों का सहयोग पाने से हम क्या-क्या लाभ उठा सकते हैं, सहस्रनाम में यही परिचय कराया है। क्योंकि इन नामों पर भली प्रकार ध्यान देने से गायत्री की मर्यादा, शक्ति, प्रकृति उपयोगिता आदि का परिचय प्राप्त हो जाता है, यह परिचय उन लाभों की प्राप्ति का सोपान है। इस जानकारी के आधार पर साधक सोचता है कि गायत्री शक्ति की अमुक-अमुक विशेषतायें हैं, जिन्हें आवश्यकता या रुचि के अनुसार प्राप्त किया जा सकता है। यह पता चलने पर एक तो उसकी उपयोगिता की ओर ध्यान जाता है और जीवन को सर्वांगपूर्ण बनाने के उन लाभों का संग्रह करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। साथ ही इस महातत्त्व की महिमा का पता चलता है कि यह इतनी असाधारण वस्तु है। किसी की महिमा, विशेषता या श्रेष्ठता का पता चलने पर ही उसके प्रति श्रद्धा की भावनायें उत्पन्न होती हैं। जो पारस के गुणों को जानता है, वही उसकी खोज करता है, प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, मिल जाने पर उसको सुरक्षित रखता है और उसका उपयोग करके समुचित लाभ उठाता है। जिसे यह सब मालूम न हो, पारस की विशेषताओं से परिचित न हो, तो उसके लिये यह पत्थर के मामूली टुकड़े से अधिक नहीं है।

इसलिये सहस्रनाम का श्रद्धापूर्वक पाठ करने का शास्त्रों में बड़ा माहात्म्य बताया गया है। आइये श्रद्धापूर्वक गायत्री सहस्रनाम का पाठ करें और उसमें वर्णित नामों पर विचार करते हुए गायत्री की महिमा को समझें और उनसे लाभ उठाएँ।

॥ अथ गायत्री सहस्रनाम ॥

श्री नारायण उवाच—

साधु-साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयाऽनघ।
श्रृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम्।
नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापविनाशनम् ॥१॥
सृष्ट्यादौ यद् भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते।
अष्टोत्तरसहस्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्त्तितः ॥२॥

छन्दोऽनुष्टुप्तथा देवी गायत्रीं देवता स्मृता।
हलो बीजानि तस्यैव स्वराः शक्तय ईरिताः ॥३ ॥
अंगन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ॥४ ॥
सूर्य्यमण्डलमध्यवासनिरतां श्वेतप्रभारञ्जिताम्।
रक्त श्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां कुमारीमिमाम् ॥५ ॥
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डांबुजां।
पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे ॥६ ॥
अचिंत्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी ।
अमृतार्णवमध्यस्थाप्यजिता चापराजिता ॥७ ॥
अणिमादिगुणाधाराप्यर्कमंडलसंस्थिता ।
अजरा ऽजाऽपरा धर्मा अक्षसूत्रधराऽधरा ॥८ ॥
अकारादिक्षकारांताप्यरिषड्वर्गभेदिनी ।
अञ्जनाद्रिप्रतीकाशाप्यंजनाद्रिनिवासिनी ॥९ ॥
अदितिश्चाजपा विद्याप्यरविन्दनिभेक्षणा ।
अन्तर्बहिः स्थिताऽविद्याध्वंसिनी चान्तरात्मिका ॥१० ॥
अजा चाजमुखा वासाप्यरविंदनिभानना।
अर्द्धमात्रार्थदानज्ञाप्यरिमण्डलमर्दिनी ॥११ ॥
असुरघ्नी ह्यमावास्याप्यलक्ष्मीघ्न्यत्यजार्चिता।
आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना ॥१२ ॥
आदित्यपदवीचाराप्यादित्यपरिसेविता ।
आचार्या बर्त्तनाचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी ॥१३ ॥
आग्नेयी चामरी चाद्या चाराध्या चासनस्थिता।
आधारनिलयाधारा चाकाशांतनिवासिनी ॥१४ ॥
आद्याक्षरसमायुक्ता चांतराकाशरूपिणी।
आदित्यमण्डलगता चान्तरध्वांतनाशिनी ॥१५ ॥

इन्दिरा चेष्टदा चेष्टा चेंदीवरनिभेक्षणी।
इरावती चेन्द्रपदा चेन्द्राणी चेन्दुरूपिणी ॥१६ ॥
इक्षुकोदण्डसंयुक्ता चेषुसन्धानकारिणी।
इन्द्रनीलसमाकारा चेडापिंगलरूपिणी ॥१७ ॥
इन्द्राक्षी चेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता।
उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना ॥१८ ॥
उडुप्रभा चोडुमती ह्युडुपा ह्युडुमध्यगा।
ऊर्ध्वा चाप्यूर्ध्वकेशी चाप्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी ॥१९ ॥

ऊर्ध्वबाहुप्रिया चोर्मिमाला वाग्ग्रन्थदायिनी।
ऋतं चर्षिर्ऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता ॥२० ॥
ऋग्वेदा ऋणहर्त्री च ऋषिमण्डलचारिणी।
ऋद्धिदा ऋजुमार्गस्था ऋजुधर्मा ऋतुप्रदा ॥२१ ॥
ऋग्वेदनिलया ऋज्वी लुप्तधर्म प्रवर्त्तिनी।
लूतारिवरसम्भूता लूतादिविषहारिणी ॥२२ ॥
एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता।
ऐन्द्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा ॥२३ ॥
ओंकारा ह्योषधी चोता चोतप्रोतनिवासिनी।
और्वा ह्यौषधसम्पन्ना औपासनफलप्रदा ॥२४ ॥
अण्डमध्यस्थिता देवी चाः कारमनुरूपिणी।
कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी ॥२५ ॥
कमला कामिनी कान्ता कामदा कलकंठिनी।
करिकुम्भस्तनभरा करवीरसुवासिनी ॥२६ ॥

कल्याणी कुण्डलवती कुरुक्षेत्रनिवासिनी।
कुरुविन्ददलाकारा कुण्डली कुमुदालया ॥२७ ॥

कालजिह्वा करालास्या कालिका कालरूपिणी।
कमनीयगुणा कान्तिः कलाधारा कुमुद्वती ॥२८ ॥

कौशिकी कमलाकारा कामचारप्रभंजिनी।
कौमारी करुणापांगी ककुबन्ता करिप्रिया ॥२९ ॥
केसरी केशवनुता कदम्ब कुसुमप्रिया।
कालिन्दी कालिका कांची कलशोद्भवसंस्तुता ॥३० ॥
काममाता क्रतुमती कामरूपा कृपावती।
कुमारी कुण्डनिलया किराती करिवाहना ॥३१ ॥
कैकेयी कोकिलालापा केतकी कुसुमप्रिया।
कमंडलुधरा काली कर्मनिर्मूलकारिणी ॥३२ ॥
कलहंसगतिः कक्षा कृतकौतुकमंगला।
कस्तूरीतिलका कम्रा करीन्द्रगमना कुहूः ॥३३ ॥
कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला कुहराश्रया।
कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा ॥३४ ॥
खड्ग खेटकरा खर्वा खेचरीखगवाहना।
खट्वांगधारिणी ख्याता खगराजोपरिस्थिता ॥३५ ॥
खलघ्नी खंडितजरा खंडाख्यानप्रदायिनी।
खंडेन्दुतिलका गंगा गणेशगुहपूजिता ॥३६ ॥

गायत्री गोमती गीता गान्धारी गानलोलुपा।
गौतमी गामिनी गाधा गन्धर्वाप्सरसेविता ॥३७ ॥
गोविन्दचरणाक्रान्ता गुणत्रयविभाविता।
गन्धर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहनागमी ॥३८ ॥

गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी।
गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी ॥३९ ॥

गिरिजा गुह्यमातंगी गरुडध्वजवल्लभा।
गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा ॥४० ॥

गोकर्णनिलयासक्ता गुह्यमण्डलवर्त्तिनी।
घर्मदा घनदा घण्टा घोरदानवमर्दिनी ॥४१ ।
घृणिमंत्रमयी घोषा घनसम्पातदायिनी।
घण्टारवप्रिया घ्राणा घृणिसन्तुष्टकारिणी ॥४२ ॥
घनारिमण्डला घूर्णा घृताची घनवेगिनी।
ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता चारुहासिनी ॥४३ ॥
चटुला चण्डिकाचित्राचित्रमाल्यविभूषिता।
चतुर्भुजा चारुदन्ता चातुरी चरितप्रदा ॥४४ ॥
चूलिका चित्रवस्त्रान्ता चन्द्रमः कर्णकुण्डला।
चन्द्रहासा चारुदात्री चकोरी चन्द्रहासिनी ॥४५ ॥
चन्द्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चण्डिका।
चञ्चद्वाग्वादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी ॥४६ ॥
चारुचन्दनलिप्तांगी चञ्चच्चामरवीजिता।
चारुमध्या चारुगतिश्चन्दिला चन्द्ररूपिणी ॥४७ ॥
चारुहोमप्रिया चार्वा चरिता चक्रबाहुका।
चन्द्रमंडलमध्यस्था चन्द्रमंडलदर्पणा ॥४८ ॥
चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी।
चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चन्दनप्रिया ॥४९ ॥
चोदयित्री चिरप्रज्ञाचातका चारुहेतुकी।
छत्रयाता छत्रधरा छायाछन्दः परिच्छदा ॥५० ॥
छायादेवी छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी।
छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता छिद्रोपद्रवभेदिनी ॥५१ ॥
छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदनप्रिया।
जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी ॥५२ ॥
जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता।
जम्बूद्वीपवती ज्वाला जयन्ती जलशालिनी ॥५३ ॥

जितेन्द्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया।
जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगतीजरा ॥५४॥

जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी।
ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा ॥५५॥

जिताक्रान्तमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता।
ज्वलन्ती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी ॥५६॥

जम्भिनी जृंभणा जृंभा ज्वलन्माणिक्यकुण्डला।
झिंझिका झणनिर्घोषा झंझामारुतवेगिनी ॥५७॥
झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञभुजा स्मृता।
टंकबाणसमायुक्ता टंकिनी टंकभेदिनी ॥५८॥
टंकीगणकृताघोषा टंकनीयमहोरसा।
टंकारकारिणी देवी ठठशब्दनिनादिनी ॥५९॥
डामरी डाकिनी डिंभा डुंडुमारैकनिर्जिता।
डामरीतन्त्रमार्गस्था डमड्डमरुनादिनी ॥६०॥
डिण्डीरवसहा डिम्भलसत्क्रीडापरायणा।
ढुंढिविघ्नेशजननी ढक्काहस्ता ढिलिव्रजा ॥६१॥
नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी।
त्रिगुणा त्रिपदा तन्त्री तुलसी तरुणातरुः ॥६२॥
त्रिविक्रमपदाक्रान्ता तुरीयपदगामिनी।
तरुणादित्यसंकाशा तामसी तुहिनातुरा ॥६३॥
त्रिकालज्ञानसम्पन्ना त्रिवली च त्रिलोचना।
त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुंगा तुरंगवदना तथा ॥६४॥
तिमिंगिलगिला तीव्रा त्रिस्रोता तामसादिनी।
तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा तनुमध्या त्रिविष्टपा ॥६५॥
त्रिसन्ध्या त्रिस्तनी तोषासंस्था तालप्रतापिनी।
तांटकिनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी ॥६६॥
तन्तुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया।
तिलहोमप्रिया तीर्थातमालकुसुमाकृतिः ॥६७॥
तारका त्रियुता तन्वी त्रिशंकुपरिवारिता।
तलोदरी तिलोभूषा ताटंक प्रियवादिनी ॥६८॥
त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः।
तप्तकांचनसंकाशा तप्तकांचनभूषणा ॥६९॥
त्रैयम्बका त्रिवर्गा च त्रिकालज्ञानदायिनी।
तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामसी तुम्बुरुस्तुता ॥७०॥

ताक्ष्यस्था त्रिगुणाकारा त्रिभंगी तनुवल्लरिः ।
थात्कारी थारवा थांता दोहिनी दीनवत्सला ।।७१ ।।

दानवान्तकरी दुर्गा दुर्गासुरनिबर्हिणी ।
देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुन्दुभिस्वना ।।७२ ।।

देवयानी दुरावासा दारिद्र्यभेदिनी दिवा ।
दामोदरप्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्विमोहिनी ।।७३ ।।

दण्डकारण्यनिलया दण्डिनी देवपूजिता ।
देववन्द्या दिविषदा द्वेषिणी दानवाकृतिः ।।७४ ।।
दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी ।
धात्री धनुर्धुरा धेनुर्धारिणी धर्मचारिणी ।।७५ ।।
धुरन्धरा धराधारा धनदा धान्यदोहिनी ।
धर्मशीला धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा ।।७६ ।।
धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा ।
धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी ।।७७ ।।
नन्दा नन्दप्रिया निद्रा नृनुता नन्दनात्मिका ।
नर्मदा नलिनी नीला नीलकण्ठसमाश्रया ।।७८ ।।
नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः ।
निराधारानिरुपमा नित्यशुद्धा निरंजना ।।७९ ।।
नादबिन्दुकलातीता नादबिन्दुकलात्मिका ।
नृसिंहिनी नगधरा नृपनागविभूषिता ।।८० ।।
नरकक्लेशशमनी नारायणपदोद्भवा ।
निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी ।।८१ ।।
नानाज्योतिः समाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका ।
नवसूत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी ।।८२ ।।
नन्दजा नवरत्नाढ्या नैमिषारण्यवासिनी ।
नवनीतिप्रिया नारी नीलजीमूतनिःस्वना ।।८३ ।।
निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी ।
नामावलिर्निशुम्भघ्नी नागलोकनिवासिनी ।।८४ ।।
नवजाम्बूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता ।
नूपुराक्रांतचरणा नरचित्त प्रमोदिनी ।।८५ ।।
निमग्नारक्तनयना निर्घातसमनिस्वना ।
नन्दनोद्याननिलया निर्व्यूहोपरिचारिणी ।।८६ ।।
पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा ।
पञ्चकोश विनिर्मुक्ता पंचपातकनाशिनी ।।८७ ।।

परचित्तविधानज्ञा पंचिका पंचरूपिणी।
पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेजः प्रकाशिनी ॥८८॥
पुराणी पौरुषी पुण्या पुण्डरीकनिभेक्षणा।
पातालतलनिर्मग्ना प्रीता प्रीतिविवर्धिनी ॥८९॥
पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी।
प्रजापतिः परिश्रान्ता पर्वतस्तनमण्डला ॥९०॥
पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसम्भवा।
पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी ॥९१॥
पशुपाशविनिर्मुक्ता पुरन्ध्री पुरवासिनी।
पुष्कला पुरुषा पर्वा पारिजातसुमप्रिया ॥९२॥
पतिव्रता पवित्रांगी पुष्पहासपरायणा।
प्रज्ञावती सुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी ॥९३॥

पट्टिपाशधरा पंक्तिः पितृलोकप्रदायिनी।
पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्त्ति विनाशिनी ॥९४॥

प्रद्युम्नजननी पुष्टा पितामह परिग्रहा।
पुण्डरीकपुरावासा पुण्डरीकसमानना ॥९५॥

पृथुजंघा पृथुभुजा पृथुपादा पृथूदरी।
प्रवालशोभा पिंगाक्षी पीतवासाः प्रचापला ॥९६॥
प्रसवा पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः।
पंचवर्णा पंचवाणी पंचिका पंजरस्थिता ॥९७॥
परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परागतिः।
पराकाष्ठा परेशानी पाविनी पावकद्युतिः ॥९८॥
पुण्यप्रदा परिच्छेद्या पुष्पहासा पृथूदरी।
पीतांगी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी ॥९९॥
पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया।
पंचभक्षप्रियाचारा पूतना प्राणघातिनी ॥१००॥
पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता।
पंचांगी च पराशक्तिः परमाह्लादकारिणी ॥१०१॥
पुष्पकांडस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा।
पानप्रिया पंचशिखा पन्नगोपरिशायिनी ॥१०२।
पंचमात्रात्मिका पृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी।
पुराणन्यायमीमांसा पाटली पुष्पगन्धिनी ॥१०३॥
पुण्यप्रजा पारदात्री परमार्गैकगोचरा-
प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी ॥१०४॥

फलिनी फलदा फल्गु: फूत्कारी फलकाकृति: ।
फणीन्द्रभोगशयना फणिमंडलमंडिता ॥१०५ ॥
बालबाला बहुमता बालातपनिभांशुका ।
बलभद्रप्रिया वन्द्या वडवा बुद्धिसंस्तुता ॥१०६ ॥
बन्दी देवी बिलवती बडिशघ्नी बलिप्रिया ।
बांधवी बोधिता बुद्धिर्बन्धूककुसुमप्रिया ॥१०७ ॥
बालभानुप्रभाकारा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता ।
बृहस्पतिस्तुता वृन्दा वृन्दावनविहारिणी ॥१०८ ॥
बलाकिनी बिलाहारा बिलावासा बहूदका ।
बहुनेत्रा बहुपदा बहुकर्णावतंसिका ॥१०९ ॥
बहुबाहुयुता बीजरूपिणी बहुरूपिणी ।
बिन्दुनादकलातीता बिन्दुनादस्वरूपिणी ॥११० ॥
बद्धगोधांगुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी ।
बृन्दारका बृहत्स्कन्धा बृहती बाणपातिनी ॥१११ ॥

बृन्दाध्यक्षा बहुनुता बनिता बहुविक्रमा ।
बद्धपद्मासनासीना बिल्वपत्रतलस्थिता ॥११२ ॥

बोधिद्रुमनिजावासा बडिस्था बिन्दुदर्पणा ।
बाला बाणासनवती बडवानलवेगिनी ॥११३ ॥

ब्रह्माण्डबहिरन्त:स्था ब्रह्मकंकणसूत्रिणी ।
भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी ॥११४ ॥
भद्रकाली भुजंगाक्षी भारती भारताशया ।
भैरवी भीषणाकारा भूतिदा भूतिमालिनी ॥११५ ॥
भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा ।
भूतावासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्चिता ॥११६ ॥
भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा ।
भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा ॥११७ ॥
भर्गात्मिका भीमवती भवबन्ध-विमोचिनी ।
भजनीया भूतधात्री भञ्जिता भुवनेश्वरी ॥११८ ॥
भुजंगवलया भीमा भेरुण्डा भागधेयिनी ।
माता माया मधुमती मधुजिह्वा मधुप्रिया ॥११९ ॥
महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना ।
मायातीता मधुमती मधुमासा मधुद्रवा ॥१२० ॥
मानवी मधुसम्भूता मिथिलापुरवासिनी ।
मधुकैटभसंहर्त्री मेदिनी मेघमालिनी ॥१२१ ॥

मन्दोदरी महामाया मैथिली मसृणप्रिया।
महालक्ष्मीर्महाकाली महाकन्या महेश्वरी ॥१२२ ॥
माऽहेन्द्री मेरुतनया मन्दारकुसुमार्चिता।
मञ्जुमञ्जीरचरणा मोक्षदा मंजुभाषिणी ॥१२३ ॥
मधुरद्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता।
मेधा मरकतश्यामा मागधी मेनकात्मजा ॥१२४ ॥
महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता।
मातृका मिहिराभासा मुकुन्दपदविक्रमा ॥१२५ ॥
मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरकवासिनी।
मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी ॥१२६ ॥

योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया।
यौवनी युद्धमध्यस्था यमुना युगधारिणी ॥१२७ ॥

यक्षिणी योगयुक्ता च यक्षराजप्रसूतिनी।
यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा ॥१२८ ॥

यकारादिहकारान्ता याजुषी यज्ञरूपिणी।
यामिनी योगनिरता यातुधान- भयंकरी ॥१२९ ॥
रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुका रतिः।
रौद्री रौद्रप्रियाकारा राममाता रतिप्रिया ॥१३० ॥
रोहिणी राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना।
राकेशी रूपसम्पन्ना रत्नसिंहासनस्थिता ॥१३१ ॥
रक्तमाल्यांबरधरा रक्तगन्धानुलेपना।
राजहंससमारूढा रम्भा रक्तबलिप्रिया ॥१३२ ॥
रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला।
रुरुचर्मपरीधाना रथिनी रत्नमालिका ॥१३३ ॥
रोगेशी रोगशमनी राविणी रोमहर्षिणी।
रामचन्द्रपदाक्रान्ता रावणच्छेदकारिणी ॥१३४ ॥
रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा।
लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिंगधारिणी ॥१३५ ॥
लक्ष्मीर्लोला लुप्तविषा लोकिनी लोकविश्रुता।
लज्जा लम्बोदरीदेवी ललना लोकधारिणी ॥१३६ ॥
वरदा वन्दिता विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः।
वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी ॥१३७ ॥
विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता।
वारुणी वेणुसम्भूता वीतिहोत्रा विरूपिणी ॥१३८ ॥

वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया।
विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा ॥१३९।
वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी।
वेदाक्षरपरीतांगी वाजपेयफलप्रदा ॥१४०॥
वासवी वामजननी वैकुण्ठनिलयावरा।
व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता ॥१४१।
शाकम्भरी शिवा शान्ता शारदा शरणागतिः।
शातोदरी शुभाचारा शुम्भासुर विमर्दिनी ॥१४२॥
शोभावती शिवाकारा शंकरार्धशरीरिणी।
शोणाशुभाशयाशुभ्राशिरःसन्धानकारिणी ॥१४३॥
शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना।
शरभा शूलिनी शुद्धा शबरी शुकवाहना ॥१४४॥
श्रीमती श्रीधरानन्दा श्रवणानन्ददायिनी।
शर्वाणी शर्वरीवन्द्या षड्भाषा षड्ऋतुप्रिया ॥१४५॥

षडाधारस्थिता देवी षण्मुखप्रियकारिणी।
षडंगरूपसुमतिः सुरासुरनमस्कृता ॥१४६॥

सरस्वती सदाधारा सर्वमंगलकारिणी।
सामगानप्रिया सूक्ष्मा सावित्री सामसम्भवा ॥१४७॥

सर्ववासा सदानन्दा सुस्तनी सागराम्बरा।
सर्वैश्वर्य्यप्रिया सिद्धिः साधुबन्धुपराक्रमा ॥१४८॥
सप्तर्षिमंडलगता सोममंडलवासिनी।
सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा समानाधिकवर्जिता ॥१४९॥
सर्वोत्तुंगा संगहीना सद्‌गुणा सकलेष्टदा।
सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः ॥१५०॥
हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी।
क्षौमवस्त्रपरीतांगी क्षीराब्धितनया क्षमा ॥१५१॥
गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती।
वेदगर्भा वरारोहा श्री गायत्री पराम्बिका ॥१५२॥
इति साहस्त्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद।
पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासम्पत्तिदायकम् ॥१५३॥
एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि।
अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह ॥१५४॥
जपं कृत्वा होमपूजां ध्यानं कृत्वा विशेषतः।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः ॥१५५॥

सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसुराय वै।
भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बान्धवेभ्यो न दर्शयेत् ॥१५६ ॥
यद्गृहे लिखितं शास्त्रं भयं तस्य न कस्यचित्।
चंचलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति ॥१५७ ॥
इदं रहस्यं परमं गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणां निधिप्रदम् ॥१५८ ॥
मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम्।
रोगाद्विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥१५९ ॥
ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयिनो नराः ।
गुरुतल्पगतो वापि पातकान्मुच्यते सकृत् ॥१६० ॥
असत्प्रतिग्रहाच्चैवाभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः ।
पाखण्डानृतमुख्येभ्यः पठनादेव मुच्यते ॥१६१ ॥
इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव।
ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः ॥१६२ ॥

॥ इति गायत्री सहस्रनाम ॥

गायत्री के सहस्र नामों में प्रत्येक नाम बड़ा ही रहस्यमय है। उसमें सूत्र रूप से गायत्री की शक्तियों का परिचय, इतिहास एवं विज्ञान छिपा हुआ है। मोटी दृष्टि से देखने में यह नाम साधारण मालूम होते हैं, पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया जाए, तो प्रत्येक नाम में से बड़े से बड़े रहस्यों का उद्घाटन होता है। यदि एक-एक नाम की व्याख्या और विवेचना की जाए, तो उन तत्त्वों का उद्घाटन होगा, जिनको समझने के लिये वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, नीति, संहिता एवं सूत्र ग्रन्थों की रचना हुई है। प्रत्येक नाम की विशद व्याख्या करना इस छोटे ग्रन्थ में सम्भव नहीं है, कभी सुयोग मिला और माता की प्रेरणा हुई तो इन सहस्र नामों में से एक-एक का सुबिस्तृत विवेचन करेंगे। तब सर्वसाधारण के लिये यह जानना सुगम होगा कि आद्यशक्ति गायत्री की रूपरेखा, गतिविधि, प्रक्रिया, उपयोगिता, महत्ता, वैज्ञानिकता एवं वास्तविकता क्या है ? यह नाम गायत्री के गुण, इतिहास और विज्ञान का रहस्योद्घाटन करने के अतिरिक्त अनेक प्रकार की दक्षिणमार्गी एवं वाममार्गी साधनाओं की भी शिक्षा देते हैं। अँगुलि निर्देश, संकेत, सूक्ष्म एवं बीज रूप में इन सहस्र नामों के अन्तर्गत गायत्री विद्या का अनन्त भण्डार भरा हुआ है।

गायत्री के ऋषि, छन्द और देवता

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद् द्विजः ॥

श्री नारायण बोले- चाहे अनुष्ठानादिक करे या न करे, पर गायत्री मात्र के जप में निष्ठा रखने वाला ब्राह्मण कृतकृत्य हो जाता है।"

संध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च।
सहस्रत्रितयं कुर्वन्सुरैः पूज्यो भवेन्मुने ॥ -दे० भा० १२/१/८

"तीनों सन्ध्याओं में अर्घ्य दे और प्रत्येक सन्ध्या में तीन हजार गायत्री जप करे, तो हे मुने ! वह मनुष्य देवताओं द्वारा भी पूज्य हो जाता है।"

न्यासान् करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चाभ्यसेत् ।
ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्त्या सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ -देवी० १२.१.१०

"न्यास करे या न करे, निर्व्याज भक्ति से सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती का ध्यान करके गायत्री का अभ्यास करे ।"

यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः ।
हरिशंकरकंजोत्थ सूर्यचन्द्रहुताशनैः ॥ -देवी० १२.१.११

जो सच्चा ब्राह्मण गायत्री के एक अक्षर की भी सिद्धि कर लेता है, उसकी स्पर्धा हरि, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि से होने लगती है ।"

अथातः श्रूयतां ब्रह्मन्वर्णऋष्यादिकांस्तथा ।
छन्दांसि देवतास्तद्वत् क्रमात्तत्त्वानि चैव हि ॥ -देवी० १२.१.१२

"हे ब्रह्मन् ! अब गायत्री के चौबीस वर्णों के ऋषि, छन्द, देवता आदि को क्रम से कहते हैं ।"

वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः शुक्रः कण्वः पराशरः ।
विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान् ॥
याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्निस्तपोनिधिः ।
गौतमो मुद्गलश्चैव वेदव्यासश्च लोमशः ।
अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो मांडुकस्तथा ।
दुर्वासास्तपसां श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा । -देवी० १२.१.१३-१५

"गायत्री के ऋषि ये हैं- वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महातेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, शौनक, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश, अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, माण्डूक, दुर्वासा, नारद और कश्यप ।"

इत्येते ऋषयः प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥
त्रिष्टुभं जगती चैव तथाऽतिजगती मता ।
शक्वर्यतिशक्वरी च धृतिश्चातिधृतिस्तथा ॥
विराट् प्रस्तारपंक्तिश्च कृतिः प्रकृतिराकृतिः ।
विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षर पंक्तिस्तथैव च ॥
भूर्भुवः स्वरितिच्छन्दस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम् ।
इत्येतानि च छंदांसि कीर्तितानि महामुने ॥ -देवी० १२.१.१७-१९

"हे नारद जी ! गायत्री के ऋषियों के पश्चात् अब उसके छन्दों को सुनिये-गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, धृति, अतिधृति, विराट् प्रस्तार- पंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अक्षरपंक्ति, भूः, भुवः, स्वः और ज्योतिष्मती ये २४ छन्द क्रम से कहे हैं ।"

दैवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः ।
आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्यं द्वितीयकम् ॥
तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम् ।
सावित्रं पञ्चमं प्रोक्तं षष्ठमादित्य दैवतम् ॥
बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम् ।
नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्यमेश्वरम् ॥

गणेशमेकादशकं त्वाष्ट्रं द्वादशकं स्मृतम्।
पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैंद्राग्नं च चतुर्दशम्॥
वायव्यं पंचदशकं वामदेव्यं च षोडशम्।
मैत्रावरुणिदैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम्॥
अष्टादशं वैश्वदेवमूनविंशं तु मातृकम्।
वैष्णवं विंशतितमं वसुदैवतमीरितम्॥
एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम्॥
त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विनं तत्त्वसंख्यकम्।
चतुर्विंशतिवर्णानां देवतानां च संग्रहः॥
कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः।
यदाकर्णनमात्रेण सांगं जाप्यफलं मुने॥ - दे०भा० १२.१.२०-२७

"अब क्रम से सब अक्षरों के देवता बतलाते हैं- प्रथम के अग्नि, द्वितीय के प्रजापति, तृतीय के सोम, चतुर्थ के ईशान, पंचम के सविता, षष्ठ के आदित्य, सप्तम के बृहस्पति, अष्टम के मैत्रावरुणि, नवम के भग, दशम के अर्यमा, एकादश के गणेश, द्वादश के त्वष्टा, त्रयोदश के पूषा, चतुर्दश के इन्द्राग्नी, पंचदश के वायु, षोडश के वामदेव, सप्तदश के मैत्रावरुणि, अष्टादश के विश्वदेवा, उन्नीसवें के मातृका, बीसवें के विष्णु, इक्कीसवें के वसु, बाईसवें के रुद्र, तेईसवें के कुबेर, चौबीसवें के अश्विनी कुमार- ये चौबीस वर्णों के देवता कहे गये हैं, जो परम श्रेष्ठ और महापाप के दूर करने वाले हैं, जिनके श्रवण मात्र से ही सांग जप का फल प्राप्त होता है।"

आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि।
सर्वत्रव्यापिकेऽनन्ते श्रीसंध्ये वै नमोऽस्तु ते॥ - दे० भा० १२.५.२

"हे आदि शक्ति, जगन्माता, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली, सर्वत्र व्यापक, अनन्ता, श्री सन्ध्या तुम्हारे लिये नमस्कार है।"

त्वमेव सन्ध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती।
ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा॥ - १२.५.३

"सन्ध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्रा, रक्ता, श्वेता, कृष्णा तुम्हीं हो।"

प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत् पुनः।
वृद्धा सायं भगवती चिन्त्यते मुनिभिः सदा॥ - १२.५.४

"प्रातःकाल बालस्वरूपिणी, मध्याह्न में युवती और सायंकाल में वृद्धा भगवती का मुनिगण ध्यान करते हैं।"

हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी।
ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः॥ - १२.५.५

"ब्राह्मी, हंसारूढ़ा, सावित्री वृषभवाहिनी और सरस्वती गरुड़ारूढ़ा है। इनमें से ब्राह्मी ऋग्वेदाध्यायिनी, भूमितल में तपस्वियों द्वारा देखी जाती है।"

यजुर्वेदं पठंती च अंतरिक्षे विराजते।
सा सामगापि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि॥ - १२.५.६

"सरस्वती यजुर्वेद पढ़ती हुई, अन्तरिक्ष में विराजमान होती हैं और सावित्री सामवेद गाती हुई, पृथ्वी तल पर सर्वजनों में रमती हैं।"

रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी ।
त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी ।। -१२।५।७

"सावित्री रुद्रलोक में, सरस्वती विष्णु लोक में और ब्राह्मी ब्रह्मलोक में विराजमान रहती हैं - ये सब प्राणियों पर कृपा करने वाली हैं ।"

गायत्री अभियान की साधना

गायत्री को पञ्चमुखी कहा जाता है । कई चित्रों में आलंकारिक रूप से पाँच मुख दिखाये गये हैं । वास्तव में यह पाँच विभाग हैं- (१) ॐ, (२) भूर्भुवः स्वः, (३) तत्सवितुर्वरेण्यं, (४) भर्गोदेवस्य धीमहि, (५) धियो यो नः प्रचोदयात् । यज्ञोपवीत के पाँच भाग हैं- तीन सूत्र, चौथी मध्यग्रन्थियाँ, पाँचवीं ब्रह्मग्रन्थि । पाँच देवता भी प्रसिद्ध हैं- ॐ-गणेश । व्याहृति-भवानी । प्रथम चरण-ब्रह्मा । द्वितीय चरण- विष्णु । तृतीय चरण-महेश । यह पाँच देवता गायत्री के पाँच प्रमुख शक्ति-पुञ्ज कहे जा सकते हैं । प्रकृति के संचालक पाँच तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) जीव के पाँच कोष (अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, चैतन्य पञ्चक (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, आत्मा) इस प्रकार की पंच प्रवृत्तियाँ गायत्री के पाँच भागों में प्रस्फुटित, प्रेरित, प्रसारित होती हैं । इन्हीं आधारों पर वेदमाता गायत्री को पंचमुखी कहा गया है ।

पंचमुखी माता की उपासना एक नैष्ठिक अनुष्ठान है , जिसे 'गायत्री अभियान' कहते हैं, जो पाँच लाख जप का होता है । यह एक वर्ष की तपश्चर्या साधक का उपासनीय महाशक्ति से तादात्म्य करा देती है । श्रद्धा और विश्वासपूर्वक की हुई अभियान की साधना अपना फल दिखाये बिना नहीं रहती । 'अभियान' एक ऐसी तपस्या है, जो साधक को गायत्री शक्ति से भर देती है । फलस्वरूप साधक अपने अन्दर, बाहर और चारों ओर एक दैवी वातावरण का अनुभव करता है ।

अभियान की विधि

एक वर्ष में पाँच लाख जप पूरा करने का अभियान किसी भी मास में शुक्ल पक्ष की एकादशी से आरंभ किया जा सकता है । गायत्री का आविर्भाव शुक्ल पक्ष की दशमी को मध्य रात्रि में हुआ है । इसलिये उसका उपवास पुण्य दूसरे दिन एकादशी को माना जाता है । अभियान आरम्भ करने के लिये यही मुहूर्त सबसे उत्तम है । जिस एकादशी से आरंभ किया जाय, एक वर्ष बाद उसी एकादशी को समाप्त करना चाहिये ।

महीने की दोनों एकादशियों को उपवास करना चाहिये । उपवास में दूध, दही, छाछ, शाक आदि सात्त्विक पदार्थ लिये जा सकते हैं । जो एक समय भोजन करके काम चला सकें, वे वैसा करें । बाल, वृद्ध, गर्भिणी या कमजोर प्रकृति के व्यक्ति दो बार भी सात्त्विक आहार ले सकते हैं । उपवास के दिन पानी कई बार पीना चाहिये ।

दोनों एकादशियों को २४ मालायें जपनी चाहिये । साधारण दिनों में प्रतिदिन १० मालायें जपनी चाहिये । वर्ष में तीन सन्ध्यायें होती हैं, उन्हें नवदुर्गाएँ कहते हैं । इन नवदुर्गाओं में चौबीस-चौबीस हजार के तीन अनुष्ठान कर लेने चाहिये । जैसे प्रतिदिन प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल की तीन सन्ध्यायें होती हैं , वैसे ही वर्ष में ऋतु परिवर्तन की संधियों में तीन नवदुर्गायें होती हैं । वर्षा के अन्त और शीत के आरम्भ में आश्विन शुक्ला १ से लेकर ९ तक, शीत के अन्त और ग्रीष्म के आरंभ में चैत्र शुक्ला १ से लेकर ९ तक । ग्रीष्म के अन्त और वर्षा के आरम्भ में ज्येष्ठ शुक्ला १ से लेकर ९ तक । यह तीन नवदुर्गायें हैं । दशमी गायत्री जयन्ती का पूर्णाहुतिदिन होने से वह भी नवदुर्गाओं में जोड़ दिया गया है । इस प्रकार दश दिन की इन सन्ध्याओं में चौबीस माला प्रतिदिन के हिसाब से चौबीस हजार जप हो जाते हैं । इस प्रकार एक वर्ष में पाँच लाख जप पूरा हो जाता है ।

संख्या का हिसाब इस प्रकार और भी अच्छी तरह समझ में आ सकता है-

१- बारह महीने की चौबीस एकादशियों को प्रतिदिन २४ मालाओं के हिसाब से २४ x २४ = ५७६ मालायें ।

२- दस-दस दिन की तीन कुल ३० दिन की नवदुर्गाओं में प्रतिदिन की २४ मालाओं के हिसाब से ३० x २४ = ७२० मालायें।

३- वर्ष के ३६० दिन में से उपर्युक्त ३० + २४ = ५४ दिन काटकर शेष ३०६ दिन में दस माला प्रतिदिन के हिसाब से ३०६० मालायें।

४- प्रतिदिन रविवार को पाँच माला अधिक जपनी चाहिये अर्थात् दस की जगह पन्द्रह माला रविवार को जपी जायें। इस प्रकार एक वर्ष में ५२ x ५ = २६० मालायें।

इस प्रकार कुल मिलाकर (५७६ + ७२० + ३०६० + २६० = ४६१६ मालायें हुई)। एक माला में १०८ दाने होते है। इस तरह ४६१६ x १०८ = ४,९८,१२८ कुल जप हुआ, पाँच लाख में करीब उन्नीस सौ कम है। चौबीस मालायें पूर्णाहुति के अन्तिम दिन विशेष जप एवं हवन करके पूरी की जाती हैं।

इस प्रकार पाँच लाख जप पूरे हो जाते हैं। तीन नवदुर्गाओं में काम-सेवन, पलंग पर सोना, दूसरे व्यक्ति से हजामत बनवाना, चमड़े का जूता पहनना, मद्य-मांस का सेवन आदि बातें विशेष रूप से वर्जित हैं। शेष दिनों में सामान्य जीवन क्रम रखा जा सकता है, उसमें किसी विशेष तपश्चर्याओं का प्रतिबंध नहीं है।

महीने में एक बार शुक्लपक्ष की एकादशी को १०८ मन्त्रों से हवन कर लेना चाहिये। हवन की विधि 'गायत्री महाविज्ञान' के प्रथम भाग में बता चुके हैं।

अभियान एक प्रकार का लक्ष्यवेध है। इसके लिये किसी पथ-प्रदर्शक एवं शिक्षक की नियुक्ति आवश्यक है, जिससे कि बीच-बीच में जो अनुभव हों उनके सम्बन्ध में परामर्श किया जाता रहे। कई बार जबकि प्रगति में बाधा उपस्थित होती है, तो उसका उपाय अनुभवी मार्ग-दर्शक से जाना जा सकता है।

शुद्ध होकर प्रातः-सायं दोनों समय जप किया जा सकता है। प्रातःकाल उपासना में अधिक समय लगाना चाहिये, सन्ध्या के लिये तो कम भाग ही छोड़ना चाहिये। जप के समय मस्तक के मध्य भाग अथवा हृदय में प्रकाश-पुञ्ज-गायत्री का ध्यान करते जाना चाहिये।

साधारणतः एक घंटे में दस मालायें जपी जा सकती हैं। अनुष्ठान के दिनों में ढाई घण्टे प्रतिदिन और साधारण दिनों एक घण्टा प्रतिदिन उपासना में लगा देना कुछ विशेष बात नहीं है। सूतक, यात्रा, बीमारी आदि के दिनों में बिना माला के मानसिक जप चालू रखना चाहिये। किसी दिन साधना छूट जाने पर, उसकी पूर्ति अगले दिन की जा सकती है।

फिर भी यदि वर्ष के अन्त में कुछ जप कम रह जाए, तो उसके लिये ऐसा हो सकता है कि उतने मन्त्र अपने लिये किसी से उधार जपाये जा सकते हैं, जो सुविधाजनक लौटा दिये जायें। इस प्रकार हवन आदि की कोई असुविधा पड़े, तो वह इसी प्रकार सहयोग के आधार पर पूरी की जा सकती है। किसी साधक की साधना खण्डित न होने देने एवं उसका संकल्प पूरा कराने के लिये 'अखण्ड-ज्योति' से भी समुचित उत्साह, पथ-प्रदर्शन तथा सहयोग मिल जाता है।

अभियान एक वर्ष में पूरा होता है। साधना की महानता को देखते हुए इतना समय कुछ अधिक नहीं है। इस तपस्या के लिये जिनके मन में उत्साह है, उन्हें इस शुभ आरंभ को कर ही देना चाहिये। आगे चलकर माता अपने आप सँभाल लेती है। यह निश्चित है कि शुभ आरम्भ का परिणाम शुभ ही होता है।

गायत्री - वन्दना

ॐ काररूपा त्रिपदा त्रयी च, त्रिदेववन्द्या त्रिदिवाधिदेवी।
त्रिलोककर्त्री त्रितयस्य भर्त्री, त्रैकालिकी संकलनाविधात्री ॥१॥
त्रैगुण्यभेदात् त्रिविधस्वरूपा, त्रैविध्ययुक्तस्य फलस्य दात्री।
तथापवर्गस्य विधायिनी त्वं, दयार्द्रदृक्कोणविलोकनेन ॥२॥

त्वं वाङ्मयी विश्ववदान्यमूर्ति, विंश्वस्वरूपापि हि विश्वगर्भा ।
तत्त्वात्मिका तत्त्वपरात्परा च, दृक् तारिका तारकशंकरस्य ॥३ ॥
विश्वात्मिके विश्वविलासभूते, विश्वाश्रये विश्वविकाशधामे ।
विभूत्यधिष्ठात्रि विभूतिदात्रि, पदे त्वदीये प्रणतिर्मदीया ॥४ ॥
भोगस्य भोक्त्री करणस्य कर्त्री, धात्वाव्ययप्रत्ययलिंगशून्या ।
ज्ञेया न वेदैर्न पुराणभेदै, र्ध्येया धिया धारणयादिशक्तिः ॥५ ॥
नित्या सदा सर्वगताऽप्यलक्ष्या, विष्णोर्विधेः शंकरतोऽप्यभिन्ना ।
शक्तिस्वरूपा जगतोऽस्य शक्ति, र्ज्ञातुं न शक्या करणादिभिस्त्वम् ॥६ ॥
त्यक्तस्त्वयात्यन्तनिरस्तबुद्धि, र्नरो भवेद् वैभवभाग्यहीनः ।
हिमालयादप्यधिकोन्नतोऽपि, जनैस्समस्तैरपि लंघनीयः ॥७ ॥
शिवे हरौ ब्रह्मणि भानुचन्द्रयो, श्चराचरे गोचरकेऽप्यगोचरे ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मे महतो महत्तमे, कला त्वदीया विमला विराजते ॥८ ॥
सुधामरन्दं तव पादपद्मं, स्वे मानसे धारणया निधाय ।
बुद्धिर्मिलिन्दीभवतान्मदीया, नातः परं देवि वरं समीहे ॥९ ॥
दीनेषु हीनेषु गतादरेषु, स्वाभाविकी ते करुणा प्रसिद्धा ।
अतः शरण्ये शरणं प्रपन्नं, गृहाण मातः प्रणयाञ्जलिं मे ॥१० ॥